BIBLIOTHECA INDICA;

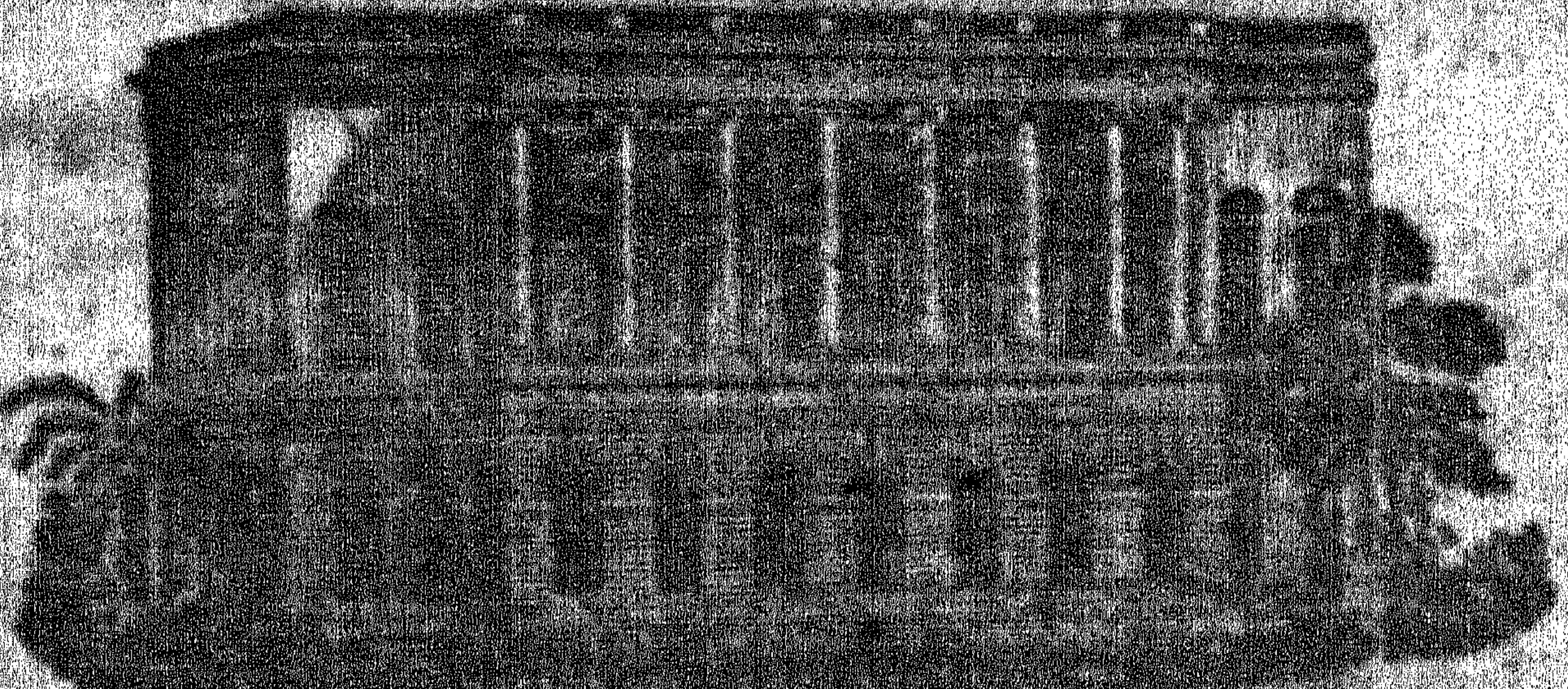
A

COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

New Series, No. 777.



AVADÁNA KALPALATÁ

WITH ITS TIBETAN VERSION

NOW FIRST EDITED

BY

SARAT CHANDRA DAS, C. I. E.,

ASSOCIATE MEMBER, AS. SOC., BENG.

AND

PANDIT HARI MOHAN VIDYÁBHÚSHAṆA,

ORIENTAL LIBRARIAN, AS. SOC., BENG.

VOL. II, FASC. I.

CALCUTTA:

PRINTED AT THE BAPTIST MISSION PRESS,

AND PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY, 57, PARK STREET.

1890.

LIST OF BOOKS FOR SALE

AT THE LIBRARY OF THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL,

No. 57, PARK STREET, CALCUTTA,

AND OBTAINABLE FROM

THE SOCIETY'S LONDON AGENTS, MESSRS. TRUBNER & CO.
57 AND 59, LUDGATE HILL, LONDON, E. C.

BIBLIOTHECA INDICA.

Sanskrit Series.

		Rs.	As.
Advaita Brahma Siddhi, Fasc. I—IV @ /6/ each	..	1	8
Agni Purána, (Sans.) Fasc. II—XIV @ /6/ each	..	4	14
Anu Bháshyam, Fasc. I	..	0	6
Aitareya Áraṇyaka of the Rig Veda, (Sans.) Fasc. I—V @ /6/ each	..	1	14
Aphorisms of Sáṇḍilya, (English) Fasc. I	..	0	6
Aphorisms of the Vedánta, (Sans.) Fasc. VII—XIII @ /6/ each	..	2	10
Ashtasáhasriká Prajñápáramitá, Fasc. I—VI @ /6/ each	..	2	4
Aśvavaidyaka, Fasc. I—V @ /6/ each	..	1	14
Avadána Kalpalatá by Kshemendra (Sans. & Tibetan) Vol. I Fasc. I—III @ 1/	..	3	0
Bhámatí, (Sans.) Fasc. I—VIII @ /6/ each	..	3	0
Brahma Sútra, (English) Fasc. I	..	0	6
Brihaddevatá, (Sans.) Fasc. I—II @ /6/ each	..	0	12
Bṛihaddharma Puráṇam, Fasc. I—II @ /6/ each	..	0	12
Bṛihat Áraṇyaka Upanishad, (Sans.) Fasc. VI, VII & IX @ /6/ each	..	1	2
Ditto (English) Fasc. II—III @ /6/ each	..	0	12
Bṛihat Saṃhitá, (Sans.) Fasc. II—III, V—VII @ /6/ each	..	1	14
Chaitanya Chandrodaya Náṭaka, (Sans.) Fasc. II—III @ /6/ each	..	0	12
Chaturvarga Chintámaṇi, (Sans.) Vols. I, Fasc. I—11; II, 1—25; III, Part I Fasc. 1—18, Part II, Fasc. 1—[illegible] @ /6/ each	..	32	14
Chhándogya Upanishad, (English) Fasc. II	..	0	6
Daśarúpa, Fasc. II and III @ /6/	..	0	[illegible]
Gobhilíya Gṛihya Sútra, (Sans.) Fasc. I—XII @ /6/ each	..	[illegible]	[illegible]
Hindu Astronomy, (English) Fasc. I—III @ /6/ each	..	[illegible]	[illegible]
Kála Mádhava, (Sans.) Fasc. I—IV @ /6/	..	[illegible]	[illegible]
Kátantra, (Sans.) Fasc. I—VI @ /12/ each	..	[illegible]	[illegible]
Katha Sarit Ságara, (English) Fasc. I—XIV @ /12/ each	..	[illegible]	[illegible]
Kaushítakí Bráhmaṇa Upanishad, Fasc. II	..	[illegible]	[illegible]
Kúrma Puráṇa, (Sans.) Fasc. I—IX @ /6/ each	..	[illegible]	[illegible]
Lalita-Vistara (Sans.) Fasc. II—VI, @ /6/	..	[illegible]	[illegible]
Lalita-Vistara, (English) Fasc. I—III @ /12/ each	..	[illegible]	[illegible]
Madana Párijáta, (Sans.) Fasc. I—VIII @ /6/ each	..	[illegible]	[illegible]
Manuṭiká Saṅgraha, (Sans.) Fasc. I—III @ /6/ each	..	[illegible]	[illegible]
Márkaṇḍeya Puráṇa, (Sans.) Fasc. IV—VII @ /6/ each	..	[illegible]	[illegible]
Márkaṇḍeya Puráṇa (Eng.) Fasc. I—II @ /12/ each	..	[illegible]	[illegible]
Mímáṃsá Darśana, (Sans.) Fasc. II—XIX @ /6/ each	..	[illegible]	[illegible]
Nárada Pancharátra, (Sans.) Fasc. IV	..	[illegible]	12
Nárada Smṛiti, (Sans.) Fasc. I—III @ /6/	..	[illegible]	[illegible]
Nayavártikam, (Sans.) Fasc. I	..	[illegible]	[illegible]
Nirukta, (Sans.) Vol. I, Fasc. IV—VI; Vol. II, Fasc. I—VI; Vol. III, Fasc. I—VI; Vol. IV, Fasc. I—VII @ /6/ each Fasc.	..	[illegible]	[illegible]
Nítisára, or The Elements of Polity, By Kámandaki, (Sans.) Fasc. II—V @ /6/ each	..	[illegible]	[illegible]
Nyáyabindutíká (Sans.)	..	[illegible]	[illegible]
Nyáya Kusumáñjali Prakaraṇam (Sans.) Vol. I, Fasc. I—6 Vol. II, Fasc. I @ /6/ each	..	[illegible]	[illegible]
Paraśara Smṛiti (Sans.) Fasc. I—IV @ /6/ each	..	[illegible]	[illegible]

(Continued on third page of Cover.)

བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་བརྗོད།

Chapter I.

ལས་བཅུ་སྟོན་པའི་རྟོགས་བརྗོད་དོ།

གང་ཞིག་བདེ་ཐྲག་ཏུ་བསྒྱུར་བ་གྱུར་ཡི་དབང་རྣམས་རིང་དུ་བྱུང་བའི་འཕྲེང་བ་ཡི།
སྙིང་སྟོབས་སྐྱོ་བའི་མ་དང་རང་བཞིན་དུ་མེད་པ་ཡི་ཤེས་གསལ་བའི་ནམས་པ་ཅན།
དེ་དག་གིས་ཀུང་སྤྱན་ཉིད་ཀྱིས་པོའི་ཀཱབ་ཡི་སྙིང་པོ་ཡིག་ལམ་ཀྱི་འཕྲེང་རྣམས་ནི།
བཀྲ་བ་དག་ནི་འགྲོད་པར་མི་འགྱུར་རྟོགས་འགྲེལ་གྱི་ཀྱུ་ཙ་བོའི་གཏེར་གྱིས་བཤིར། 1

དེ་བཞིན་མཉན་ཡོད་དུ་ནི་འབྱུང་རིགས་ཀྱིས།
བསྐལ་བར་གྱུར་པའི་བུ་སྨྱིགས་ཅན་མེད་དག།
སྟོད་པའི་གྲགས་པ་གཞོན་པར་བརྩོན་གྱུར་བ།
ཕྱུས་དང་བཅས་པ་དཀྱིལ་པར་རྒྱུང་བར་གྱུར། 2

དེ་ནས་དག་ཉིད་བཀྲུང་གི་ཚོགས། ཡོངས་སུ་འཛིན་ཉིད་དུ་མེད་ཆ།
རྫིང་བུ་གཏུང་མེད་ཅེས་བྱ་བ། རིན་ཅེན་ཚོགས་ཀྱི་ཕྱེས་སྣམས་ཅན། 3

གསེར་གྱི་པད་ཚོགས་གེ་སར་གྱིས། ཀུང་དུག་མེར་འོར་ཉིད་པ་ཡིས།
བདྭའི་ཁྲིར་གནས་བཙོམ་ལྡན་འདས། དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་ཡོངས་བསྐོར་བ། 4

बोधिसत्त्वावदानकल्पलता।

दशकर्म्मप्लुत्यवदानम् ।

नमो रत्नत्रयाय[१] ।

ये त्रैलोच्छलितप्रभावलहरीजाताद्भुतश्रेणयः
सत्त्वोत्साहभुवः स्वभावविमलज्ञानप्रकाशाशयाः ।
आज्ञालेख्यलिपिं विधातृनृपतेः संसक्तकर्म्मावलीम्
चित्रं तेऽपि न लङ्घयन्ति कुटिलां वेलामिवाम्भोधयः ॥ १ ॥

श्रावस्त्यां प्रेरितास्तद्दर्पैस्तैस्तीर्थिकाङ्गनाः ।
कीर्त्तिभङ्गोद्यताः शास्तुः सदेहा नरकेऽपतन् ॥ २ ॥

ततः पुण्यनदीसंघपरिक्षिप्तामलात्मनि ।
सरस्यनवतप्ताख्ये रत्नसोपानसञ्चये ॥ ३ ॥

हैमाब्जपुञ्जकिञ्जल्कपिञ्जरीकृतषट्पदे ।
पद्मासनस्थो भगवान् भिक्षुभिः परिवारितः ॥ ४ ॥

---

१ Orig. omits the invocation. " has नमोबुद्धाय ।

ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་ལས་ཀྱི་ཀྱང་། འགོས་ཏུ་ཡིར་པར་ཕྱིར་བཟློག་ཅིང་།
རང་ལས་སྤྱོད་པ་རྣམས་པར་བཀྲ། གསུང་བར་ཡང་དག་འཇོར་པར་ཀྱུར། 5

ལས་ནི་འཆད་པའི་གནས་སྐབས་དེར། བཅོམ་ལྡན་གུས་ལ་མཉེས་གཉེར་པས།
ཤཱ་རིའི་བུ་ནི་འདོད་པ་དག། རྫོགས་བུ་ལ་རབ་ཏུ་བསྔོས། 6

ཏ་མཁོ་བྱང་པོའི་རི་གནས་ལ། ཁབ་དང་སྐུད་པས་སྦྱར་བ་ནི།
བཀྲ་ཤིས་རྫོགས་པར་བྱེད་པ་ཡིས། ཤཱ་རིའི་བུ་ཅན་དེ་ཡིས་ཕྱིས། 7

མོར་མོ་རངས་བྱས་འཇུབ་པ་ཡིས། ལས་ཀྱི་སྨྲ་ཉིད་མ་ཡིན་པ།
ཏུ་བ་འགོར་བས་འཛིགས་པ་ཡིས། སྐྱུར་དང་བཅས་པ་དེ་ལ་སྨྲས། 8

ཚུར་ཡོག་ཚུར་ཡོག་མགྱོགས་པར་ཤོ། བཅོམ་ལྡན་ཀུན་མཁྱེན་ཁྱིང་བུ་ནི།
གཏུང་བ་མེད་པར་དགེ་སློང་ལ། ལས་ནི་ཉི་བར་སྟོན་པར་བཞེད། 9

ལས་ལ་ཆགས་ནས་སྐུར་མེད་ཅིང་། རྫོགས་པར་གལ་ཏེ་ཁྱོད་བསྒྲུབས་ན།
རྫུ་འཕྲུལ་ཆེན་པོས་ཁྱོད་ཁྲང་ཏུ། བདག་གིས་སྟོབས་ཡང་བརྒྱ་བར་ནུས། 10

ཞེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། ཤཱ་རིའི་བུ་ཡིས་དེ་ལ་སྨྲས།
རེ་ཞིག་བདག་གི་ཐུབ་པ་འོང་། དེ་ནས་ཁྱོད་རྫུ་སྟོབས་བདག་གིས་ཤེས། 11

ཞེས་སྨྲས་ཏ་མཁོ་བྱང་པོ་ཡི། རི་ཡི་རྩེ་ལ་དེ་ཡིས་བཏགས།
མོ་གལ་བུ་ཡིས་སྒྲང་མ་བ་ཡི། ཚེ་ན་རི་ནི་འགུལ་བར་གྱུར། 12

सर्व्वज्ञः कर्म्मतन्त्रस्य दर्शयन्नविलङ्घताम् ।
स्वकर्म्मस्तुतिवैचित्र्यं वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ५ ॥

कर्म्माख्यानक्षणे तस्मिन् भगवान् भक्तवत्सलः ।
शारिपुत्रसमाह्वाने मौद्गल्यायनमादिशत् ॥ ६ ॥

सूच्या सूत्रेण संघाटीकुर्व्वाणं रचनाचिताम्[1] ।
स शारिपुत्रमानाद्य गृध्रकूटाचलाश्रमे ॥ ७ ॥

अङ्गुलीपञ्चकेनैव सूचीकर्म्म प्रभाववान् ।
विलम्बभीत्या कृत्वास्य तमभाषत सत्वरः ॥ ८ ॥

एह्येहि तूर्णं भगवान् सरस्यनवतप्तके ।
कर्म्मोपदेशं भिक्षूणां सर्व्वज्ञः कर्त्तुमुद्यतः ॥ ९ ॥

कर्म्मव्यग्रतयाक्षिप्रं विलम्बं विदधासि चेत् ।
तन्मदृद्ध्या नयामि त्वां विपुलं पश्य मे बलम् ॥ १० ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा शारिपुत्रस्तमब्रवीत् ।
अचलं नय मे तावत्ततो जानामि ते बलम् ॥ ११ ॥

इत्युक्त्वा गृध्रकूटाद्रिशिखरे स बबन्ध तत्[2] ।
मौद्गल्यायनकृष्टे च तस्मिन् गिरिरकम्पत ॥ १२ ॥

---

१ H रचनोचिता ।
२ [illegible] suggests शरीरं as the antecedent of तत् ।

ཤཱ་རིའི་བུ་ཡིས་ལྷུན་པོ་ལ། རི་ནི་ལྷུང་བར་འཛིགས་ནས་བདགས།
དེ་ནས་དེ་ཡིས་བླངས་པའི་ཚེ། ལྷ་ཡི་གནས་ཀྱང་ཉམ་པར་གཡོས། 13

དེ་ནས་སྟོན་པའི་གདན་གསེར་གྱི། པད་ཙ་ནོར་བུའི་རང་བཞིན་ལ།
ཤཱ་རིའི་བུ་ཡིས་དེ་བཞིན་བདགས། ཕ་རོལ་ནས་མེད་ཉིད་དུ་གྱུར། 14

ཧཱུྃ་འཕྲུལ་རིམ་པས་མྱོ་གལ་བ། ཤཱ་རིའི་བུ་ཡིས་ཕམ་བྱས་པ།
ཞེན་དུ་སྤྲ་བར་དེས་ཕྱིན་ཚེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་དྲུང་དུ་སོང་། 15

དེ་དག་ཧཱུྃ་འཕྲུལ་ཆེས་བསྐྱོད་པས། ཀླུ་ནི་དགའ་བོ་ཉེ་དགའ་དག།
ས་འོག་ནས་ནི་རབ་འཕྲོས་དེ། འཛིགས་ནས་བཅོམ་ལྡན་ལ་ཕྱག་བཙལ། 16

ཤཱ་རིའི་བུ་ནི་གྲོལ་བའི་མཐུ། དེ་ནས་དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་དྲིས།
ཡི་ཤེས་སྤྱན་ལྡན་བཅོམ་ལྡན་གྱིས། སྔོན་བྱུང་དག་ནི་རབ་གསུངས་པ། 17

བྲཱ་ཧྨཱ་ཎ་སེར་སྔོན་བྱུང་བ། དྲང་སྲོང་དུང་དང་བྲིས་པའོ།
དེ་དག་ཆར་དང་ཆར་མེད་ནི། འགལ་བརྗོད་པན་ཚུན་འགྲན་པར་གྱུར། 18

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་དུང་བྲིས་པའི། ཀང་པས་རལ་པ་ལ་རེག་པ།
དྲིས་པས་དེར་སྣས་ཉི་ཤར་ཚེ། ཁྱོད་ཀྱི་མགོ་བོ་བྱེ་གྱུར་ཅིག། 19

དུང་གིས་སྨྲས་པ་བདག་ཚིག་གིས། ཉིན་བྱེད་འཆར་བར་མ་གྱུར་ཅིག།
དེས་འདི་བརྗོད་ཚེ་མཛེས་པ་ཡི། འགྲོ་བ་མུན་པ་དང་བཅས་གྱུར། 20

गिरिपातभयान्मेरौ[1] शारिपुत्रो बबन्ध तत्।
तेन कृष्टे ततोऽप्यस्मिन् विचचाल सुरालयः ॥ १३ ॥

शास्तुरासनहेमाब्जनाले मणिमये ततः।
शारिपुत्रेण बद्धं तत् परस्याशक्यतां ययौ ॥ १४ ॥

ऋद्धिक्रमेण मौद्गल्यः शारिपुत्रेण निर्जितः।
तस्मिन् पूर्व्वतरं प्राप्ते ययौ भगवतोऽन्तिकम् ॥ १५ ॥

तयोर्महर्द्धिविक्षोभान्नागौ नन्दोपनन्दकौ।
पातालादुत्थितौ भीत्या भगवन्तं प्रणेमतुः ॥ १६ ॥

जयिनः शारिपुत्रस्य प्रभावमथ भिक्षुभिः।
पृष्टो बभाषे भगवान् प्राग्वृत्तं ज्ञानलोचनः ॥ १७ ॥

अभूतां शङ्खलिखितौ वाराणस्यामृषी पुरा।
वर्षावर्षविवादेन संघर्षोऽभूत्तयोर्मिथः ॥ १८ ॥

कदाचिदथ शङ्खेन पद्भ्यां स्पृष्टजटः क्रुधा ॥
लिखितः प्राह तं मूर्द्धभेदः सूर्योदयेऽस्तु ते ॥ १९ ॥

शङ्खोऽवदन्मद्वचसा नोदेष्यति दिवाकरः।
इत्युक्ते तेन सुचिरं सान्धकारमभूज्जगत् ॥ २० ॥

---

१ Orig. मेरो।

དྲིས་པས་དེ་ལ་བརྩེ་བ་ཡིས། །ས་ཡི་རང་བཞིན་མགོ་བོ་བྲུས།
ཉི་མ་ཤར་ཚོ་འཕྲུལ་ལ་ནི། །ནོར་འཛིན་དུམ་བུ་བསྒྱུར་གྱུར་ཏོ། 21

སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་དུང་དེ་རིང་། །མཻ་ག་ལ་གྱི་བུ་ཉིད་གྱུར།
བྲིས་པ་ཤཱ་རིའི་བུ་འདི་སྟེ། །དེ་ལས་དེའི་ཚེའང་རྒྱལ་བར་གྱུར། 22

དེ་དག་གིས་ནི་སྔོན་བྱུང་མཐའ། །འདི་ནི་ཀུན་མཁྱེན་གྱིས་གསུངས་ཚོ།
ལས་ཀྱི་རྒྱུད་ནི་བཀྲ་བ་དེ། །སླར་ཡང་ཐུབ་པ་རྣམས་ཀྱིས་དྲིས། 23

བཅོམ་ལྡན་ལས་ནི་གང་དག་གིས། །འབྲས་བུ་མེད་བྱུང་འབྱུང་བ་འདི།
ཡེ་ཤེས་རང་བཞིན་ཁྱོད་ཀྱི་ཡང་། །ལུས་ལ་གང་གིས་རིག་པར་གྱུར། 24

རྗེ་བའི་ཟེར་མས་ཁྱོད་ཞབས་ཀྱི། །མཐེ་བོང་སྣང་པ་ཅི་ཡིས་སྣང་།
སེང་ལྡིང་ཐུར་མས་ཞབས་ཕྱུག་ནས། །མི་དང་བཅས་པ་འདི་ནི་ཅི། 25

བསོད་སྙོམས་མ་ཐོབ་ལྷུང་བཟེད་ནི། །སྟོང་པར་དེང་ཁྱོད་ལ་སྣང་ཅི།
མཛེས་མ་རབ་བྱུང་དེ་ཡིས་ནི། །རྫུན་གྱིས་ཁྱོད་ལ་སྐྱད་པ་ཅི། 26

མི་བདེན་སྐྱད་དང་བཅས་གྱུར་པས། །ཁྱོད་ལ་སྨྲ་བར་བྱེད་པ་ཅི།
བྱི་རན་དུ་ཙ་ཁྱོད་ཀྱིས་སྤྲོན། །ཀོ་ཏ་ར་ཡི་ནས་གསོལ་ཅི། 27

कल्पितं लिखितेनास्य कृपया मृण्मयं शिरः ।
सूर्य्योदयेऽथ सहसा शतधा वसुधां ययौ ॥ २१ ॥

जन्मान्तरे स शङ्खोऽद्य मौद्गल्यायनतां गतः ।
लिखितः शारिपुत्रोऽपि[१] तद्विजेता तदाप्यभूत्[२] ॥ २२ ॥

सर्व्वज्ञेनेति कथिते वृत्तान्ते प्राक्तने तयोः ।
तत्कर्म्मतन्त्रवैचित्र्यं पप्रच्छुर्मुनयः पुनः ॥ २३ ॥

भगवन् कर्म्मणां केषामद्भुतोऽयं स्फुटोद्गमः ।
तव ज्ञानमयस्यापि येन संस्पृश्यते वपुः ॥ २४ ॥

पादाङ्गुष्ठः क्षतः कस्मात्तव पाषाणधारया ।
विद्धः खदिरसूच्यायं सव्रणश्चरणश्च किम् ॥ २५ ॥

शून्यपात्रः किमप्राप्य भिक्षामद्यागतो भवान् ।
मिथ्याक्षिप्तोऽसि सुन्दर्य्या किं प्रव्राजिकया तया ॥ २६ ॥

वध्वा मानविका[३] किन्ते सापवादाभवन्मृषा ।
भुक्ताः किं कोद्रवयवा[४] वैरन्तेषु त्वया पुरा ॥ २७ ॥

---

१ W_1 and W_2 ०पुत्रोऽयम् ।
२ Orig. तदास्यभूत् ।
३ मानविकाशब्दस्तु णकारयुत एव ।
४ Orig. कोटर० । W_2 कोढर० or कोद्रुर० ।

བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ལོ་དྲུག་ནི། དཀའ་བ་སྤྱད་པར་གྱུར་པ་ཙི །
ཁྱོད་ཀྱི་ལུས་ལ་རབ་གནོན་གྱིས། ནད་གྱིས་ཙི་ཡི་སྐད་དུ་རེག། 28

ཤཱ་ཀྱའི་རིགས་ནི་འཛིག་པའི་ཚོ། ཁྱོད་ཀྱི་དབུ་ནི་བསྐྱང་གྱུར་ཙི།
ཙི་སྐད་ཁྱོད་ཀྱི་ལུས་མཆོག་ལ། ཀླུང་གིས་སྐུ་གྲིབ་བསྐྱང་བར་གྱུར། 29

དེ་དག་ཉམས་ཀྱིས་འདི་དྲིས་ཚོ། བཅོམ་ལྡན་འཇུམ་བཅས་དེར་གསུངས་པ།
ཉོན་ཅིག་རྒྱུན་ཆད་མེད་པར་ནི། ཉམས་པར་བཀྲ་བ་ལས་ཀྱི་རྒྱུན། 30

ལུས་ཅན་ལས་ཀྱི་འཆིང་བ་ནི། ཆས་ཞུགས་གཡོག་པོ་དམ་པ་བཞིན།
འགྲོ་ན་ཕྱི་ནས་འགྲོ་བར་བྱེད། སྡོད་ན་སྡོན་དུ་སྡོད་པར་བྱེད། 31

ནགས་ཚོམས་དག་ཏུ་འཇུག་ཅིང་ཕྱོགས་སུ་ཉམས་པར་གྱུ་ལ་རྒྱ་གཏེར་འགོང་པར་བྱེད།
རི་ཡི་དབང་ཕྱུག་ལ་འཛེག་བགྱི་བྱིན་གནས་ནི་ཀུན་དུ་མཐའ་ནས་མངོན་པར་འཇུག། 32

ས་འོག་སྣང་བ་མེད་པའི་ཡུལ་དུ་རབ་འཇུག་ལས་ཉམས་དུས་ཀྱི་བོ་རླབས་བཞིན།
འདི་དག་དོག་ཏུ་སྐྱེ་བོའི་རྗེས་སུ་འཇུག་པའི་ལམ་ནི་གང་ནའང་འགོག་པ་མེད།
ལས་ཀྱི་འཁྲི་ཤིང་རིང་པོ་གསར་པ་ཉིད་ལ་དོག་ཏུ་འབྲས་བུ་སྨིན་པས་ཁྱབ།
ངོ་མཚར་དང་བཅས་ལུས་ཅན་ལྡན་ཅིག་སྤྱོད་ཅིང་དེ་ལའང་ངེས་པར་གཡོ་བ་མེད།
གང་ཞིག་དགེ་བ་ཉམས་ཀྱིས་བཀུག་དང་ཡོངས་སུ་དཀྲིས་དང་ཉམས་པར་གསལ་བ་དཔ།
རབ་བཅད་གཉིས་དང་ངེས་པར་བཏོར་དང་ཕྱི་མར་ཕྲུས་ཀྱང་ཟད་པ་ཉིད་མི་འགྱུར། 33

वर्षाणि षट् भगवतः किमभूद्[1] दुष्करक्रिया ।
प्रस्कन्दि[2]व्याधिना स्पृष्टं कस्माच्च भवतो वपुः ॥ २८ ॥

शिरोऽर्त्तिरभवत् किं ते तस्मिन् शाक्यकुलक्षये ।
वायुना स्पृष्टः खेदोऽभूत् कस्माद्दिव्यतनोस्तव ॥ २९ ॥

इति तैर्भगवान् पृष्टस्तानभाषत सस्मितः ।
श्रूयतामनवच्छिन्नं वैचित्र्यं कर्म्मसन्ततेः ॥ ३० ॥

गच्छन्ति गच्छतः पश्चात् पुरस्तिष्ठन्ति तिष्ठतः ।
सद्भृत्या इव सन्नद्धा कर्म्मबन्धाः शरीरिणाम् ॥ ३१ ॥

गाहन्ते गहनानि दिक्षु विचरन्त्युल्लङ्घयन्त्यम्बुधिम्
आरोहन्ति गिरीश्वरानभिसरन्त्याक्रम्य शक्रालयम् ।
पातालं प्रविशन्त्यलोकविषयं कर्म्माणि कालोर्म्मिवत्
नास्त्येषामनिशं जनानुसरणे मार्गावरोधः क्वचित् ॥ ३२ ॥

दीर्घा कर्म्मलता नवेव सततं व्याप्ता पुराणैः फलैः
साश्चर्य्या सहचारिणी तनुभृतां तच्चाप्यलं निश्चला ।
याकृष्टा परिवेष्टिता विघटिता प्रोत्पाटिता मोटिता
निर्घृष्टा कणशः कृतापि कुशलैर्नैव प्रयाति क्षयम् ॥ ३३ ॥

---

१ W/1 किमेतत् दुष्करक्रिया ।

२ W/1 प्रस्कन्दी ।

གང་ཞིག་ཟླ་བ་མཛེས་པའི་ལུས་ལ་སྐྱོན་གྱི་ཐིག་ལེ་ནག་པོ་དང་།
གང་ཞིག་མ་རུངས་ནམ་པའི་སྤྲུལ་ནག་ནོར་བུ་འོད་ཟེར་རལ་ཅན་འཛིན།
སྣ་ཚོགས་གཟུགས་ཀྱིས་བཀྲ་བའི་སྤྱོད་པ་ལུས་ཅན་ནམས་ལ་སྟོན་བྱེད་པ།
འདི་ནི་བཀྲ་བའི་རིམ་པས་ཡོངས་སྨིན་ལས་ཀྱི་སྤྲུལ་པའི་རི་མོ་ཡིན། 34

གཞལ་དུ་མེད་པའི་ནོར་སྐྱེད་ཅིང་། བུ་མང་ཆུང་མ་དང་ལྡན་པའི།
ཁྱིམ་བདག་ཁར་བ་ཀ་ཞེས་པ། ཀར་པ་ཀར་ནི་སྔོན་བྱུང་གྱུར། 35

དེ་ཡིས་མཛའ་བས་བསྐྱངས་པ་ཡི། ཁྱིམ་པ་སྲུག་དྷ་ཞེས་བྱ་བ།
ནོར་མ་བགོས་པའི་སྤུན་ཟླ་ནི། མ་མི་གཅིག་པ་དེ་ཁྱིམ་གནས། 36

ནམ་ཞིག་ཁྱིམ་བདག་དེ་ལ་ནི། ཁྱིམ་བསམ་གཏམ་གྱི་བར་སྐབས་སུ།
ཆུང་མ་ནག་མོ་ཞེས་བྱ་བ། གྱུ་གྱུ་ཅན་གྱིས་དལ་བུས་སྨྲས། 37

ཧཱུ་ཡི་སྨྲས་པོ་སྔོངས་པ་ལས། བག་མེད་དྲང་པོར་ཁྱོད་ཀྱི་ནི།
ཁྱིམ་དུ་མ་མི་གཅིག་པས་སྤུན། དུག་གི་ལྗོན་པ་ནམ་པར་བསྐྱེད། 38

འགོད་ཁྲལ་གཅིག་བུ་འདི་ཡིས་ཀྱང་། འགོད་ལྡན་བུ་མང་ཁྱོད་ཀྱི་ནི།
བགོས་བ་མིན་པའི་ནོར་དག་ལས། ཕྱེད་ནི་ཚུལ་གྱིས་ལེན་པར་འགྱུར། 39

ནད་བཞིན་འཕེལ་བ་འདི་ལ་ནི། གསད་པ་ཁོ་ན་སྨན་གྱི་མཆོག།
གཉེན་གྱི་གཅོད་པ་དག་ལས་ཀྱང་། མི་ནམས་ནོར་གཅོད་བཟོད་པར་དཀའ། 40

कान्तः काये वहति मलिनं दोषविन्दुं यदिन्दुः
क्रूराकारः किरणजटिलं यन्मणिं कृष्णसर्पः ।
नानारूपैः शवलचरितं देहिनां दर्शयन्ती
सेयं चित्रक्रमपरिणता कर्म्मनिर्म्माणलेखा ॥ ३४ ॥

अभूद्गृहपतिः पूर्व्वं कर्पटे खर्व्वटाभिधः ।
अप्रमेयधनोत्पत्तिर्बहुपुत्रकलत्रवान् ॥ ३५ ॥

अविभक्तधनस्तस्य भ्राता वैमातृकः शिशुः ।
मुग्धनामा गृहे तस्थौ वात्सल्यात्तेन पालितः ॥ ३६ ॥

कदाचित्तं गृहपतिं कालिका नाम वल्लभा ।
उवाच कुटिला स्वैरं गृहचिन्ताकथान्तरे ॥ ३७ ॥

आर्य्यपुत्र त्वया गेहे सरलेन[१] प्रमादिना ।
मोहादसोदरो भ्राता विषवृक्षो विवर्द्धितः ॥ ३८ ॥

एकोऽपि बहुपुत्रस्य व्ययिनस्तव निर्व्ययः ।
अविभक्तधनादर्द्धं न्यायेनैष हरिष्यति ॥ ३९ ॥

अस्य व्याधेरिवैतस्य वधएवाद्यमौषधम् ।
बन्धुच्छेदादपि नृणां धनच्छेदो हि दुःसहः ॥ ४० ॥

---

१ W₂ चाप्रमादीना ।

ཟབ་མོའི་འདུ་འགོད་རྩོམ་པ་ཡིས། འཁོར་བར་སྐྱེ་བ་འདིས་གྱུར་པ།
ཆེན་པོ་གོད་པ་ལྷུང་གྱུར་ན། གཉིས་འཐུང་དབང་པོ་འགྲོལ་བ་བཞིན། 41

ཞེས་པ་དེ་ཡི་གདུག་པའི་ཚིག། ཐོས་ནས་བསམ་པ་རབ་འདར་ཞིང་།
མཛའ་བའི་ཞགས་པས་དབང་བྱས་ཏེ། དེ་ལ་གཙུགས་པས་རབ་སྨྲས་པ། 42

རེ་ཞིག་ཁྱོད་ཀྱིས་ཕན་པ་བརྗོད། འོན་ཀྱང་འདི་ནི་ཤིན་ཏུ་སྡིག།
ཕྱི་རོལ་ཡན་ལག་ནོར་ཐོབ་སླད། ལྷན་སྐྱེས་ཡན་ལག་སུ་ཞིག་གཏོད། 43

ནོར་ལ་ཆགས་ཉམས་ནོར་དོན་དུ། སྡིག་པ་བསམ་པ་རིགས་མ་ཡིན།
ནོར་ཉམས་བསྐྱུང་བར་གྱུར་མོད་ཀྱང་། སྐད་ཅིག་གིས་ནི་བརླག་པར་འགྱུར། 44

ཡང་ཡང་ལས་བླབས་རྩོམ་པ་ཡིས། རབ་སྐྱེད་འཁྲུགས་པའི་ཉམ་འཕྲུལ་ཅན།
དཔལ་ཉམས་རི་གཟར་ཆུ་བོ་བཞིན། བགྲོད་པ་དག་ནི་སུ་ཡིས་བཟློག། 45

དེ་སྐད་སྨིན་ལེགས་བདག་གི་ཡིད། སྤྲུན་ཟླ་གསོད་ལ་ཡོངས་མི་འཇུག།
ནོར་ཉམས་བདག་ནི་འཚོ་བ་ཡང་། སྤྱོད་ཚུལ་ཉམས་ན་འགྲོ་བ་གང་། 46

ཞེས་སྨྲས་བདག་པོ་དེ་ཡིས་ཡིད། སྣ་ཚོགས་རིགས་པ་ཉེར་བསྟན་ནས།
དལ་གྱིས་སྡིག་པ་དག་ལ་ནི། དེ་ཡིད་མངོན་པར་ཕྱོགས་པར་བྱས། 47

མཛའ་སྨུམ་མང་པོས་བསྐྱེད་བ་ཡིས། ལྷན་སྐྱེས་སྤྱི་བོར་སྐྱེས་པ་བཞིན།
བུད་མེད་སྦྲུ་གུའི་སོ་ནོན་གྱིས། འཕྲལ་ལ་བཅད་ནས་འདོར་བར་བྱེད། 48

गम्भीरायव्ययारम्भसंसारोचितजन्मनाम् ।
विपन्निपातो महतां द्विपेन्द्रपतनोपमः ॥ ४१ ॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा क्रूरमुत्कम्पिताशयः ।
स तामुवाच प्रणयात् स्नेहपाशवशीकृतः ॥ ४२ ॥

हितमुक्तं त्वया तावत् किन्त्वेतदतिपातकम् ।
सहजं कश्छिनत्त्यङ्गं वहिरङ्गधनाप्तये ॥ ४३ ॥

न युक्तमर्थशक्तानामर्थार्थं पापचिन्तनम् ।
क्षणेनायान्ति वित्तानि रक्षितान्यपि संक्षयम् ॥ ४४ ॥

मुहुःकर्म्मोर्म्मिसंरम्भसम्भवक्षोभविभ्रमाः ।
गच्छन्त्यः केन वार्य्यन्ते शैलकुल्या इव श्रियः ॥ ४५ ॥

तस्मान्न मे मनः सुभ्रु भ्रातृद्रोहे प्रवर्त्तते ।
वित्तभ्रंशेऽस्ति मे वृत्तिर्वृत्तभ्रंशे तु का गतिः ॥ ४६ ॥

इति तस्य ब्रुवाणस्य नानायुक्तिनिदर्शनैः ।
शनैः सा विदधे पत्युः पातकाभिमुखं मनः ॥ ४७ ॥

वर्द्धितान् बहुभिः स्नेहैः सहजान् मूर्द्धजानिव ।
छित्त्वा हरन्ति सहसा क्षुरधाराः खराः स्त्रियः ॥ ४८ ॥

རྨོངས་བས་བཅོམ་པའི་བློ་དང་ལྡན་མེད་ནི།
འཁྲུག་ཅིང་གཞན་ལ་རབ་གདུག་བྲོ་མིན་ལ།
འཇུག་པའི་སྐད་དུ་བཏོན་པ་སྤོན་སྦྱོར་ཞིང་།
སྡིག་པ་ངེས་པར་ལྷུང་བར་བྱེད་པ་ཉིད། 49

གཉེན་དང་གྲོགས་ལ་ཆགས་བྲལ་ཞིང་། སེམས་ནི་རང་བདེས་སྐྱོས་བསྒྱུར་པ།
དཔལ་ལྡན་རྣམས་ལ་དུད་པ་བཞིན། ལྡང་མེད་རྒྱལ་ལ་བློ་གྲོས་གང་། 50

དེ་ནས་དེ་ཡིས་སྤྲུན་ཟླ་ནི། མེ་ཏོག་བདུ་སྨད་ལ་དྲངས་ནས།
མི་མེད་ནགས་སུ་རྡོ་བ་ཡིས། ཚོ་ངེ་ཐོས་པ་མེད་པར་བསད། 51

དེ་ཉིད་ང་ཡིན་སྡིག་པ་དེ། སྐྱེ་བ་སྟོ་མ་རྣམས་སྤྱད་ནས།
མཐེ་བོང་སྣད་པའི་མཚན་ཉིད་ཅན། ད་ལྟའང་ལྷག་མའི་ཆ་ཤས་འཛིན། 52

དེད་དཔོན་དོན་གྲུབ་ཞེས་བྱ་བ། གཟིངས་ནི་གང་བར་གྱུར་པ་སྟོན།
རྗེས་སུ་མཐུན་པའི་རྐྱུང་དག་གིས། རིན་ཆེན་གླིང་ནས་ཡང་དག་འོངས། 53

དེ་ནས་དེད་དཔོན་གཉིས་པ་ནི། དོན་ཉམས་དེ་ལ་བརྟེན་གྱུར་པ།
སྟོང་བས་གཟིངས་ལ་སྦྲས་བ་ཡི། བུག་པ་བྱ་བར་རབ་དུ་བརྩམས། 54

ཅི་སྟེ་དོན་གྲུབ་གྱིས་མཐོང་ནས། ཡང་དང་ཡང་དུ་བཀག་གྱུར་ཀྱང་།
སྟོང་བས་ལོང་དེ་སྡིག་པ་ཡི། འབད་ལས་སྐད་ཅིག་ལོག་མ་གྱུར། 55

वक्रा परं क्रूरतरक्रियासु
प्रवर्त्तनायैव दृढ़ाभियोगा ।
पापा निपाताय भवत्यवश्यं
मोहाहतानां युवतिर्मतिश्च ॥ ४९ ॥

बन्धुमित्रविरक्तानां स्वसुखक्षीवचेतसाम् ।
स्त्रीयुतानामिव नतिः स्त्रीजितानां मतिः कुतः॥ ५०॥

अथ भ्रातरमाहूय नीत्वा पुष्पोच्चयाय सः ।
न्यवधीदश्रुताक्रन्दमश्मना विजने वने ॥ ५१ ॥

अहमेव स तत्पापं भुक्त्वा पूर्व्वेषु जन्मसु ।
वहाम्यद्यापि शेषांशमङ्गुष्ठक्षतलक्षणम् ॥ ५२ ॥

सार्थवाहोऽर्थदत्ताख्यः पूर्णप्रवहणः पुरा ।
पवनस्यानुकूल्येन रत्नद्वीपात् समाययौ ॥ ५३ ॥

द्वितीयः सार्थवाहोऽथ नष्टार्थस्तं समाश्रितः ।
द्वेषात् प्रवहणे छिद्रं प्रच्छन्नं कर्त्तुमुद्ययौ ॥ ५४ ॥

अथ दृष्टोऽर्थदत्तेन वार्य्यमाणः पुनः पुनः ।
पापप्रयत्नो द्वेषान्धः क्षणं न विरराम सः ॥ ५५ ॥

དེ་ནས་དོན་མཐུན་བདག་ཁྲིས་ནས། ཁྲི་ལྡན་ཚིས་པར་སྨོངས་པ་དེ།
མི་བཟང་ཤཱཀྱ་རབ་བསྟུན་ནས། སློག་དང་བྲལ་བ་ཉིད་དུ་བྱས། 56

དེ་ཉིད་ང་ཡིན་དེ་བཤད་ལས། སྡིག་འབྲས་སྐྱེ་བ་གཞན་སྐྱུད་ནས།
ལྷག་མའི་ཆ་ཤས་ད་ལྟ་ཡང་། ཀང་པར་སེང་ལྡེང་མི་འཛིན་ནོ། 57

ལག་ན་ལྷུང་བཟེད་བཙེ་བ་ཡིས། བརྟན་པའི་གྲོ་ལྡན་རང་སངས་རྒྱས།
ཨུ་པ་རི་མ་ཞེས་པ་སྔོན། ཀ་ཤིའི་གྲོང་དུ་བསྐྱོད་སྐྱང་ཞུགས། 58

དེ་ཡི་ལྷུང་བཟེད་ཡོངས་ཁེངས་པ། མཐོང་ནས་སྤང་བས་སྲུན་ཕྱུང་བ།
འབྲས་མེད་གཡོ་ལྡན་ཞེས་པ་ཡིས། ལག་པ་ཡིས་ནི་ས་ལ་ཕོ། 59

དེང་ཟས་བཅད་ལས་འཁྲུངས་པའི། སྡིག་དེ་སྐྱེ་བ་མང་པོར་ནི།
སྨྱུད་ཀྱང་འབྲས་བུ་ལྷག་མ་ཡིས། ལྷུང་བཟེད་སྟོང་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 60

བ་ཤི་ཥྛ་ཞེས་བྲ་བར་སྔོན། དགྲ་བཅོམ་ཉིད་ཐོབ་སེམས་རབ་དང་།
རབ་ཞིའི་དགའ་ཚལ་སྐྱོང་པ་ཡིས། བྲིས་པའི་གཙུག་ལག་ཁང་ན་གནས། 61

དེ་ཡི་སྲུན་ལྷ་རབ་བྱུང་ནི། བྷ་ར་དྭ་ཛ་སྐྱེ་བོ་ཡི།
བཀུར་སྟི་དག་གྱིས་དེ་མཐོང་ནས། སྡང་བའི་སེ་ཡིས་གདུངས་བར་གྱུར། 62

ཡོན་ཏན་ཅན་རྣམས་བཀུར་མཐོང་ནས། དེ་ཉམས་སྨད་དུ་སྐྱེ་བོ་རྣམས།
རབ་ཏུ་འབད་བྱེད་བདག་ཉིད་ནི། ཡོན་ཏན་གཏོང་ཕྱིར་བརྩོན་མ་ཡིན། 63

ततः सार्थपतिः कोपात् तं मात्सर्य्यविमोहितम् ।
तीव्रशक्तिप्रहारेण चकार गतजीवितम् ॥ ५६ ॥

अहं स तद्वधात् पापफलं भुक्त्वान्यजन्मसु ।
वह्याम्यद्यापि शेषांशं चरणे खदिरव्रणम् ॥ ५७ ॥

प्रत्येकबुद्धः पिण्डाय पात्रपाणिर्दयार्द्रधीः ।
विवेश काशनगरीमुपारिष्टाभिधः पुरा ॥ ५८ ॥

सम्पूर्णपात्रमालोक्य तस्य विद्वेषदूषितः ।
युवा चपलको नाम पाणिनापातयद्भुवि ॥ ५९ ॥

अहं स पापं तद्भक्तच्छेदोत्थं बहुजन्मसु ।
भुक्त्वापि फलशेषेण प्रयातः शून्यपात्रताम् ॥ ६० ॥

वशिष्ठाख्यः पुरार्हत्त्वं प्राप्तश्चित्तप्रसादवान् ।
उवास प्रशमारामे विहारे पौरकल्पिते ॥ ६१ ॥

भ्राता प्रव्रजितस्तस्य भरद्वाजः सदोदितम् ।
विलोक्य जनसत्कारं ययौ द्वेषाग्नितप्तताम् ॥ ६२ ॥

गुणिनां मानमालोक्य प्रयत्नं तद्विनाशने ।
जनः करोति नत्वात्मगुणाधानसमुद्यमे ॥ ६३ ॥

ཆེན་པོ་ལ་འོས་གོས་བཟང་ཞིག། སྐྱེ་བོ་གུས་པས་ཕུལ་བ་ནི།
དྲང་པོའི་སེམས་ལྡན་བ་ཤི་ཀྵ། མཛའ་བས་སྤྱན་ལྷ་དེ་ལ་ཕྱིན། 64

དེ་བླངས་ཡོན་དན་ལ་སྦྱང་དེ། ཁོན་དང་བྲལ་བ་ཉིད་མ་གྱུར།
ཕན་པ་རྣམས་དང་མཛའ་བས་ཀྱང་། ངན་པ་རང་གི་མི་འགྱུར་རོ། 65

དེ་ཡིས་གཙུག་ལག་ཁང་སྐྱོང་མ། དབེན་སར་ཡང་དག་བོས་ནས་ནི།
གོས་ནི་བཟང་དག་དེ་ལ་ཕྱིན། བཀུར་སྟི་བྱས་ནས་རབ་སྨྲས་པ། 66

གོས་བཟང་འདི་ནི་སྐྱིད་བཟང་མ། ཁྱོད་ཀྱིས་གཞོན་ལ་སྐྱེ་བོ་དག།
འདྲི་ནབ་ཤི་ཀྵ་ཡིས་ནི། ཕྱིན་ཞེས་དལ་གྱིས་སྨྲ་བར་བྱ། 67

དེ་སྐད་དེས་བརྗོད་དེ་ཡིས་ཀྱང་། ཁས་བླང་དེ་ཡིས་བསྟན་པ་བྱས།
གང་གྱིས་བ་ཤི་ཀྵ་ལ་ནི། སྐྱེ་བོ་སྐྱོང་བར་དགོས་པར་གྱུར། 68

ཚུལ་ཁྲིམས་མ་ཚང་བརྗོད་པས་དེས། དེ་ནས་གྲོང་པས་མ་མཆོད་དེ།
རིང་དུ་སོང་གྱུར་ཆེན་པོ་རྣམས། བཀུར་སྟི་ཉམས་པས་འཇིགས་པ་ཉིད། 69

བྷ་ར་དྭ་ཛ་དེ་བདག་སྟེ། འཕགས་ལ་སྨད་བས་སྐྱེ་གཞན་ལ།
བསོད་ནམས་མིན་སྤྱད་དེས་ལྷག་ལས། མཛེས་མས་དེང་ཡང་རྫོན་གྱིས་སྨད། 70

བདག་སྟོན་བྲམ་ཟེའི་ཕྲག་དོག་གིས། བ་ར་ཀྵ་སིར་ཐུབ་པ་ནི།
ཚོ་ལྡན་མཐོན་ཞེས་ལྷ་པ་ཡིས། གཟུགས་པ་ཕྲག་དོག་དག་གིས་བཅོམ། 71

महार्हवस्त्रयुगलं श्राद्धे भक्तजनार्पितम्।
तस्मै वशिष्ठः प्रददौ प्रीत्या सरलमानसः॥ ६४॥

तदादाय गुणद्वेषी न वैराद्विरराम सः।
नोपकारैर्नवा प्रीत्या निजतां याति दुर्ज्जनः॥ ६५॥

एकान्ते स समाहूय विहारपरिचारिकाम्।
दत्वास्यै वस्त्रयुगलं जगाद कृतसत्कृतिः॥ ६६॥

इदं त्वया वस्त्रयुगं परिधाय सुमध्यमे।
वशिष्ठेनार्पितमिति प्रश्ने वाच्यः शनैर्जनः॥ ६७॥

इति स्वीकृत्य तेनोक्ता तदादिष्टं चकार सा।
येनाभवद्वशिष्ठस्य जनो विप्लवशङ्कितः॥ ६८॥

शीलवैकल्यवादेन सोऽथ पौरैरपूजितः।
दूरं ययौ महान्तो हि सत्कारभ्रंशभीरवः॥ ६९॥

सोऽहमार्य्यापवादेन भरद्वाजोऽन्यजन्मसु।
भुक्त्वाप्यपुण्यं तच्छेषात् सुन्दर्य्याद्य मृषार्द्दितः॥ ७०॥

ब्राह्मणोनेर्ष्यया पूर्व्वं वाराणस्यां मया मुनेः।
दर्वादेन हृता कीर्त्तिः पञ्चाभिज्ञस्य धीमतः॥ ७१॥

མེ་ཏོག་བཞུ་ཅན་གྲགས་པ་ཡི། བ་དན་ལྟར་མཛེས་སྨད་འཚོང་མ།
བཟང་མོ་ཞེས་བྱ་བུད་མེད་མཆོག། བ་ར་ཎཱ་སིར་སྔོན་བྱུང་གྱུར། 72

གཡོ་ལྡན་གྲུ་གྲུའི་བསམ་པ་ཅན། པད་ཙ་ཞེས་པས་ནམ་ཞིག་དེ།
མཐོང་ནས་མཚན་མོ་སྦྱུད་པའི་སྐད། གོས་དང་རྒྱན་དག་དེ་ལ་ཕྲིན། 73

དེ་ནས་གཡོ་བའི་ཆགས་པ་ཅན། མཚམས་ལ་འགྲོགས་པར་མངོན་ཕྱོགས་པའི།
ཉིན་མོར་བྱེད་པ་ནམ་མཁའ་ཡི། ཁྲིམས་ཀྱི་མཐར་ནི་བབས་པའི་ཚེ། 74

བཟང་མོ་རང་གི་ཁྱིམ་སོང་ནས། མེ་ཏོག་གོས་དང་རྒྱན་རྣམས་ཀྱིས།
མཛེས་བ་ཉིད་ཀྱི་རྒྱན་ལ་ནི། སླར་ཡང་རློས་པའི་རྒྱན་དག་བྱས། 75

སྨག་སྟི་ཀིང་པའི་མཐིལ་ལ་རབ་ཆགས་ཤིང་།
ཧོ་ཤལ་མཆོག་ནི་མགྲིན་པར་དཔྱངས་ནས་ཀྱང་།
བྱ་བ་དོན་གཉེར་མི་ཡོང་ལ་ཕྱོགས་དེ།
སྨད་འཚོང་སྤྱོད་པའི་དོན་བཞིན་དེ་ཡིས་བྱས། 76

མགྲིན་པ་ལ་གཞན་བཞིན་གཞན་མཚུ་ལ་གཞན།
དེ་བཞིན་གཟུགས་ཅན་མ་རེས་སྙིང་ལ་གཞན།
རྣམ་བཀྲ་རང་གི་བྱ་པ་གཟུགས་བརྙན་བཞིན།
སྐྱེས་བུ་ཆགས་བྱེད་ཉིད་ཀྱིས་རྒྱན་རྣམས་བཟུང་། 77

वाराणस्यामभूत्पूर्व्वं भद्रा नाम वरानना ।
वेश्या यशःपताकेव कान्ता कुसुमधन्वनः ॥ ७२ ॥

तां कदाचिन्मृणालाख्यो विटः कुटिलचेष्टितः ।
दृष्ट्वा तस्यै ददौ रात्रिभोगायांशुकभूषणम् ॥ ७३ ॥

ततस्तरलरागायाः सन्ध्यायाः सङ्गमोन्मुखे ।
गगनाङ्गनपर्य्यन्ते[1] लम्बमाने दिवाकरे ॥ ७४ ॥

गत्वा स्वभवनं भद्रा पुष्पांशुकविभूषणैः ।
लावण्याभरणा चक्रे पुनरुक्तं प्रसाधनम् ॥ ७५ ॥

अलक्तके पादतलावसक्ते
कण्ठावलम्बिन्यपि तारहारे ।
कार्य्यार्थिनी दर्पणसम्मुखी सा
चकार वेश्याचरितं यथार्थम् ॥ ७६ ॥

कण्ठेऽन्यदन्यत् वदनेऽन्यदोष्ठे
बभार तन्वी हृदये तथान्यत् ।
सा भूषणं लोभनमेव पुंसाम्
मूर्त्तं स्वकर्त्तव्यमिवातिचित्रम् ॥ ७७ ॥

---

१ W/I पर्य्यान्ते ।

ཡིད་སྐྱེས་གྱུལ་བའི་གྲགས་པ་ཟླ་བའི་གཟུགས་ནི་དང་པོ་བཞིན།
ཡན་བྲུ་ཐིག་ལེའི་རི་མོས་འཛེ་སྐྱིག་ལྡན་པར་རབ་སྤྲས་ཤིང་།
རབ་འགྲོ་བདུག་པའི་དུ་བས་རབ་རིབ་ཐྲུན་མཚམས་བཞིན་བཀྲ་བ།
ཆགས་པ་དར་བྱུས་ཡན་ལག་དང་བཅས་ཆགས་བ་དེ་རབ་མཛེས། 78

དེ་ནས་གཡོག་མོ་རྒྱ་སྲིན་མ། ཞེས་པ་སྒྱུར་བར་རབ་ཞུགས་ཏེ།
དེར་སྤྲས་སྐད་ཅིག་འགྲོགས་འདོད་པའི། གཞོན་ནུ་གསར་པ་ཕྱི་ན་སྡོད། 79

ཀྚ་པ་ནི་བརྒྱ་ཕྲག་ལྔ། ཏྭ་བཞིན་དུ་ནི་སྟེར་བར་བྱེད།
འདི་ནི་ཁྱོད་ཀྱི་གཏེར་ཞིང་འོངས། ནང་ཞུགས་ཉིད་ནི་ཕྱི་རོལ་ཐོང་། 80

རབ་མང་ནོར་ལྡན་གཏོང་ཕོད་ཅན། བྲིལ་བས་ལུན་རིང་མི་སྡོད་པ།
འདོད་བསྐྱིབས་འདོད་ལྡན་བཟོད་པ་ཅན། སྐལ་བ་བཟང་མོ་ག་ལ་ཐོབ། 81

ཅེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། ཡོན་དང་ཆགས་པའི་བར་དུ་ནི།
སྐད་ཅིག་འཕྱུང་མོ་ཕུག་པ་བཞིན། བཟང་མས་འཛུམ་བཅས་རབ་སྤྲས་པ། 82

གཞན་ལས་བླ་ནི་ཟླང་པ་དག ལམ་སྣང་དག་གི་བུད་མེད་བཞིན།
དེ་དུས་དོན་གཉེར་གཞན་ལ་ནི། ལག་བཟེད་ཉིད་དུ་ཛི་ལྟར་འགྱུར། 83

སྐྱེ་བོ་ནམས་བཞིན་ཐམས་ཅད་ཀྱི། དབང་དུ་གྱུར་ཀྱང་སྐད་ཅིག་ནི།
གང་གིས་སྟོན་ཉིད་འཐམས་པ་དེ། སྨད་འཚོང་བུད་མེད་ནམས་ཀྱིས་བདག། 84

कलिततरुणरागा साङ्गरागा बभौ सा
तिमिरशबलसन्ध्येवोल्लसद्धूपधूमैः।
मनसिजजयकीर्त्तिं मूर्त्तिमाद्यामिवेन्दो-
रलकतिलकलेखां लीलया सूचयन्ती ॥ ७८ ॥

ततः प्रविश्य त्वरिता दासी मकरिकाभिधा।
तामूचे क्षणसंगार्थी वहिरास्ते युवा नवः ॥ ७९ ॥

कार्षापणानां तृणवद् वितीर्य्य शतपञ्चकम्।
प्रविश्येव विनिर्याति सोऽयं ते निधिरागतः ॥ ८० ॥

प्रभूतद्रविणत्यागी व्यग्रत्वादचिरस्थितिः।
छन्नकामः क्षमी कामी सुभगे लभ्यते कुतः ॥ ८१ ॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा भद्रा प्रोवाच सस्मिता।
क्षणं दोलायमानेव मध्ये दाक्षिण्यलोभयोः ॥ ८२ ॥

कथं रथ्याङ्गनेवाहमन्यस्मादात्तवेतना।
गच्छामि प्रार्थितान्यस्य तत्क्षणोत्तानपाणिताम् ॥ ८३ ॥

प्रपाणामिव सर्व्वस्य स्वाधीनानामपि क्षणम्।
पूर्व्वसेवा कृता येन स स्वामी वेश्ययोषिताम् ॥ ८४ ॥

མཚན་མོ་གཅིག་པུ་འདི་ཉིད་ནི། པད་ཙམ་ཉིས་ལ་ཅི་ཞིག་བཟློད།
གཞན་གྱིས་སྔ་དྲོ་འོང་དུ་རྩུག། བདག་ཅག་དོག་དུ་གསར་པ་རྩོམ། 85

བཟང་མོས་འདི་བཟློད་རྩང་ངུ་དེས། མཆོག་དུ་སྦྲང་རྩི་ལ་ཆགས་བཞིན།
གསར་པ་གསར་པའི་རོར་ཆགས་ཤིང་། ཁྲིམས་པས་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ། 86

གལ་ཏེ་འོང་བ་བཏང་གྱུར་ན། སོང་བ་ནང་པར་འོང་མི་འགྱུར།
སྐད་འཚོང་ནམས་དང་ཚོང་པ་ལ། སྐལ་བས་ཉོ་པ་མང་བར་འགྱུར། 87

འདི་ནས་ཙུང་ཟད་འདི་ནས་དང་། ཙུང་ཟད་ཉིན་མཚན་དུ་གསོག་པ།
སྐད་འཚོང་ནམས་ཀྱི་སྐྱིས་བུ་ཡིས། རྡེད་པའི་མེ་ཏོག་འཐུ་བ་བཞིན། 88

སྐད་འཚོང་མ་ལ་དོག་དུ་མཛའ། སྤྲོང་བ་ནམས་ཀྱི་རིག་པ་བཞིན།
ཚོས་ཀྱི་སྐད་མིན་འདོད་སྐད་མིན། ནོར་ཉིད་སྐད་དུ་གྲུས་པར་བྱེད། 86

མང་དང་འགྲོགས་པས་སྐད་འཚོང་མ། མི་གཙང་བ་ཉིད་མི་འགྱུར་ཞིང་།
འདི་ཡི་བདུལ་ཞུགས་མི་ཉམས་ཏེ། སྐར་ལ་དོན་དུ་གཉེར་བྱར་འགྱུར། 90

གཞན་དག་ཕྱིར་འཐོན་གཞན་ན་འདུག། གཞན་དག་ཕྱི་ནས་རབ་ལྟ་བའི།
སྐད་འཚོང་གང་དེ་མཛེས་པ་སྟེ། ས་ཡི་བདག་པོའི་མདུན་ས་བཞིན། 91

ཚོང་པ་དབུལ་པོའི་སྤང་བཞིན་དུ། སྟོང་པར་ཁྱིམ་ན་གང་འདུག་པ།
སྐད་འཚོང་ནམས་ལ་འདི་ལས་ནི། ལྷག་པ་སྐལ་ངན་གཞན་པ་ཅི། 92

एकैवेयं मृणालेन क्रीता रात्रिः किमुच्यते ।
परः प्रातः समायातु नवारम्भाः सदा वयम् ॥ ८५ ॥

इत्युक्ता भद्रया क्षुद्रा मधुलुब्धेव सा परम् ।
सक्ता नवनवास्वादे कुपिता तामभाषत ॥ ८६ ॥

न गतः प्रातरागन्ता प्राप्तः संत्यज्यते यदि ।
भाग्यैर्भवति वेश्यानां वणिजाञ्च बहुक्रयः ॥ ८७ ॥

इतः किञ्चिदितः किञ्चिच्चिन्वन्तीनां दिवानिशम् ।
वेश्यानां पौरुषो लोभः कुसुमावचयोपमः ॥ ८८ ॥

न धर्म्माय न कामाय धनायैव प्रसाध्यते ।
वेश्या याचकविद्येव बहुप्रणयिनी सदा ॥ ८९ ॥

नायात्यशुचितां वेश्या व्रतमस्या न लुप्यते ।
भजते बहुसङ्गेन प्रत्युताभ्यर्थनीयताम् ॥ ९० ॥

निर्यान्त्यन्ये विशन्त्यन्ये प्रतीक्षन्ते वहिः परे ।
यस्याः सा शोभते वेश्या सभा भूमिपतेरिव ॥ ९१ ॥

दौर्भाग्यं पण्यकामिन्याः किमन्यन्नास्त्यतोऽधिकम् ।
तुलेव क्षीणा वणिजः शून्याः सीदन्ति यद्गृहे ॥ ९२ ॥

སྐལ་ངན་གྱིས་ནི་འཛིན་བྱེད་མེད། འབྱོན་མ་སྟོང་པར་ཉལ་བ་ནི།
སྤུ་དྲོ་འདོད་ལྡན་ཉམས་ཀྱི་སྐྲ། རྫོན་གྱི་འཁྲུག་པར་གྲུབ་པར་བྱེད། 93

འཕྲུལ་ལ་ཏྭོ་བ་ཡོངས་བཏང་ནས། རིང་ན་གནས་ལ་བསྐྲུགས་པ་ན།
རྫོང་འགྲིམས་ས་རྩ་སྨད་འཚོང་མ། འཕྲིང་བ་བཞིན་དུ་སྒྱུར་དུ་བསྐམ། 94

འདི་ནི་དགེ་མཚན་ཙམ་དོན་གཉེར། བྱ་བས་བྲིལ་ཞིང་མང་དུ་སྟེར།
ནང་ཞུགས་ཉིད་ན་ཕྱི་རོལ་འགྲོ། ཅི་ཉམས་ནོར་ནི་བླང་བར་མཛོད། 95

ཕན་པ་འདི་ཐོས་བཟང་མོ་དེས། དེ་བཞིན་ཞེས་དེ་ཁ་ཡིས་བླང་།
སྨད་འཚོང་རང་བཞིན་ཆགས་པ་སྟེ། རིག་པ་སྐྱེ་བོ་ཆགས་བྱེད་ཉིད། 96

སྐད་ཅིག་ཉིད་ནི་དེར་བཟོད་མཛོད། བདག་གིས་ཆས་དང་གྱོན་མ་ཚར།
ཞེས་པའི་འཕྲིན་ནི་སྐྱིལ་བ་ལ། པད་ཙ་ལ་ནི་གཡོག་མོ་བཏང་། 97

འདོད་ལྡན་མཛེས་པ་ཞེས་བྱ་བ། མང་པོ་སྦྲིན་པས་སྐད་ཅིག་ནི།
གླང་པོས་པདྨ་ཙན་བཞིན་དེ། སྦྱད་པས་འཁྲུགས་པ་ཉིད་གྱུར་དོ། 98

དེ་ནས་དེ་ནི་སོང་བ་དང་། མཆུ་ནི་སོས་བཅད་ལྷག་མ་དང་།
དེ་ཡིས་བཅེ་མེད་འབྱུང་པ་ཡིས། སྐད་ཅིག་གིས་ནི་ཐིང་ཉིད་ཐོབ། 99

སྔར་ཡང་གྱོན་ནི་རབ་བརྫུང་ན། པདྨའི་ཙ་ལ་སྒྱུར་བར་ནི།
བྱོན་ཞེས་སྨྲང་བ་སྨྲས་པ་ཡིས། གྲོགས་མོ་དེ་ནི་ཉམས་པར་སྨྲངས། 100

अभाग्यैर्ग्राहकाभावे गणिका शून्यशायिनी ।
मिथ्या वर्णयति प्रातः कामुकैर्द्वारभञ्जनम् ॥ ९३ ॥

सद्यःक्रयपरित्यागा दूरवर्त्तिप्रतीक्षया ।
माला इवाशु शुष्यन्ति वेश्याः पण्यप्रसारके[१] ॥ ९४ ॥

एष कौतुकमाचार्यो कार्य्यव्यग्रो बहुप्रदः ।
प्रविश्यैव विनिर्याति का क्षतिर्गृह्यतां धनम् ॥ ९५ ॥

श्रुत्वैतत् स्वहितं भद्रा तथेति प्रत्यपद्यत ।
लोभः स्वभावो वेश्यानामौचित्यं जनरञ्जनम् ॥ ९६ ॥

क्षम्यतां क्षणमत्रैव नाहं सज्जप्रसाधना ।
[विससर्ज मृणालाय दासीं सन्देशवादिनीम् ॥ ९७ ॥

क्षणं सुन्दरकाख्येन बहुदानेन कामिना ।
सा पद्मिनी गजेनेव भुक्ता व्यालोलतां ययौ ॥ ९८ ॥

ततस्तस्मिन् गते दन्तच्छेदोच्छिष्टरदच्छदा ।
निर्दयालिङ्गनैस्तेन नीता निर्म्माल्यतां क्षणात्[२]] ॥ ९९ ॥

विससर्ज्ज मृणालाय पुनरात्तप्रसाधना ।
सा सखीं गूढविद्वेषां तूर्णमागम्यतामिति ॥ १०० ॥

---

१ W_1 वेश्यापण्यः प्रसारके ।
२ W_1 and W_2 omit the portion bracketted.

མང་དང་སྐད་ཅིག་ལ་འགྲོགས་སྨད་འཚོང་གང་།
དེ་ནི་དང་པོ་གཞན་ནོར་ཅི་ལ་འཛིན།
བདག་དོན་ཉིད་དུ་བྱས་པའི་ཆས་འདི་དག།
ཁྱོད་ཀྱིས་རྡུལ་གྱི་ཐིགས་པའི་ལྷག་མར་བྱས། 107

ཞེས་སྨྲས་གཟུགས་བཟང་མོ་ཡི་འདོག་པག་ནི།
གཡོ་ཞིང་བསྐྱོད་པའི་གསལ་བའི་སྒྲ་དག་གིས།
དྲིན་མཛོད་བུ་མོ་གཞོན་ནུ་གསང་པའི་འོས།
སྤྱངས་ཞེས་དམན་པས་སྤོང་བར་བྱེད་པ་བཞིན། 108

སྦྲང་བའི་འཕྲེང་བ་སྒྲ་སྒྲོག་གདིབས་པ་ཡི།
འཁྲི་ཤིང་ཚོམས་ཀྱང་བཞིན་ནི་རབ་བརྡུད་པས།
ལྷག་པའི་ཡལ་འདབ་ཀུན་དུ་གཡོབ་བྱེད་ཅིད།
བརྩེ་བས་རིང་ནས་ཟློག་པར་བྱེད་པ་བཞིན། 109

འཛིགས་རུང་བསྟུན་པའི་སྟག་བཞིན་བརྩེ་མེད་དེས།
ཡན་ལག་འཁྲི་ཤིང་སྐྲག་ཉམས་རི་དགས་ནི།
གཡོ་ཡང་མིག་ཅན་བསད་ནས་མགྲོགས་པ་ཡིས།
གཏུམ་པོ་མཚོན་ཆ་ཁྲག་སྦགས་རབ་ཏུ་སོང་། 110

ऋणेन वेश्या बहुसङ्गता या[1]
गृह्णाति सा किं परवित्तमादौ ।
मदर्थमेवाहित एष वेशः
कृतस्त्वया स्वेदकणावशेषः ॥ १०७ ॥

इति ब्रुवाणः सुतनोः प्रकम्प-
विलोलकाञ्चीरशनारवेन ।
प्रसीद बालामबलामबध्यां
रक्षेति दैन्यादिव याच्यमानः ॥ १०८ ॥

लताभिरप्याकुलभृङ्गमाला-
विराविणीभिर्दययैव दूरात् ।
निवार्य्यमाणः प्रणताननाभिः
समन्ततः पल्लवपाणिकम्पैः ॥ १०९ ॥

घोराकृतिर्व्याघ्र इवाघृणोऽसौ
चासावसन्नाङ्गलतां कुरङ्गीम् ।
हत्वा नृशंसस्तरलायताक्षीं
रक्ताक्तशस्त्रः प्रययौ जवेन ॥ ११० ॥

---

१ H, W₁ and W₂ read ऋणेन यस्या बहुसङ्गतायाः ।

གང་ཞིག་ཁྲོ་བའི་ཡོང་བས་མིག་བཀག་པ།
དེ་དག་རྣམས་ལ་བྲ་མིན་ཅི་ཞིག་ཡོད།
རྟག་ཏུ་ཡིད་ནི་བརྩེ་བས་དབྱུལ་བ་ཡིས།
སྐྱོད་ཚུལ་བརྩེ་མེད་འཇིགས་རུང་རྣམས་ལ་ཡང་། 111

དབེན་པར་བཟང་མོ་སྡིག་ཅན་གྱིས་བསད་ཅེས།
དེ་ནས་དེར་ནི་འཐངས་མོས་སྨྲ་བསྒྲགས་ཤིང་།
སྐྱེ་བོ་འདུས་ཚེ་ཉི་ཚེ་སངས་རྒྱས་ཀྱི།
ནགས་མཐར་དེ་ནི་རང་དགའ་དག་ཏུ་ཞུགས། 112

དེ་མདུན་ཁྲག་གིས་སྦགས་པའི་མཚོན་བཞག་ནས།
སྐྱེ་བོའི་ཚོགས་ཀྱི་ནང་དུ་དེ་བྲོས་ཚེ།
རྟག་འཛིན་གྲོང་པས་སྡིག་པ་མེད་མོད་ཀྱང་།
རང་སངས་རྒྱས་ནི་འཕྲལ་ལ་གཟུང་བར་འགྱུར། 113

མ་རུངས་གཞོན་ཁྲིད་ལ་འོས་གསོད་པའི་སར།
དེ་ནས་རྒྱལ་པོའི་བཀའ་ཡིས་དེ་ཁྲིད་ཚེ།
པདྨའི་ཙ་ལག་འཕྲལ་ལ་འགོད་པ་སྐྱེས།
སྡིག་པ་འདི་ནི་བདག་གིས་བྱས་ཞེས་སྨྲས། 114

तेषामकार्य्यं किमिवास्ति येषां
क्रोधान्धरुद्धानि[1] विलोचनानि।
दयादरिद्राणि मनांसि नित्यं
नैर्घृण्यघोराणि च चेष्टितानि ॥ १११ ॥

पापेन भद्रा विजने हतेति
कोलाहले तत्र कृतेऽथ दास्या।
जनाभिसारे सुरुचेर्विवेश
प्रत्येकबुद्धस्य स काननान्तम् ॥ ११२ ॥

धृत्वा तदग्रे रुधिरार्द्रशस्त्रं
तस्मिन् प्रविष्टे जनतान्तरालम्।
पौरैरपापोऽपि गृहीतचिह्नैः
प्रत्येकबुद्धः सहसा गृहीतः ॥ ११३ ॥

नीतेऽथ तस्मिन् नृपशासनेन
क्रूरापराधोचितबध्यभूमिम्।
जातानुतापः प्रसभं मृणालः
पापं मयैतत् कृतमित्युवाच ॥ ११४ ॥

---

१ W 1 क्रुधान्ध्यरूढानि।

དེ་ནས་དེ་ཡི་ཚིག་གིས་རང་སངས་རྒྱས།
དཔྱོད་ནས་རྒྱལ་པོས་ཕྱུག་འཚོལ་བཏང་བའི་ཚེ།
ངན་བྲིད་ལ་འོས་བཟོད་པ་དཀའ་བའི་བཀའ།
ཉམས་སྐྱོང་འདི་ནི་པདྨའི་ཚ་བས་ཐོབ། 115

དེ་ང་དྲག་པོའི་སྡིག་དེས་སྐྱེ་བ་མང་།
འབུམ་གྱིས་དམྱལ་བའི་ནང་དུ་ཡོངས་སྨྱུད་ནས།
དེ་ཡི་ལས་འབྲས་ལྷག་མ་ད་ལྟ་ཡང་།
མུ་སྟེགས་བུ་མོའི་རྫོན་གྱིས་མངོན་པར་སྨྲར། 116

གྲོང་ཁྱེར་གཅིན་ལྡན་དགག་ན་སྡོན། བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བ་རྣམ་པར་གཟིགས།
གྲོང་པའི་ལོངས་སྤྱོད་ཀྱིས་མཆོད་ཅིང་། དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་བསྐོར་ཏེ་གནས། 117

བྲམ་ཟེ་མ་ཁྲར་ཞེས་པ། མཆོད་དང་ལྡན་པ་དེ་མཐོང་ནས།
གྲོང་པ་ལ་སྨྲས་དགེ་སློང་ནི། མགོ་རེག་ལོངས་སྤྱོད་འོས་པ་མིན། 118

ཀོ་ཊ་ར་ཡི་ནས་ཙམ་གྱིས། འདི་དག་གི་ནི་ཁ་ཟས་བསྒྲུབས།
མགོ་རེག་སྐྲུར་བག་ལྡན་པའི་ཁ། མཆོག་གི་ཁ་ཟས་འོས་པ་མིན། 119

བྲམ་ཟེ་དེ་དག་ཚིགས་དེ་ལས། སྐྱེ་བ་མང་པོར་དེ་ཡི་སྡིག
སྨྱུད་ཅིང་ད་ལྟ་ལས་ལྷག་གིས། ཀོ་ཊ་ར་ཡི་ནས་ཀྱི་ཟས། 120

मुक्तो ततस्तद्वचसा विचार्य्य
प्रत्येकबुद्धे प्रणिपत्य राज्ञा ।
रसज्ञतां दुःसहशासनस्य
नीतो मृणालः कुक्कतोचितस्य ॥ ११५ ॥

अहं स पापं बहुजन्मलक्षै-
र्भुक्त्वा तदुग्रं नरकान्तरेषु ।
अद्यापि तत्कर्म्मफलावशेषात्
मिथ्यैव[1] तीर्थाङ्गनयाभियुक्तः ॥ ११६ ॥

बन्धुमत्यां पुरि पुरा विपश्यी[2] भगवान् जिनः ।
भोगैरभ्यर्चितः पौरैस्तस्थौ भिक्षुगणैर्वृतः ॥ ११७ ॥

पूज्यमानं तमालोक्य ब्राह्मणो मठराभिधः ।
उवाच पौरान् विशिखा भोगयोग्या न भिक्षवः ॥ ११८ ॥

पुराणैः कोद्रवयवै[3]र्भोज्यमेषां विधीयताम् ।
न मुण्डकानां विकटं दिव्याहारार्हमाननम् ॥ ११९ ॥

इति वाक्यात् स विप्रोऽहं तत्पापं बहुजन्मसु ।
भुक्त्वाद्य कोद्रवयवाहारः शेषेण[4] कर्म्मणः ॥ १२० ॥

---

१ W_1 and W_2 मिथ्येव । २ W_1 विपस्वी ।
३ W_2 read कोटरयवैः and notes at the margin—कोद्रवयवैः ।

གང་ཚེ་བདག་སྟོན་བྲམ་ཟེ་ཡི། །ཁྲིའུ་ཨུད་ད་ར་ཞེས་གྱུར།
དེའི་ཚེ་བདག་གི་རིགས་མཆོག་ལ། །སྨད་པ་ཡིས་ནི་མི་དགེ་ཐོབ། 121

ལས་དེ་ད་ལྟ་ཡོ་དྲུག་ཏུ། །དཀའ་བ་སྤྱད་པ་བདག་གིས་བསྐྱུབས།
དེ་ལས་ལྷག་པ་བྱང་ཆུབ་ཀྱིས། །བསྒྲུངས་པ་ཡིས་ནི་ཐོབ་མ་གྱུར། 122

ཁྲིམ་བདག་ནོར་ལྡན་ཞེས་བྱ་བ། །ཀར་པ་ཊར་ནི་སྟོན་བྱུང་སྟེ།
དཔལ་ལྡན་ཞེས་བྱ་དེ་ཡི་བུ། །ལུས་ནི་ནོལ་གནས་མིན་པར་གྱུར། 123

དེ་ནི་སྨན་པ་ཁ་བའི་བཞིན། །ཞེས་པ་ནོར་མང་རེ་བ་ཡིས།
ནོལ་གནས་བྱས་ཀྱང་དེ་ཡི་ཕས། །དེ་ལ་ཅི་ཡང་བྱིན་མ་གྱུར། 124

དུས་ཀྱིས་གཟིར་བ་ཉིད་གྱུར་ཏེ། །ཡང་ཡང་དེ་ཡིས་བོས་པར་བྱས།
དེ་ཡིས་ཕ་ལས་ཅུང་ཟད་ཀྱང་། །ཁས་བླང་སྨྲས་པ་ཐོབ་མ་གྱུར། 125

སྨན་པ་ཁྲོ་བའི་རིམས་ཀྱིས་གདུངས། །སྤྱིད་པས་གཡོ་བའི་ཤུགས་རིངས་ཅན།
ནད་པ་ཡིས་ཀྱང་འགོངས་པ་དེས། །སྡུག་བསྔལ་ལས་ནི་རབ་བསམས་པ། 126

ཀྱི་མ་བསམ་པ་དྲང་པོ་དག །གཡོ་དང་ལྡན་པ་བདག་གིས་བསླུས།
བདག་གི་ལག་ནས་ནད་པ་ཡིས། །གཏེར་འདས་ད་ནི་ཅི་ཞིག་བྱ། 127

ཚ་བའི་སྨན་བཞིན་སྨན་པ་ནི། །ནད་པ་རྣམས་ཀྱིས་སྟོན་དུ་བསྐུར།
གདུང་བ་བསོས་པར་གྱུར་པའི་ཕྱིར། །དྲན་ཡང་ཁ་ནི་རྒྱུགས་འབྱིན་བྱེད། 128

यदाहमभवं पूर्व्वमुत्तरो नाम मानवः।
पुद्गलस्यापवादेन मयात्तमशुभं तदा॥ १२१ ॥

षड्वर्षाण्यधुना तेन कर्म्मणा दुष्करक्रिया[1]।
चरितं न क्षणाद्बोधेर्न प्राप्तं त्वधिकं ततः॥ १२२ ॥

पुराभवद्गृहपतिर्धनवान्नाम कर्वटे[2]।
श्रीमान्नाम सुतस्तस्य बभूवास्वस्थविग्रहः॥ १२३ ॥

वैद्यस्तिक्तमुखो[3] नाम तं बहुद्रविणाशया।
स्वास्थ्यं निनाय तत्पिचा दत्तं चास्मै न किञ्चन॥ १२४ ॥

कालेनातुरतां यातः स्वास्थ्यं तेन पुनः पुनः।
स नीतस्तत्पितुः किञ्चित् प्राप्तं न त्वार्त्तिभाषितम्[4]॥ १२५ ॥

अमर्षज्वरसन्तप्तस्तृष्णातरलितः श्वसन्।
सोऽचिन्तयद्भिषग्दुःखादातुरेणापि लङ्घितः॥ १२६ ॥

अहोवताहं धूर्त्तेन वाहितः शरणाशयः।
किं करोम्यधुना हस्ताद्गतो मे निधिरातुरः॥ १२७ ॥

कटुकौषधवद्वैद्यः पूर्व्वमात्तस्य सम्मतः।
चिकित्सितातुरः पश्चात् स्मृतोऽपि मुखकूणनम्॥ १२८ ॥

---

१ H मया। २ W_1 कर्पटे। ३ W_1 विषस्तिक्तमुखः।
४ Orig नदार्त्तिंभाषितम्। H नत्वस्ति भाषिता।

དོན་གྲུབ་ལ་ནི་ནོར་ལྡན་དང་། །སྒྲོལ་ཟླིན་དགའ་ལ་གྲུ་པ་བཞིན། །
མ་ལུས་ནད་ལས་གྲོལ་གྱུར་པ། །སྨྱུ་ལ་སྨན་པ་ཉེ་བར་མཁོ། ། 129

མཆོད་དང་ཞབས་ལ་གདུགས་ཕྱུས་ནས། །ནད་པས་སྨན་པ་རབ་བསྟེན་ཏེ། །
ཕྱི་ནས་མིང་ནི་བསྒྲགས་པ་ན། །བསོས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཐུད་ཀྱིས་འདེབས། ། 130

རྔོན་པ་རྒྱལ་པོ་སྨན་པ་ཡིས། །འཆིང་ལས་རི་དགས་ཆོམ་ཀུན་དང་། །
ནད་བསོས་སོང་བ་བསོད་ནམས་ཀྱིས། །ཕྱི་ནས་སྦྱོད་ཡུལ་དག་ཏུ་ལྷུང་། ། 131

དེ་ལྟར་རབ་ཏུ་སེམས་བྱེད་ཅིང་། །དེ་ནི་དུག་ཏུ་ཡོངས་སུ་གདུངས། །
སྨན་པ་བཞིན་དུ་ཁྲི་ལྡན་ན། །སྐར་ཡང་དེ་ཡིས་ཐོབ་པར་གྱུར། ། 132

དེ་ནས་ཁྲོ་བ་བསྐྱིབས་པ་ཡི། །སྨན་པས་འགལ་བའི་སྦྱོར་བ་ལས། །
རྒྱུ་མ་འཆད་པར་བྱེད་པའི་སྨན། །འཕྲལ་ལ་ཉམས་བྱེད་དེ་ལ་བྱིན། ། 133

དེས་བྱིན་གནོད་པ་འཐུངས་པ་ལས། །དེ་ཡི་རྒྱུ་མ་དུམ་བུ་གྱུར། །
སྡིག་པའི་གཡང་ལ་ལྷུང་བ་ཡི། །ཆགས་པས་ལོང་རྣམས་ཅི་མི་བྱེད། ། 134

སྨན་པ་ང་ཉིད་དེ་ཡི་སྡིག །སྐྱེ་བ་ཁྲི་ཕྲག་བརྒྱར་སྨྱུང་ནས། །
ལས་ཀྱི་ལྷག་མས་ད་ལྟ་ཡང་། །རབ་གནོན་ནད་ཀྱི་ཆ་ཤས་བསྟེན། ། 135

ཉ་ཡིས་འཚོ་བ་རྣམས་ཀྱིས་སྔོན། །ཉ་ནི་ལུས་ཆེན་གཉིས་དག་བཟུང་། །
ལུས་ནི་གཅོད་པ་མཐོང་གྱུར་ནས། །ཉ་པའི་བུ་ཡིས་དགའ་བར་བྱས། ། 136

सिद्धार्थस्येव धनवान् उत्तीर्णस्येव नाविकः ।
निःशेषव्याधिमुक्तस्य वैद्यः कस्योपयुज्यते ॥ १२९ ॥

सपादपतनैर्मानैरार्त्तैराराध्यते[1] परम् ।
पश्चात्स कीर्त्तिते नाम्नि स्वस्थैः फुत्क्रियते भिषक् ॥ १३० ॥

बन्धाल्लुब्धस्य हरिणश्चौरो राज्ञश्च निर्गतः ।
पुण्यैः स्वस्थश्च वैद्यस्य पुनः पतति गोचरे ॥ १३१ ॥

इति चिन्तयतस्तस्य सततं परिमुष्यतः ।
स वैद्यमिव साकोपं पुनर्व्याधिमवाप्तवान् ॥ १३२ ॥

प्रच्छन्नमन्युस्तस्याथ वैद्यः सद्यो विनाशनम् ।
ददौ विरुद्धसंयोगादन्त्रशातनमौषधम् ॥ १३३ ॥

तस्यान्त्राणि व्यशीर्य्यन्त तद्दत्तापथ्यपायिनः[2] ।
किं न कुर्व्वन्ति लोभान्धाः पातकश्वभ्रपातिनः ॥ १३४ ॥

वैद्योऽहमेव तत्पापं भुक्त्वा जन्मशतायुतैः ।
अद्यापि कर्म्मशेषेण प्रस्कन्दिव्याधिलेशवान् ॥ १३५ ॥

पुरा मत्स्यौ महाकायावाकृष्टौ मत्स्यजीविभिः ।
जहर्ष छिद्यमानाङ्गौ दृष्ट्वा कैवर्त्तदारकः ॥ १३६ ॥

१ W_1 आतुरैराध्यंते । २ W_1 तत्तत्कापथ्यपायिनः ।

དེ་བདག་དེ་ལ་ཡོངས་ཆོམ་ཐོབ། སྡིག་པ་སྐྱེ་བ་གཞན་སྡུད་ནས།
ཤཱཀྱ་ཉམས་པ་དེ་ཡིས་ཚོ། སྐད་ཅིག་མགོ་ལ་ནད་ཀྱིས་རེག། 137

སྔོན་ཆེ་ལྡོངས་ཀྱི་གྲོད་གྱུར་དེ། མཛའ་པོ་སྟོབས་ཞེས་བྱ་བའི་གྲོད།
གཡུལ་གྱི་ཟློལ་གྱིས་ག་ཤགས་བྱས་དེ། དེ་ཡི་གྲིབ་ནི་ནམ་གཉིས་བྱས། 138

དེ་ང་དེ་ཡི་སྡིག་ཆེན་ནི། སྐྱེ་བ་མང་པོར་སྡུད་བྱས་ནས།
རྨྱང་གི་ནད་ཀྱིས་ད་ལྟ་ཡང་། གྲིབ་ཏུ་སྐད་ཅིག་གནས་པར་བྱས། 149

དེ་ལྟར་བྱང་ཆུབ་རྫོགས་སངས་རྒྱས། ངེས་བསྟན་བདག་གི་ལུས་ལ་ཡང་།
ཉོན་མོངས་ཐིགས་པ་ལས་འདམ་གྱི། ལྷག་མའི་ཆ་ཤས་ངེས་པར་ལྷུང་། 140

སྐྱེ་བར་སྐྱོ་དང་འཆི་བའི་ཚེ་ཡང་སྐྱེས་བུ་ལུས་རྣམས་ལ།
བཀྲ་འདི་ལས་ཀྱི་ལམ་ནི་འཕྲེང་བ་བཞིན་དུ་རྣམ་བདགས་པ།
རབ་ཏུ་ཆགས་པ་འདི་ནི་བདེ་དང་སྡུག་བསྔལ་མཚམས་དག་ལ།
སྐྱུད་ཅིང་བཏང་བར་གྱུར་ཀྱང་ལྷག་མའི་ལྷག་མ་རྣམ་པར་འཛིན། 141

དེ་སྐད་བཅོམ་ལྡན་གྱིས་བཤད་པ། དགེ་སློང་ཀུན་གྱིས་ཐོས་གྱུར་ནས།
ལས་ཀྱི་འཆིང་བ་རྣམས་དག་ནི། འདའ་བར་བྱ་མིན་ཉིད་དུ་ངེས། 142

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ལས་བཅུ་སྐྱུད་པའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་པའོ།།

सोऽहं तत्परितोषार्त्तं पापं भुक्त्वान्यजन्मसु ।
तस्मिन्विनाशे शाक्यानां क्षणं स्पृष्टः शिरोरुजा ॥ १३७ ॥

पुरा जानपदो मल्लः प्रीतिमल्लं बलाभिधम् ।
निपात्य युद्धे व्याजेन पृष्ठमस्य द्विधाकरोत् ॥ १३८ ॥

सोऽहं तत्पातकं भुक्त्वा विपुलं बहुजन्मसु ।
अद्यापि वातशूलेन पृष्ठे कृतपदः क्षणम्[1] ॥ १३९ ॥

इति संबुद्धबोधेर्मे निर्दोषस्यापि[2] विग्रहे ।
कर्मपङ्कावशेषाङ्का निपेतुः क्लेशविप्रुषः[3] ॥ १४० ॥

जन्मोत्सवेषु निधनेषु च संनिबद्धा
मालेव कर्मशरणिः शबला शरीरे ।
पुंसामियं प्रणयिनी सुखदुःखसीम्नि
भुक्तोज्झितापि विदधात्यधिवासशेषम्[4] ॥ १४१ ॥

इति श्रुत्वा भगवता कथितं सर्वभिक्षवः ।
मेनिरे कर्मवृत्तानामनतिक्रमणीयताम् ॥ १४२ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
दशकर्मप्लुत्यवदानम् नाम पञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

---

१ H पृष्ठे कृतपदक्षतम् । Orig. पृष्ठकृतपदक्षणम् ।
२ W_1 अनिन्दितस्यापि । ३ Orig. क्लेशविपुषः ।
४ Orig. विधात्यवसानशेषम् ।

Chapter LI.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙ་གཅིག་པ།

གསེར་ལྷུན་མའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

གདུང་སྐྱོབས་ཀློ་ཡི་བརྩེ་བས་མཉེས་ག་ཞིན་ཉོམས་ཀྱི་སྒྲོག་ནི་འགྲོ་བར་སྒྲོ་བའི་ཚོ།
སྤྲུ་ལོང་རྒྱུན་གྱིས་རོལ་པ་བསྟེན་ཅིང་ཞིན་དུ་རྣ་བའི་མཆོན་གྱིས་བཅད་པ་ནི།
གང་གི་ལུས་ལ་གཡོ་བའི་མིག་ཅན་ནོ་བའི་ཨུད་པལ་གྱིས་བསྣུན་མཚུངས་པ་ཐོབ།
དེ་དག་སྐྱོད་པ་རྒྱུ་ཆེ་བརྗོད་བྲུར་འོས་པའི་ཚིགས་ནི་གང་གིས་བརྗོད་པར་བྱ། 1

སྨོན་ནི་གསང་བའི་ཀི་བར་དུ། དར་ད་བདུལ་བཅོམ་ལྡན་འདས།
ཕྱུལ་དེ་ནས་ནི་མི་སྣང་བར། དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་གཞན་དུ་ག་ཞིགས། 2

དེ་ཡི་གཡོག་ལ་འོངས་པའི་ལྷ། བདེ་སོགས་བདག་པོ་དག་གིས་དེར།
བཞིན་ལ་འཛུམ་པའི་ཟླ་བ་དག། ཤར་བ་མཐོང་ནས་རྒྱུ་མཚན་དྲིས། 3

དེ་ཡིས་མཛའ་དང་དགེ་མཚན་སྣང་། འཛུམ་པའི་རྒྱུ་མཚན་ཡང་དག་དྲིས།*
དེ་ལ་བཀའ་སྩལ་ནགས་ཀྱི་མཐའ། འདིར་ནི་བདག་གི་སྨོན་བྱུང་དྲན། 4

---

* Neither the text nor the translation of the first line of the fourth *S'loka* exists in the xylograph. I have made the metrical translation.

एकपञ्चाशत्तमः पल्लवः ।

रुक्मवत्यवदानम् ।

आर्त्तत्राणधियां दयाप्रणयिनां प्राणप्रवाहोत्सवे
शस्त्रैस्तीक्ष्णतरैः क्षतानि पुलकालङ्कारलीलाजुषाम् ।
लोलाक्षीश्रवणोत्पलाहतितुलां येषां लभन्ते तनौ
तेषां कैर्वचनैरुदारचरितं बाल्योचितैरुच्यते ॥ १ ॥

गुह्यकैवर्त्तदरदै[१] विनीय भगवान् पुरा ।
देशादन्तर्हितस्तस्माज्जगामान्यत्तपोवनम् ॥ २ ॥

तत्र सेवासमायातस्तस्य देवः शचीपतिः ।
स्मितचन्द्रोदयं वक्त्रे दृष्ट्वा पप्रच्छ कारणम् ॥ ३ ॥

कौतुकप्रणयात्तेन संपृष्टः स्मितकारणम्[२] ।
तमुवाच वनान्तेऽस्मिन् पूर्व्ववृत्तं स्मृतं मया ॥ ४ ॥

---

१ W I गुह्यकौ वर्त्तदरदौ ।
२ Orig. omits this line. H यत्पृष्टं स्मितकारणम् ।
W I य पृष्टस्मितकारणम् ।

དྲན་པ་ཉམས་སུ་སྐྱོང་བ་ལས། བདག་འཛུམ་འདི་ནི་རྒྱུ་མེད་མིན།
ཞེས་པ་བརྗོད་ནས་བཅོམ་ལྡན་གྱིས། སྔོན་བྱུང་གསུང་བར་རྩོམ་པ་མཛད། 5

གྲོད་ཁྱེར་ཨུ་དྱ་ལ་ལྡན་པར་ནི། གྲོང་ཁྱེར་གཙོ་བོའི་བུད་མེད་དག
སྦྱིན་དང་ཚུལ་ཁྲིམས་བརྩེ་བ་ཅན། གསེར་ལྡན་མ་ཞེས་གྲགས་པ་བྱུང་། 6

ནམ་ཞིག་དེ་ཡི་དབུལ་པོ་ཡིས། བུད་མེད་བཙས་ཤིང་ལྟོགས་པས་གཟིར།
སྲིན་མོ་བཞིན་དུ་བུ་ཚ་དག ཟ་བར་འདོད་པ་མཐོང་བར་གྱུར། 7

དེ་མཐོང་སྙིང་རྗེ་གྱིས་གྱུར་པ། དེ་ཡིས་སྐད་ཅིག་ཡང་དག་བསམས།
ཀྱེ་མ་རང་ལུས་ལ་ཆགས་པས། བློ་ནི་སྡིག་ལ་རབ་ཏུ་འཇུག 8

འདི་ཡི་ཟས་ནི་ལེན་དུ་བདག གལ་དེ་རང་གིས་ཁྱིམ་སོང་ན།
བཀྲེས་པས་ཡོངས་སུ་ཉེན་པ་འདིས། བུ་ནི་ངེས་པར་ཟ་བར་འགྱུར། 9

ཡང་ན་བདག་གིས་བུ་ཁྱེར་ནས། གལ་དེ་ཁྱིམ་དུ་ཕྱིན་པ་ན།
འདི་ནི་བཀྲེས་པ་ཉིད་གྱུར་ཏེ། འཕྲལ་ལ་འཚོ་བ་གཏོང་བར་འགྱུར། 10

དེ་ལྟར་གཉིས་ཀ་ཕྱི་ཚོམ་དང་། ལྡན་པ་དེ་ལ་བརྩེ་བས་བསམས།
འགྲོ་བ་བསྐྱལ་བའི་སྐད་ཅིག་ཏུ། དེ་ཡིས་སྨོན་ལམ་བདབ་བྱས་ཏེ། 11

དེ་ཡིས་གཏད་བའི་མཚོན་རྣོན་གྱིས། གསོ་བ་མེད་པར་བཅད་ནས་ནི།
དེ་ལ་རང་གི་ནུ་མ་ཟུང་། འཚོ་བ་ཡིས་ནི་ཟུང་ལ་བྱིན། 12

स्मरणानुभवादेतत् स्मितं मे नत्वकारणम् ।
इत्युक्त्वा भगवान् पूर्व्ववृत्तं वक्तुम्प्रचक्रमे ॥ ५ ॥

नगर्य्यामुत्पलावत्यां दानशीलदयान्विता ।
ख्याता रुक्मवती नाम पौरमुख्याङ्गनाभवत् ॥ ६ ॥

सा कदाचित् क्षुधाक्रान्तां प्रसूतां दुर्गताङ्गनाम् ।
यातुधानीमिवापश्यत् बालकं भोक्तुमुत्सुकाम् ॥ ७ ॥

तां दृष्ट्वा करुणाक्रान्ता सा क्षणं समचिन्तयत् ।
अहो स्वदेहस्नेहेन मतिः पापे प्रवर्त्तते ॥ ८ ॥

अस्या भोजनमाहर्त्तुं व्रजामि स्वगृहं यदि ।
तदियं क्षुत्परिक्षामा भक्षयत्येव दारकम् ॥ ९ ॥

अथवा शिशुमादाय यदि गच्छामि मन्दिरम् ।
तदेषा कृशतां याता सद्यस्त्यजति जीवितम् ॥ १० ॥

इति सञ्चिन्त्य दयया तस्मिन्नुभयसंशये ।
जगत्सन्तारणायैव प्रणिधानं विधाय सा ॥ ११ ॥

छित्वा तयोपनीतेन शितशस्त्रेण निस्त्रपा ।
निजं स्तनयुगं तस्यै ददौ जीवितधारणम् ॥ १२ ॥

དེ་ནས་དེ་གྲགས་ངོ་མཚར་ཅན། འཇིག་རྟེན་གསུམ་རིག་གྲགས་པའི་ཚེ།
བརྒྱ་བྱིན་བྲམ་ཟེའི་གཟུགས་ཀྱིས་ནི། མངོན་དུ་ཕྱོགས་ཏེ་དེ་ལ་དྲིས། 13

ཁྱོད་ནི་ནུས་མ་བྱིན་པ་ཡིས། ཡིད་ལ་ནོམ་འགྱུར་མ་བྱུང་ངམ།
ཞེས་དྲིས་དེ་ལ་དགའ་བ་དང་། བདེན་སྨྲས་ལྡན་པ་དེས་སྨྲས་པ། 14

ནུས་མ་བྱིན་ལ་ནོམ་འགྱུར་ཆ། གལ་ཏེ་བདག་ལ་འགའ་མ་གྱུར།
བདེན་པ་དེ་ཡིས་རེ་ཞིག་འཕྲལ། བུད་མེད་ཉིད་ནི་ལྡོག་གྱུར་ཅིག 15

དེ་བརྗོད་ཙམ་ལ་བདེ་ལྡན་མ། དེ་ཡི་བུད་མེད་གཟུགས་བཏང་ནས།
མཚན་ཉིད་ཐམས་ཅད་ཕུན་ཚོགས་པའི། སྐྱེས་པ་ཉིད་དུ་ཡང་དག་གྱུར། 16

གྲོང་ཁྱེར་ཨུཏྤ་ལ་ལྡན་པར་ནི། མི་བདག་ཨུཏྤ་ལ་ཞེས་བྱ་བ།
གནས་སྐབས་དེར་ནི་ཚེ་རྫོགས་ཤིང་། ནད་ཀྱི་སྦྱོར་བས་ལྷུང་བར་གྱུར། 17

དེ་ནས་རབ་མཆོག་གཞན་དང་བློན། མཚན་ཉིད་ཤེས་རྣམས་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ།
འཕྲུལ་ལ་སྐྱེས་བུ་ཉིད་ཐོབ་པ། གསེར་ལྡན་དེ་ནི་མངོན་དབང་བསྐུར། 18

ཆོས་ལྡན་མཛེས་པའི་དཔལ་དེ་ཡིས། རྒྱལ་སྲིད་དག་ནི་ཡུན་རིང་བྱས།
དུས་ཀྱི་ལུས་ནི་བཏང་གྱུར་ཏེ། ལུས་ཅན་དག་ནི་བརྟན་པ་མེད། 19

དེ་ཉིད་དུ་ཚེ་ཚོང་དཔོན་བུ། སྙིང་སྟོབས་མཆོག་ཅེས་བྱ་བར་གྱུར།
ཟོལ་མེད་བསྒྲུབ་པའི་སྦྱིན་པ་ནི། སྐྱེ་བ་གོམས་ལ་གུས་བཅས་པའོ། 20

त्रैलोक्यस्पृशि साश्चर्य्ये तस्या यशसि विश्रुते।
विप्ररूपेण शक्रेण ततः स्पृष्टा समेत्य सा॥ १३॥

अपि ते स्तनदानेन मनोविकृतिमाययौ।
इति पृष्टा सती सत्यवादिनी तं जगाद सा॥ १४॥

यदि मे नाभवत् कश्चिद्विकारांशः स्तनार्पणे।
तेन सत्येन सहसा स्त्रीत्वं तावन्निवर्त्तताम्॥ १५॥

इत्युक्तमात्रे स्त्रीरूपं सा त्यक्त्वा सत्यशालिनी।
सर्व्वलक्षणसम्पन्नं पुरुषत्वं समाययौ॥ १६॥

नगर्य्यामुत्पलावत्यामस्मिन्नवसरे नृपः।
उत्पलाक्षः समाप्तायुर्व्याधियोगाद्व्यपद्यत॥ १७॥

लक्षणज्ञैरथाभ्येत्य प्रवरैर्वृद्धमन्त्रिभिः।
सद्यःसम्प्राप्तपुंस्त्वोऽसौ रूक्मवानभ्यषिच्यत॥ १८॥

स राज्यं राजमानश्रीः कृत्वा धर्म्मधनश्चिरम्।
तनुं तत्याज कालेन स्थायिनो न हि देहिनः॥ १९॥

तत्रैव श्रेष्ठिनः सूनुः सोऽभूत् सत्त्ववराभिधः[1]।
निर्व्याजोऽर्ज्जितदानेषु जन्माभ्यस्तेषु सादरः॥ २०॥

[1] H सत्यवराभिधः।

འབྱུང་པོ་ཀུན་གཟིར་བསམ་པ་ལ།
རྟག་ཏུ་དེ་ཡིས་ཡིད་བཀོད་དེ།
བཟོད་དཀའ་འདབ་ཆགས་ཚོམས་ཉིད་ཀྱིས།
བཀྲིས་པའི་སྡུག་བསྔལ་ཡང་དག་བསམས། 21

དེ་ནས་དུར་ཁྲོད་ནགས་སྲུ་དེ། སོང་ནས་སྦྲུ་གྲིས་ལུས་བཀས་ཏེ།
གན་ཀྱལ་ཉལ་ནས་ཤ་ཟ་བའི། འདབ་ཆགས་ཚོམས་ལ་རབ་ཏུ་བྱིན། 22

རི་མ་གྲིས་དེ་ཡིས་མིག་གཡས་ནི། མཐོན་པོར་འགྲོ་བའི་མཁར་བགྲོད་ཀྱིས།
མཆུ་ཡིས་ཕྱུང་ཞིང་རབ་ཕྱུང་ནས། ཡང་དང་ཡང་དུ་རབ་ཏུ་བཏང་། 23

བརྟན་ཞིང་ཡན་ལག་ཀུན་མི་གཡོ། དེ་ཡིས་ཡ་མཚན་བྲ་མཐོང་ནས།
སྨྲས་པ་རྟོགས་མེད་ཉིད་དུ་ཟློ། ང་ཡིས་ཁྱོད་ནི་ཡོངས་མི་འཛིན། 24

རོ་བྲལ་སྙིང་པོ་མེད་པའི་ལུས། གནོད་བཅས་སྐད་ཅིག་འཇིག་པ་འདི།
གཞན་ལ་ཕན་པའི་ཆ་ཤས་ཀྱིས། འཁོར་བའི་སྙིང་པོ་ཉིད་དུ་གྱུར། 25

མི་ཚོམས་ལུས་ནི་མི་གཙང་ཟག་ཅིང་སོ་སོའི་གནས་སུ་སྨད་གྱུར་དྲི་མ་ཅན།
གནོད་པའི་གནས་སུ་གྱུར་ཅིང་དབུགས་དུས་གཡོ་ལ་ལོག་པར་ཆགས་པ་འདི་ནི་ཅི
གང་ཞིག་བསོད་ནམས་ཚོམས་ཀྱི་འགའ་ཞིག་དག་ཏུ་འགའ་ལ་འགའ་ཚེ་འགའ་
མཐོང་ནས།
གདུང་བ་ཞི་བྱེད་སྐྱོབ་ལ་ཞུགས་གྱུར་འདི་ཉིད་གཅིག་བུ་འདི་ཡི་དགའ་བྱ་ཉིད། 26

सर्व्वभूतार्त्तिचिन्तासु स सदा न्यस्तमानसः।
दुःसहं पक्षिणामेव क्षुद्दुःखं समचिन्तयत्॥ २१ ॥

स श्मशानवनं गत्वा क्षुरेणोल्लिख्य विग्रहम्।
उत्तानशायी प्रददौ तनुं क्रव्यादपक्षिणाम्॥ २२ ॥

उच्चैर्गति[1]विहङ्गोऽस्य दक्षिणं नयनं शनैः।
उत्पाट्योत्पाट्य[2] तुण्डेन प्रोत्ससर्ज पुनः पुनः॥ २३ ॥

धैर्य्यनिश्चलसर्व्वाङ्गः स दृष्ट्वा विस्मितं खगम्।
उवाच भुंक्ष्व निःशङ्कं नैव त्वां वारयाम्यहम्॥ २४ ॥

निःसारविरसः कायः सापायोऽयं क्षणक्षयी।
परोपकारलेशेन याति संसारसारताम्॥ २५ ॥

क्लेदस्यन्दिनि निन्दिते प्रतिपदं श्वासक्षणस्यन्दिनि
स्नेहः कोऽयमपायधाम्नि मलिने मिथ्याशरीरे नृणाम्।
एकैव स्पृहणीयतास्य यदिदं पुण्यैः क्वचित् कस्यचित्
त्राणाय सन्नह्यति॥ २६ ॥
किञ्चिद्वीक्ष्य कदाचिदार्त्तिसमये[3]

२ W 2 उत्पाट्योत्पाट्य।

१ Or ऊर्द्धगति॰।

३ Orig. कदाचिदार्त्तिशमनम्।

ཅེས་པ་སྨྲ་བ་དེ་ཡི་ལུས། བཀྲིས་པས་ཉེན་པའི་བྲ་ནོམས་ཀྱིས།
ཟ་ཞིང་འཕངས་པའི་སྐད་ཅིག་ལ། རུས་པའི་ལྷག་མ་ཉིད་དུ་གྱུར། 27

དུས་ཀྱིས་དེ་ནི་བྲམ་ཟེ་དག། སཱ་ལ་ཆེན་པོའི་བུར་སྐྱེས་ཏེ།
བདེན་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་ཞེས་བྱ་བ། སྐྱེ་བོ་དག་གིས་བཀུར་བར་གྱུར། 28

རི་ག་པ་མ་ལུས་ཐོབ་གྱུར་ཅིང་། སྙིང་རྗེ་དག་ལ་ཆགས་པའི་སེམས།
ཞི་བར་དགའ་བ་དེ་ཡི་ཡིད། ཁྲིམ་ཐབས་ལས་ནི་ཕྱིར་ཕྱོགས་གྱུར། 29

རིགས་སུ་སྐྱེས་ཤིང་ཡོན་ཏན་ཐོབ། བློ་གྲོས་དབེན་པས་རབ་བརྒྱན་ཅིང་།
འབྱུང་པོ་ཀུན་ལ་བརྩེ་ཞིང་བྱམས། བསོད་ནམས་ལས་ཀྱི་མཚན་ཉིད་ཡིན། 30

གཞོན་ནུ་དེ་ཉིད་ཆགས་བྲལ་གྱིས། དགའ་ཞིང་དཀའ་ཐུབ་ནགས་སོང་སྟེ།
དྲང་སྲོང་གཉིས་ཀྱིས་བརྟུལ་ཞུགས་བྱིན། བསྟི་གནས་སུ་ནི་དལ་གསོ་བསྟེན། 31

དེ་ནས་དུས་ཀྱི་ཡེ་ཤེས་སྨྲུན། དྲི་མེད་ཤིན་དུ་རྣོ་བ་ཡིས།
སྡུག་མོ་བཙའ་ལ་ཉེ་བ་དག། མཐོང་ནས་དེ་ཡིས་ཡང་དག་བསམས། 32

བཀྲིས་པ་ཡིས་ནི་གཟིར་བ་འདི། ཞག་བདུན་དག་ན་བཙའ་བར་འགྱུར།
རང་གི་བུ་ནི་ཟ་བ་ལ། སྐོམ་པ་དྲག་པོའང་འབྱུང་བར་འགྱུར། 33

ཞེས་བསམས་དེ་ཡིས་སྡུག་བསྔལ་ནི། ཐུབ་པ་དག་ལ་བཤད་ནས་དེས།
སྙིང་རྗེ་དེ་ནི་ཕྱིར་བཅོས་པའི། ཡིད་ལ་རེ་བ་བྱས་པར་གྱུར། 34

इति तस्य ब्रुवाणस्य क्षुत्क्षामैः पक्षिभिः क्षणात् ।
भक्ष्यमाणस्य विक्षिप्य नीतः कायोऽस्थिशेषताम् ॥ २७ ॥

महाशालकुलस्याथ ब्राह्मणस्य स पुत्रताम् ।
यातः सत्यव्रतो नाम बभूव जनसम्मतः ॥ २८ ॥

अवाप्ताखिलविद्यस्य करुणासक्तचेतसः ।
तस्य शान्तिरतस्याभूद्विवाहविमुखं मनः ॥ २९ ॥

कुले जन्म गुणावाप्तिर्विवेकालङ्कृता मतिः ।
सर्व्वभूतदया मैत्री लक्षणं पुण्यकर्म्मणाम् ॥ ३० ॥

वैराग्याभिरतिर्गत्वा स युवैव तपोवनम् ।
दत्तव्रतो महर्षिभ्यां भेजे विश्रान्तिमाश्रमे ॥ ३१ ॥

ततः कालेन सम्प्राप्तविमलज्ञानलोचनः ।
आसन्नप्रसवां व्याघ्रीं स दृष्ट्वा समचिन्तयत् ॥ ३२ ॥

प्रसवोऽस्याः क्षुधार्त्तायाः सप्ताहेन भविष्यति ।
स्पृहा चोत्पत्स्यते तीव्रा निजपोतकभक्षणे ॥ ३३ ॥

इति सञ्चित्य तद्दुःखं मुनिभ्यां विनिवेद्य सः ।
चकार तत्प्रतीकारे कारुण्येन मनोरथम् ॥ ३४ ॥

དེ་ནས་ཞག་བདུན་འདས་པའི་ཚེ། སྟག་མོ་མངལ་གྱི་ཁུར་གྱིས་དུབ།
ཟས་ཆག་མང་པོས་གདུང་གྱུར་པ། དཀའ་ལས་ཆེན་པོས་བུ་ཚ་བཙས། 35

རང་གི་ཁྲག་གི་དྲི་ཡི་ནི། སྲིད་པ་དྲག་པོ་རབ་སྐྱེས་པ།
དེ་མཐོང་བདེན་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་ནི། སྙིང་རྗེས་བཀྲན་པས་ཡང་དག་བསམས། 36

སྡུག་མ་འདི་ནི་བཀྲེས་བ་ཡིས། སྡུག་བསྔལ་དགྲ་ལས་བུ་ཟར་བརྩོན།
ཀྱེ་མ་འདི་ནི་རང་དོན་གྱིས། བུ་ལ་ཆགས་པའང་བརྗེད་པར་གྱུར། 37

རང་སྡུག་བསྔལ་བས་ཐམས་ཅད་གདུང་། བཞིན་གྱི་ཡོངས་སུ་གདུང་བས་བསིལ།
སྐྱེ་བོ་འགའ་ཞིག་གཞན་གདུང་ལ། ཁྱད་བར་དུ་ནི་གདུང་བ་སྐྱེ། 38

བུ་དང་བཅས་པའི་སྟག་མོ་འདི། ལུས་བྱིན་ནས་ནི་བདག་གིས་བསྲུངས།
སྲོག་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཡོངས་རྫོགས་པ། འདི་དག་སྡུག་བསྔལ་ཡོངས་མི་བཟོད། 39

གཞན་སྲོག་སྐྱོབ་ལ་ལུས་ནི་རྩྭ་བཞིན་བརྟགས་པ་གཏོང་བ་ཉམས་དག་གི།
ཀྱེ་ཆེ་བསོད་ནམས་ཀྱིས་པའི་རང་བཞིན་གྲགས་པའི་ལུས་ནི་བརྟེན་པར་འགྱུར།
གཏོང་བ་རབ་ཆགས་སྲོག་གི་ཐིགས་པ་འདི་ནི་རབ་གཡོ་རླུང་དག་གིས།
གཡོ་བའི་པད་ལྷན་འདབ་མའི་ཁོང་གནས་གཡོ་བའི་ཆུ་ཐིགས་དག་གི་གྲོགས། 40

འདི་བསམས་སྙིང་རྗེའི་གཏེར་དེ་ཡིས། འཕྲེད་པའི་ཐུར་མས་མགྲིན་པ་ལ།
ཁྲག་ཟགས་མ་ནི་བཏོང་བྱས་ནས། སྟག་མོའི་མདུན་དུ་འགྲེལ་བར་གྱུར། 41

ततः प्रयाते सत्त्वाढ्ये व्याघ्री गर्भभरालसा।
बहुपवाससन्तप्ता कृच्छ्रेणाहृत पोतकान्॥ ३५॥

निजशोणितगन्धेन जाततीव्रतरस्पृहाम्।
सत्यव्रतस्तामालोक्य दयार्द्रः समचिन्तयत्॥ ३६॥

इयं वराकी क्षुद्दुःखादुद्यता पोतभक्षणे।
अहो वतास्याः स्वार्थेन पुत्रस्नेहोऽपि विस्मृतः॥ ३७॥

सर्व्वः स्वदुःखसन्तप्तः परसन्तापशीतलः।
विशेषार्त्तः परस्यार्त्तौ विरलो जायते जनः॥ ३८॥

दत्त्वा शरीरं रक्षामि व्याघ्रीमेतां सशावकाम्।
न सहे दुःखमेतेषां पर्य्याप्तं प्राणसंशये॥ ३९॥

परप्राणत्राणे तृणकलनया त्यक्तवपुषां
यशःकायः स्थायी भवति पृथुपुण्योदयमयः।
प्रसक्तापायोऽयं प्रसरदनिलालोलनलिनी-
दलोत्सङ्गत्वङ्गज्जललवसुहृज्जीवितकणः॥ ४०॥

ध्यात्वेति न्यपतत् व्याघ्र्याः स पुरः करुणानिधिः।
गलद्रक्तं गले कृत्वा क्षतं वेणुशलाकया॥ ४१॥

ངེས་པར་བདག་ཉིད་ཆེ་རྣམས་ཀྱིས། ཡིད་ནི་སྙིང་རྗེས་མཉན་པ་དག།
ཉེ་བར་བརྒྱབས་ལ་ཆགས་བཅས་པས། གཞན་གྱི་ཡོངས་གདུང་བཟོད་མ་ཡིན། 42

དེ་ནས་གཡོ་མེད་དེ་ཡིས་སྙིང་ག་རབ་ཏུ་གྲུས་པ་ལ།
སྟག་མོ་ལག་ལ་མངོན་པར་འདོད་པ་རྣོན་པོས་རབ་ཏུ་མཚོངས།
དགའ་དང་འཛུམ་སྐྱེས་སེན་མོའི་འོད་ཟེར་དག་གིས་འགྲོ་བ་ལ།
འཕགས་པའི་སྤྱོད་པའི་ངོ་མཚར་རབ་ཏུ་འབྲི་བར་བྱེད་པ་བཞིན། 43

བྱམས་པས་འཁྲུལ་བཞིན་བཟོད་པས་ཉེས་བྱས་བཞིན་དང་ཤེས་རབ་ཀྱིས་ནི་
བསམ་ཚོགས་བཞིན།
སྡུག་བསྔལ་བཟོད་དཀའི་བསྐྱད་པ་བརྟན་པས་བཞིན་དང་ཉོན་མོངས་དཀའ་
ཐུབ་དཔལ་གྱིས་བཞིན།
བརྩེ་བས་དེ་ཡི་ལུས་ནི་སྙིང་སྟོབས་ས་གཞི་གཡོ་བ་མེད་པ་དེ་ཉིད་ཀྱིས།
སྟག་གི་ཚུང་མས་བདབ་ཅིང་མི་བཟད་དྲག་པོ་མངོན་འཇོམས་གསལ་བའི་
ཁྲར་དག་བཟོད། 44

སྟག་མོའི་སྤྲེར་མོ་འཕྲེང་བའི་རོལ་པས་རྣམ་པར་བཅོམ་གྱུར་པ།
དེ་ཡི་སྙིང་གའི་གཞི་ནི་རྣམ་པར་ཉམས་པ་སྐད་ཅིག་མཆོན།
ལུས་ནི་སྤྲུ་འོང་གིས་བྱུགས་བསིལ་ཟེར་ཅན་ལྟར་དཀར་བ་ཡིས།
སྙིང་སྟོབས་རབ་གསལ་འོད་ཟེར་སྒྲ་གྲགས་ཁེངས་པར་གྱུར་པ་བཞིན། 45

आपन्नत्राणसरसं नहि नाम महात्मनाम् ।
सहते परसन्तापं करुणाकोमलं मनः ॥ ४२ ॥

रक्ताभिलाषनिशिता निपपात तस्य
व्याघ्री ततः प्रततवक्षसि निश्चलस्य ।
आश्चर्यमार्यचरितस्य जगत्सु जात-
हर्षस्मितैरिव नखांशुभिरुल्लिखन्ती ॥ ४३

मैत्रीव स्खलितं क्षमेव कुशलं प्रज्ञेव चिन्ताचयम्
दुःखं दुःसहविप्लवं धृतिरिव क्लेशं तपश्रीरिव ।
तस्य व्याघ्रवधूनिपातविषमक्रूराभिघातोल्वणम्
सेहे मूर्त्तिरचञ्चलैव दयया सा सत्त्वभूमिर्भरम् ॥ ४४ ॥

व्याघ्रीनखावलिविलासविलुप्यमाना
वक्षःस्थली क्षणमलक्षत विक्षतास्य ।
रोमाञ्चचर्चिततनोस्तुहिनांशुशुभ्र-
सत्त्वप्रकाशकिरणाङ्कुरपूरितेव ॥ ४५ ॥

ཤ་དག་ཟ་ཞིང་ཁྲག་འཐུང་སྤྱོས་པར་གྱུར་པའི་སྟག་མོ་ནི།
དགའ་དང་བཅས་པ་མཐོང་ནས་འགྲོ་བ་དེ་ཡི་རང་གི་སྲོག།
འཚོ་བ་དག་ནི་རིང་དུ་འགྲོ་བའི་དུས་སུ་བྲལ་གྱུར་པ།
ཡུད་ཙམ་ཞིག་ན་མགྲིན་པ་ཉིད་ལ་བརྟེན་ཏེ་བཏོན་པར་བྱས། 46

*སྲིད་པའི་རྫེས་མཐུན་རྩེ་དགའི་འོང་དང་འགྲོ་བ་དག་གིས་ནི།
ངོ་ཚའི་དབང་ལས་བཞིན་ནི་མཆོག་ཏུ་ནོམ་པར་དུད་པ་བཞིན།
ཁྲིམ་ཐབས་ལས་ནི་ཕྱིར་ཕྱོགས་གྱུར་ཀྱང་དེ་ཡི་ལག་པ་དང་།
དེ་ཡིས་བཟུང་ནས་མཛའ་ཞིང་གཙུགས་ལྷར་སྙིང་ནི་དགའ་བར་བྱས། 47

བྱམས་པས་དག་ཅིང་ནོམ་འགྱུར་མེད་པ་གྲོ་ཚའི་སྙིང་སྟོབས་དང་།
ལུགས་བཟང་བསོད་ནམས་ཆུ་བོ་འཛིག་རྟེན་ནོམས་སུ་གྲགས་པ་དང་།
འབྱུང་པོར་ཕན་པའི་རང་བཞིན་དམན་ལ་སྙིང་རྗེས་བསྐྲུན་པའི་སེམས།
རང་དབང་ཉིད་དུ་གྱུར་བ་ལེགས་ལྡན་བདག་ཉིད་ནོམས་ཀྱི་ཡིན། 48

སྟག་མོའི་སྤྱིར་མོའི་རྩེ་མོས་བཤིག་པ་དེ་ཡི་སྙིང་སྟོབས་དག།
མཚུངས་པ་མེད་པ་དེ་མཐོང་འཕྲལ་ལ་ནོར་འཛིན་བུ་མོ་ནི།
པོ་རླབས་རོལ་བ་དང་ལྡན་ཆུ་གཏེར་བཞི་ཡི་སྐྲ་རགས་ཅན།
སྲོག་ནི་ཞིག་པའི་དུས་ན་འཛིགས་པ་བཞིན་དུ་རིང་ཞིག་འདར། 49

* སྲིད་པའི་རྗེ་མཐུན་ ([illegible]) of the xylograph is evidently an incorrect reading.

तस्यामिषाहरणशोणितपानमत्ताम्
व्याघ्रीं सहर्षमवलोकयतश्चकार ।
दीर्घप्रवाससमयाकुलिता मुहूर्त्तम्
कण्ठावलम्बनधृतिं निजजीववृत्तिः ॥ ४६ ॥

तृप्ता प्रदक्षिणविलासगतागतेन
लज्जावशादिव भृशं विनताननैव ।
तस्याकरोदपि विवाहपराङ्मुखस्य
पाणिग्रहप्रणयिनी हृदयोत्सवं सा ॥ ४७ ॥

मैत्रीपवित्रमविकारमुदारसत्त्वम्
सौजन्यपुण्यतटिनी भुवनेषु कीर्त्तिः ।
भव्यात्मनां भवति भूतहितस्वभावम्
स्वाधीनदीनकरुणाभरणञ्च चेतः ॥ ४८ ॥

तत्तस्य सत्त्वमतुलं चतुरम्बुराशि-
वेलाविलासरसना वसुधापुरन्ध्री ।
व्याघ्रीनखाग्रदलितस्य विलोक्य सद्यः
प्राणक्षयक्षणभियेव चिरञ्चकम्पे ॥ ४९ ॥

བདེན་བའི་བརྟུལ་ཞུགས་སྙིང་རྗེ་རབ་དགའ་དེ་ནི་ང་ཉིད་དེ།
ད་ལྟ་འདིར་ནི་རང་གི་སྤྱོད་ཚུལ་དྲན་ནས་བཞད་གད་སྐྱེས།
རྒྱལ་བས་གསུངས་པའི་སྨོན་གྱི་སྤྱོད་པ་འདི་ནི་ཐོས་གྱུར་ནས།
ཡ་མཚན་ཡིད་ལྷན་བགྲོ་བྱིན་དེ་ནི་བཞིན་རས་གཡོ་མེད་གྱུར། 50

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་གསེར་ལྷན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་རྩ་གཅིག་པའོ།།

सत्यव्रतः स करुणानिरतोऽहमेव
स्मृत्वा स्ववृत्तमिह सम्प्रति जातहासः ।
श्रुत्वेति पूर्व्वचरितं कथितं जिनेन
शक्रः सविस्मयमनास्तिमिताननोऽभूत् ॥ ५० ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां रुक्मवत्यवदानं नाम एकपञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

CHAPTER LII.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་རྩ་གཉིས་པ།

བསོད་ནམས་མི་དམན་པའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

༄༅། །གང་ཞིག་ནགས་སོང་ཤིན་ཤུན་ལྷན་བསྒྲུར་ཀྱང་།*
སྦྱོང་ནམས་རྒྱན་དུ་དོན་བྲས་ཉིད་དུ་བྱེད།
སྤྱོད་ཚུལ་མཛེས་ལྡན་དེ་དང་ཙན་དན་གྱིས།
ངོ་མཚར་དག་ནི་སྨྲ་ཡི་བསམ་མི་བྱ། 1

དེ་ནི་དཀའ་ཐུབ་ནགས་གཞན་ན། བཅོམ་ལྡན་བཞུགས་ཤིང་འཛུམ་ལྡན་ལ།
བརྒྱ་བྱིན་ཡ་མཚན་ལྡན་པ་ཡིས། འཛུམ་པ་ཉིད་ཀྱིས་རྒྱུ་མཚན་དྲིས། 2

དེ་ཡི་གུས་པས་དྲིས་པའི་ཚེ། དེ་ལ་ཀུན་མཁྱེན་གྱིས་གསུངས་པ།
མིག་སྟོང་ལྡན་པ་གནས་འདིར་ནི། སྔོན་བྱུང་བ་དག་བདག་གིས་དྲན། 3

མ་དྷུ་ར་ཀ་ཞེས་པ་ཡི། གྲོང་ཁྱེར་ལྷ་གྲོང་ལྟ་བུར་སྟོན།
བསོད་ནམས་མི་དམན་ཞེས་བྱ་བའི། ས་བདག་ས་ཡི་རྒྱན་དུ་གྱུར། 4

སྙིང་རྗེ་དགའ་དང་བཏང་སྙོམས་དང་། བྱམས་པ་སེམས་ལ་ཡང་དག་ཆགས།
ཕྲག་དོག་ཅན་བཞིན་གང་གི་དཔལ། སྣང་བའི་སྐྱེ་བོ་ཁང་པར་གནས། 5

---

* ཤིང་ཤུན།

द्विपञ्चाशत्तमः पल्लवः।

अदीनपुण्यावदानम्।

अर्थिनां वनगतोऽपि वल्कली[१]
यः करोत्यविरतं कृतार्थताम्।
कैर्न चारुचरितस्य रुच्यते[२]
तस्य चन्दनतरोश्च सत्कृतिः॥ १ ॥

विहरन्तमथान्यस्मिन् भगवन्तं तपोवने।
पप्रच्छ सस्मितं शक्रो विस्मितः स्मितकारणम्॥ २ ॥

पृष्टः प्रणयिना तेन सर्व्वज्ञस्तमभाषत।
अस्मिन् देशे सहस्राक्ष पूर्व्ववृत्तं स्मृतं मया॥ ३ ॥

मधूदकाख्ये नगरे पुरा सुरपुरोपमे।
अदीनपुण्यनामाभूत् भूपतिर्भूषणं भुवः॥ ४ ॥

करुणामुदितोपेक्षामैत्रीसंसक्तचेतसः।
उवासेर्ष्यावतीव श्रीर्यस्यार्थिजनवेश्मसु॥ ५ ॥

---

१ $^{W}_{1}$ वल्कयाद्यः। २ Orig. चर्च्यते।

རྣམ་ཞིག་དེ་ཡི་སྤྱོད་པ་ནི། འགྲོ་ལ་གྲགས་པ་ཐོས་གྱུར་ནས།
ས་ཡི་བདག་པོ་ཚངས་པས་བྱིན། རྒྱལ་བར་འདོད་བ་དེ་ཅན་འོངས། 6

དེ་ནས་གླང་པོའི་ཚོགས་གཏམས་པས། ཕྱོགས་མཚམས་དག་ནི་ཁྱབ་པར་བྱས།
དེ་ནི་རྗེས་སུ་བཅིང་བའི་སྐད། དེ་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་བཅིངས་པར་བྱས། 7

སྙིང་སྟོབས་བརྩེ་ལྡན་མི་ཡི་བདག། དགྲ་ནི་བརླག་པར་མི་བཞེད་དོ།
ཞེས་བསམས་དེ་ཡི་བློན་པོ་ནི། མ་བརྗོད་གཡུལ་ལ་ཕྱི་རོལ་འཐོན། 8

གླང་པོ་རྟ་དང་ཤིང་རྟ་རྣམས། རླག་བྱེད་གཡུལ་ནི་གྲུས་པ་དེར།
བསོད་ནམས་མི་དམན་སྙིང་རྗེ་ཡིས། སྡུག་བསྔལ་གྱུར་པས་ཡང་དག་བསམས། 9

མི་ཟད་རྒྱལ་རིགས་ཆོས་འདི་ནི། ཆོས་མིན་བརྒྱ་ཕྲག་དག་དང་ལྡན།
མ་རུངས་སྲོག་ཆགས་གསོད་པ་ནི། གང་དུ་ཆོས་ཞེས་མ་ནོར་བརྗོད། 10

ཁྲག་གིས་བགོས་ཤིང་དྲི་མ་ཅན། རྒྱལ་རིགས་རྣམས་ཀྱི་ཆོས་འདི་སྐད།
གང་གི་ཆེད་དུ་རབ་འབད་པའི། འཚོ་བ་དེ་ཡང་དག་པ་མིན། 11

བདེ་ཉུང་བློ་ཡིས་བཟོད་བྱ་འདི་ནི་སྐྱེས་བུ་རྣམས་ཀྱི་ཉོན་མོངས་སྐྱིན།
གནོད་པ་དང་བཅས་གདུང་བའི་ལམ་དུ་ངེས་དུ་ཉེས་པ་ཉིད་གྱུར་ཅིང་།
ཕྱི་ནས་དྲན་པས་སྡུག་བསྔལ་ཤུགས་རིངས་དག་གིས་བདེན་པ་འཇོམས་བྱེད་པ།
ལོངས་སྤྱོད་དོན་དུ་ཀྱི་ཧུད་ཀྱི་ཧུད་གཞན་སྲོག་འཚོ་ལ་རབ་དུ་འབད། 12

कदाचित् चरितं तस्य श्रुत्वा जगति विश्रुतम् ।
तमाययौ ब्रह्मदत्तः क्ष्मापतिर्विजिगीषया ॥ ६ ॥

ततः करिघटाबन्धैरन्धीकृतदिगन्तरः ।
चकार नगराबन्धमनुबन्धाय तस्य सः ॥ ७ ॥

सत्त्वानुकम्पी नृपतिर्न शत्रुक्षयमिच्छति ।
ध्यात्वेति निर्ययुर्योद्धुमनुक्त्वैवास्य मन्त्रिणः ॥ ८ ॥

वर्त्तमाने रणे तस्मिन् गजवाजिरथक्षये ।
अदीनपुण्यःकारुण्यविविग्नः समचिन्तयत् ॥ ९ ॥

विषमः क्षत्रधर्म्मोऽयमधर्म्मशतसम्मितः ।
यस्मिन् प्राणिवधक्रौर्य्यं धर्म्म इत्यभिधीयते ॥ १० ॥

धिग्धर्म्मं रुधिरादिग्धं क्षत्रियाणां मलीमसम् ।
कृते यस्य प्रयत्नोऽयं तज्जीवितमशाश्वतम्[1] ॥ ११ ॥

सापायस्य व्यसनसरणौ शीर्य्यमाणस्य नित्यम्
दुःखोच्छ्वासैः प्रतिहतधृतेः स्मर्य्यमाणस्य पश्चात् ।
सोऽयं सद्यः सुखलवधिया क्लेशपाकस्य[2] पुंसाम्
भोगस्यार्थे बत बत परप्राणहिंसाप्रयत्नः ॥ १२ ॥

---

१ H and W_1 तज्जीवितुमशाश्वतम् ।
२ 8 H and W_1 क्लेशपाशस्य ।

དེ་སྐད་འཆི་དང་སྡིག་པའི་གནས། ཆོས་མིན་མང་བའི་རྒྱལ་སྲིད་འདི*།
ཡོངས་སུ་བཏང་ལ་བདག་ཉིད་ནི། དཀའ་ཐུབ་ནགས་སུ་འགྲོ་བར་བྱ། 13

རྒྱལ་པོ་མི་ཤེས་རྨོངས་རྣམས་ཀྱིས། གསོད་དང་འཆིངས་པ་བགྱིས་བསྒྲུབས་པའི།
སྡིག་པ་མི་བཟད་དཔལ་འབྱོར་ནི། དུས་ཀྱིས་ཁམས་སུ་བྱེད་པ་ཉིད། 14

འཁོར་བར་དུས་མིན་དག་ཏུ་བསམ་ཡས་དུས་ནི་སྟོབས་དང་ལྡན་པ་འདིས།
སྐྱེས་བུ་སོ་སོ་དག་ལ་བསྐལ་པའི་མཐའ་ནི་སོ་སོར་སྤྱིར་བྱེད་ཅིང་།
ཤིན་ཏུ་ཆེ་བའི་རྨོངས་པས་བློ་བཙོམ་རེ་བའི་འཆིང་བ་བརྟན་པོ་ཡིས།
ཡུལ་གྱི་བདེ་བའི་ཚོགས་ལ་སེམས་བྱེད་སྐྱེས་བུ་རྣམས་ཀྱི་རྩེ་དགའ་འཇོམས། 15

ཞེས་པ་བསམས་ནས་མི་བདག་ནི། འཆི་བའི་ཉོན་མོང་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས།
དབྱུག་པ་ཤིང་ཤུན་བཟུང་ནས་ནི། མཚན་མོ་དཀའ་ཐུབ་ནགས་སུ་སོང་། 16

དེ་ནས་བློན་པོ་གསུམ་ཞུགས་པས། དེ་ནི་སོང་བ་ཐོས་གྱུར་ནས།
འཇིག་རྟེན་ལ་བསྒྲིབས་དགྲ་བོ་ནི། སྒྲ་སྒྲོགས་རྒྱུགས་པས་འཆར་ལ་སྒྲས། 17

ནགས་སུ་གླང་ཆེན་རྗེས་བ་དག། དྲག་པོའི་སྒྲ་ནི་མ་སྒྲོགས་ཤིག།
ཧཱ་རིར་ནི་སེང་གེ་སྤྲིན་གྱི་སྒྲ། བཟོད་པ་མིན་པ་ནམ་པར་གནས། 18

---

* "ཆོས་མེན་མང་པའི་རྒྱལ་སྲིད" ཞེས་སོགས་ཚིག་རྐང་གཉིས་ཕྱི་སྐད་དོན་ཆད་པ་འདར་ལོས་བརྩམས་པ་སྣར་ཕྱི་དཔེ་ཉེད་ན་ཨུ་དག་བྱེད།

The text of this line was lost. *H*Dar Lochava sought to supply its place by the following :—

अधर्म्मं बङ्कराज्येयं तपस्विस्थान गम्यन ।

तस्मादिदं परित्यज्य हिंसापाप[1]निकेतनम्।
अधर्म्मबहुलं राज्यं गच्छाम्येष तपोवनम्॥ १३॥

राज्ञामज्ञानमूढानां वधबन्धशतार्ज्जितम्।
कालः कवलयत्येव लक्ष्मीमक्षीणकिल्बिषाम्॥ १४॥

अचिन्त्यः संसारे बहुलतरमोहाहतधियाम्
स्थिरैराशाबन्धैर्विषयसुखजालं कलयताम्।
अकाले कल्पान्तं प्रतिपुरुषमेष प्रतिदिशन्
बली कालः पुंसां किल विलसितं सङ्कलयति॥ १५॥

इति सञ्चिन्त्य नृपतिर्हिंसापापपराङ्मुखः।
दण्डवल्कलमादाय ययौ निशि तपोवनम्॥ १६॥

ततस्तद्गमनं श्रुत्वा लोके प्रच्छाद्य मन्त्रिणः।
युध्यमानाः शरोदग्रं रिपुं गर्ज्जन्तमूचिरे॥ १७॥

गहने[2] मत्तमातङ्ग मा कृथा गलगर्ज्जितम्।
घनशब्दक्षताक्षान्तिर्निर्विशत्यत्र केशरी॥ १८॥

---

१ W_{I} हिंसापात॰ H हिंसापाय॰।
२ H and W_2 गहनम्।

ཞེས་སྨྲ་བརྗོད་པ་དེ་དག་གིས། །ཛེ་ལ་བྲ་དགའ་སྡུག་པོ་དང་།
གོ་ཆས་ལུས་ནི་རབ་གཡོགས་ཏེ། །གཡུལ་དུ་གཡུལ་ནི་རབ་ཏུ་བསྐྱད། 19

སྐབས་དེར་ཀོ་ས་ལ་དག་ཏུ། །བྲམ་ཟེ་སེར་སྐྱ་ཞེས་བྱ་བ།
རྒྱལ་པོ་དབྱིག་གི་གོ་ཆ་ཡིས། །ནོར་གྱི་ཚད་པས་གཟིར་བར་གྱུར། 20

མ་ལུས་ནོར་བྱིན་དབུལ་བ་ལས། །མང་པོ་བྱིན་པར་མི་བཟོད་པ།
བུ་དང་གཉེན་རྣམས་མཐའ་དག་ནི། །བཙོན་ཁང་ནང་དུ་ནོམ་པར་བཀོད། 21

གཉེན་ཚན་བཅིངས་པས་སྡུག་བསྔལ་བས། །བཅོས་པའི་ཐབས་ནི་རབ་བསམས་ཏེ།
གྲོགས་པོ་རྒྱ་ལ་ཟིན་པ་ཡིས། །རི་དགས་བཞིན་དུ་གཡོ་བ་མེད། 22

བདག་གི་ཕ་མ་སྲིང་མོ་དང་། །སྤུན་ཟླ་བུ་མོ་བུ་དག་ཀྱང་།
བཙོན་ར་དག་ཏུ་བཅིངས་གྱུར་པ། །ནོར་མེད་ན་ནི་གྲོལ་མི་འགྱུར། 23

ས་བདག་ཆོས་ལ་སྡང་བ་ཡིས། །གང་ལ་ཆགས་པ་རབ་ཏུ་འཇུག །
ཉོན་མོངས་དག་གིས་བརླན་པ་ཡི། །ཡུལ་དེ་རབ་ཏུ་བདང་བས་འཚོ། 24

ཡང་ན་གཉེན་གྱིས་འཆིང་ཐག་གིས། །སྐྱེ་བོ་རྟག་ཏུ་བཅིངས་རྣམས་ཀྱིས།
སྡུག་པར་གྱུར་ཀྱང་ཡུལ་དག་ནི། །རབ་ཏུ་གཏང་བར་ཇི་ལྟར་ནུས། 25

དེ་སྐད་ཉོན་མོངས་ནད་འདི་ལ། །ནོར་ནི་ཉེ་བར་བསྒྲུབས་པ་ཕན།
ནོར་གྱིས་ཐར་མིན་གདུང་བ་གང་། །དེ་ནི་འཇིག་རྟེན་དག་ན་མེད། 26

इति ब्रुवाणाः समरे धीरा युयुधिरे परम् ।
ते घनस्वामिसम्मानसन्नाहच्छन्नविग्रहाः ॥ १९ ॥

अत्रान्तरे कोशलेषु ब्राह्मणः कपिलाभिधः ।
हिरण्यवर्म्मणा राज्ञा धनदण्डेन पीड़ितः ॥ २० ॥

बन्धनागारविन्यस्तसमस्तसुतबान्धवः ।
दत्ताशेषधनो भूरि दारिद्र्याद्दातुमक्षमः ॥ २१ ॥

अचिन्तयत् प्रतीकारं बन्धुबन्धनदुःखितः ।
संसक्तपाशसचिवः शारङ्ग इव निश्चलः ॥ २२ ॥

पिता माता स्वसा भ्राता दुहिता तनयश्च मे ।
रुद्धाः कारागृहे मुक्तिं नायान्ति द्रविणं विना ॥ २३ ॥

लोभः प्रवर्त्तते यत्र धर्म्मद्वेषेण भूपतेः ।
तस्यार्द्क्लेशदेशस्य परित्यागेन जीव्यते[1] ॥ २४ ॥

अथवा कथमुत्स्रष्टुं देशः कृच्छ्रेऽपि शक्यते[2] ।
जन्तुभिः सततावद्धैर्बन्धुबन्धनरज्जुभिः ॥ २५ ॥

द्रविणोपार्ज्जनं तस्मादस्मिन् क्लेशमये हितम् ।
नास्ति तद्व्यसनं लोके तीर्य्यते न धनेन यत् ॥ २६ ॥

---

१ W_r जीवितम् । २ H and W_1 त्यज्यते ।

ནོར་གྱི་ཕྲུན་ཚོགས་གྱ་གྱུ་ནི། སྨད་འཚོང་མ་བཞིན་ནམ་འགྱུར་ཅན།
དོན་དུ་གཉེར་ན་བགྲོད་པར་བྱེད། དོན་དུ་མ་གཉེར་རང་ཉིད་འོངས། 27

རི་བྲལ་འཁྲི་ཤིང་སྡིང་པ་བཞིན། རིང་བཀོམ་རྗེས་སུ་འཆིང་ལྡན་པའི།
འགར་ནི་འགའ་ཚེ་ཚོགས་ཅན་གྱིས། གཡོག་ལ་འབྲས་བུ་མེད་པ་ཉིད། 28

སྨོང་བ་དམ་པའི་སྐྱེ་བོས་སྤངས། ངོ་ཚའི་རྩོལ་གྱིས་ཡོངས་སུ་གྱིས།
སྨན་པ་གྱོ་ཡི་ལྷགམ་ནི། འབྲས་བུར་བཅས་ཀྱང་འབྲས་མེད་ཉིད། 29

དང་པོ་དུས་སུ་ཉེ་བར་འོངས་པའི་རོ་ལས་སྨྲོན་དུ་བསྐྱེན་བཀུར་བྱ།
དེ་ནས་ནོར་གྱི་ཆ་བསྐྱངས་ཡོངས་སུ་འདྲིས་ལས་བཀུར་བ་ཉམ་པར་ཉམས།
སྲིད་པས་བློ་གྲོས་གཡོ་ལྡན་སྨོང་བའི་ཚོགས་ཉམས་ནང་དུ་ཉམ་བསམས་ཤིང་།
སྐད་ཅིག་ལ་ནི་རེ་བའི་འཆིང་བ་ཡངས་པར་བྱེད་ཅི་བདོག་པར་བྱེད། 30

ཆགས་པའི་རང་བཞིན་འཛིག་རྟེན་འདིར། ནོར་གྱི་ཡོན་དན་སུ་ཞིག་འཛིན།
དེ་སྐད་ཐབས་ཀུན་དམན་གྱུར་པ། བདག་ནི་འགྲོ་བ་མེད་པ་ཉིད། 31

ཅི་ཞིག་བྱ་ཞིང་གང་དུ་འགྲོ། གྲིབ་མ་དོན་གཉེར་ལམ་བཟང་བཞིན།
རྟེན་མེད་ཡིད་ལ་རེ་བ་ཡིས། ངལ་གསོ་ཐོབ་པར་མ་གྱུར་ཏོ། 32

སྐྱེ་བོའི་ནགས་ཚལ་མཆོག་དུ་ཤིན་དུ་སྡུག་བོར་གྱུར་པ་འདིར།
གང་ཞིག་སྔོན་དུ་སྐྱེ་བོ་སྨོང་ལ་འབྲས་བུ་ཀུན་སྤྱིར་ཡང་།
ཉམ་ཡང་འདར་བར་མི་འགྱུར་དུད་པ་ཉིད་ཀྱང་མི་གཏོང་བ།
གཉད་པ་དམ་པའི་ལྡོན་ཤིང་དེ་ནི་གང་ཡང་རྙེད་མ་གྱུར། 33

प्रार्थ्यमानाः पलायन्ते स्वयमायान्त्यनर्थिताः।
वेश्या इव विकारिण्यः कुटिला धनसम्पदः॥ २७॥

विरसा जीर्णवल्लीव दीर्घशोषानुबन्धिनी।
क्वचित् कदाचित् कृच्छ्रेण सेवा फलति नैव वा॥ २८॥

लज्जारजःपरिचिता याच्ञा सज्जनवर्ज्जिता।
अवमानशतोच्छिष्टा सफलाप्यफलायते॥ २९॥

पुरः सत्कारांशः प्रथमसमयोपागमरसात्
ततो मानम्लानिर्द्रविणकणयाच्ञापरिचयात्।
विमृश्यान्तस्तस्मात्तरलितमतिर्मार्गणगणः
क्षणादाशाबन्धं विपुलयति सङ्कोचयति च॥ ३०॥

लोभस्वभावे[1] लोकेऽस्मिन् को गृह्णाति धनैर्गुणान्
सर्व्वोपायविहीनस्य तस्मान्नास्त्येव मे गतिः॥ ३१॥

किं करोमि क्व गच्छामि छायार्थीव मरोः पथि।
नासादयति विश्रान्तिं निरालम्बो मनोरथः॥ ३२॥

अत्यन्तसङ्कुलतरे जनकाननेऽस्मिन्
न प्राप्यते विपदि कोऽपि स साधुवृक्षः।
यः सन्ततार्थिजनसर्व्वफलार्पणोऽपि
नो कम्पते न च जहाति नतिं कदाचित्॥ ३३॥

१ W1 लोभस्वभावः।

བསོད་ནམས་མི་དམན་ས་ཡི་དབང་། སྐྱོང་བ་ཀུན་གྱི་དཔག་བསམ་ཤིང་།
འཕོངས་པའི་གདུང་བ་མཆོག་ཏུ་འཕྲོག། སྙིང་སྟོབས་འོ་མའི་རྒྱ་མཚོ་ཕྲོས། 34

དེ་ལྟར་ཡང་དག་བསམས་ནས་དེ། རེ་བ་བཅས་པ་བསྟན་པ་ཡིས།
ལམ་ནས་དགའ་བས་སྣ་དྲངས་ཏེ། མི་བདག་བལྟ་བར་འདོད་པས་ཆས། 35

དེ་ནས་དེ་ཡིས་དཔལ་ཕྱུ་ཡིས། གྲོང་མཐའ་དཀའ་ཐུབ་ནགས་སུ་ཕྱིན།
མི་བདག་ཤིང་ལོས་ཡོངས་དཀྲིས་པ། ལམ་གྱིས་ཡོངས་སུ་དུབ་པས་མཐོང་། 36

བཀྲིས་བསྐོམ་ངལ་བས་གཟིར་བ་དེ། མི་བདག་གིས་ཀྱང་མཐོང་གྱུར་ནས།
སྙིང་རྗེའི་རྒྱ་མཚོས་རིང་པོ་ནས། འོང་བ་ཡི་ནི་རྒྱུ་མཚན་དྲིས། 37

དེ་ལ་དེ་ཡིས་རང་གི་སྤྱོད། ཤུགས་རིངས་ཚ་བས་གསལ་བྱས་པ།
བཤད་ནས་གཉེན་རྣམས་བཅིངས་པ་ཡི། སྡུག་བསྔལ་གྱིས་གཟིར་སྐད་ཡང་བཤད།
38

གཉེན་ནི་བཅིངས་པ་དགྲོལ་བའི་སྐད། མི་བདག་སྐྱོང་བ་ལྷ་ཡི་ཤིང་།
བསོད་ནམས་མི་དམན་བལྟ་བ་ལ། གསེར་དོན་གཉེར་བ་བདག་འོངས་སོ། 39

ཐུགས་ནི་སྙིང་རྗེ་རྫོགས་གྱུར་པ། དཔལ་ལྡན་འཇིག་རྟེན་མགོན་པོ་དེ།
མཐོང་བ་ཉིད་ཀྱི་འཕྲུལ་ལ་ནི། བདག་གི་བསྔོག་བ་རྫོགས་པར་གྱུར། 40

ཉོན་མོངས་གདུང་བས་ཉམས་མི་བྱེད། སྨད་པ་ཡིས་ནི་སྲུན་མི་འབྱིན།
དུས་ནི་སྙིང་པ་མ་ཡིན་པར། སྐྱེ་བོ་ཆེན་པོ་འབྲས་དུ་བསྐྱེད། 41

अदीनपुण्यः सर्व्वार्थिकल्पवृक्षः क्षितीश्वरः ।
श्रूयते सत्त्वदुग्धाब्धिरापन्नार्त्तिहरः परम् ॥ ३४ ॥

इति सञ्चिन्त्य स नृपं प्रतस्थे द्रष्टुमुत्सुकः ।
आशाबन्धोपदिष्टेन पथा हर्षपुरःसरः ॥ ३५ ॥

ततः स शनकैः प्राप्य पुरोपान्ततपोवनम् ।
ददर्शाध्वपरिश्रान्तः सम्वीतं वल्कलैर्नृपम्[१] ॥ ३६ ॥

नरनाथोऽपि तं दृष्ट्वा क्षुत्पिपासाश्रमातुरम् ।
पप्रच्छ करुणासिन्धुर्दूरागमनकारणम् ॥ ३७ ॥

स तस्मै निजवृत्तान्तमुष्णनिश्वाससूचितम् ।
निवेद्य बन्धुसंरोधदुःखार्त्तः पुनरब्रवीत् ॥ ३८ ॥

आयातोऽहं हिरण्यार्थी बन्धुबन्धनमुक्तये ।
अदीनपुण्यं नृपतिं द्रष्टुमर्थिसुरद्रुमम् ॥ ३९ ॥

लोकनाथः स मे श्रीमान् करुणापूर्णमानसः ।
सद्यः सन्दर्शनेनैव सङ्कल्पं पूरयिष्यति ॥ ४० ॥

अम्लानं क्लेशसन्तापैरवमानैरदूषितम् ।
अपर्युषितकालञ्च फलं सूते महाजनः ॥ ४१ ॥

१ $\frac{W}{I}$ Omits verses 35 and 36.

སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཀྱི་དབུལ་བའི་རབ་རིབ་མི་བཟད་འཕྲོག་བྱེད་ཅིང་།
གྲགས་པ་རབ་ཏུ་གསལ་བའི་འཁྱོར་པས་ཕྱོགས་རྣམས་ཡོངས་སུ་འགེངས།
དྲི་མེད་ཡིད་ནི་མངོན་པར་རེངས་བྱེད་དགའ་བ་དག་གི་གཉེན།
ས་ཡི་བདུད་རྩིའི་ཟེར་དེས་བདག་གི་གདུང་བ་འཕྲོག་པར་འགྱུར། 42

ཞེས་པ་དེ་ཡིས་བཤད་ཐོས་ནས། ས་ཡི་བདག་པོ་གཟིར་བར་གྱུར།
བཅོས་ཐབས་མེད་པའི་གདུང་བ་དག། འཇོམས་པ་ཡིས་ནི་ཡང་དག་བསམས། 43

ཀྱེ་མ་བདག་གིས་རྒྱལ་སྲིད་པདང་། དུས་མིན་འདིར་ནི་གཉིས་སྐྱེས་ཀྱིས།
བསམས་དེ་བཀྲིས་པས་ཉེན་པ་ལས། ལམ་གྱི་ཤིང་ནི་སྐམ་པོ་བཞིན། 44

སྡོང་བ་རྣམས་ལ་ལམ་རིང་གིས། ངལ་བ་འབྲས་མེད་གདུང་བ་སྟེར།
རི་དགས་སྲིད་སྐྱེད་ཆུ་ལྟ་བུ། སྨོངས་པ་སྐྱེད་བྱེད་བདག་སྨད་དོ། 45

ཁ་ལ་རྗེ་བསྙུན་མཚུངས་པ་ཡིས། བསྒྱུལ་བར་གྱུར་བཞིན་དོན་གཅེར་རྣམས།
རེ་བ་ཉམས་པས་ལམ་དུ་ནི། ཡོངས་ངལ་ལྷེ་བ་ཉིད་དུ་གྱུར། 46

རྒྱལ་པོ་དེ་ནི་བདག་ཡིན་ཏེ། རྒྱལ་སྲིད་བཏང་ནས་ནགས་ཚལ་བསྟེན།
ཞེས་པ་ཐོས་ནས་བྲམ་ཟེ་འདི། འཕྲུལ་ལ་སྲོག་ནི་གཏོང་བར་འགྱུར། 47

*   *   *   *

* The 48th S'loka and its Tibetan version do not occur in the xylograph.

दारिद्र्यतीव्रतिमिरापहरः[1] प्रजानाम्
कीर्त्तिप्रकाशविभवैः परिपूरिताशः ।
अभ्युल्लसद्विमलमानसहर्षबन्धु-
स्तापं हरिष्यति स मे वसुधासुधांशुः ॥ ४२ ॥

श्रुत्वेति तेन कथितं व्यथितः पृथिवीपतिः ।
संक्रान्तनिष्प्रतीकारसन्तापः समचिन्तयत् ॥ ४३ ॥

अहो नु त्यक्तराज्योऽहमकालेऽस्मिन् द्विजन्मना ।
चिन्तितः स्तुत्परीतेन शुष्कवृक्ष इवाध्वनि ॥ ४४ ॥

दूराध्वश्रमवैफल्यसन्तापप्रदमर्थिनाम् ।
सम्मोहजननं धिङ्मां मृगतृष्णाजलोपमम् ॥ ४५ ॥

मुखाश्रुपाततुल्येन मूर्च्छितानामिवार्थिनाम् ।
आशाभङ्गेन गुरुतां प्रयात्यध्वपरिश्रमम् ॥ ४६ ॥

अहं स राजा सन्त्यक्तराज्यः काननमाश्रितः ।
इति श्रुत्वैव विप्रोऽयं सद्यस्त्यजति जीवितम् ॥ ४७ ॥

जातैव चिन्तामतुलां प्रसूते
निद्रापहारं तरुणी करोति ।
कन्येव दत्ता विदधाति शोकं
नष्टा दहत्याशु शरीरमाशा[2] ॥ ४८ ॥

---

१ H ॰दुरितापहरः। २ Orig. omits this verse.

འདི་ནས་རྒྱལ་པོའི་གནས་ཕྱིན་ཏེ། བསམ་པ་བདག་ནི་མ་ཐོབ་ན།
ཡིད་ལ་རེ་བ་ཉམས་པ་འདི། གཏུང་བས་ཅི་ཞིག་བྱེད་པར་འགྱུར། 49

སློང་ཉམས་ཕྱིར་ཟློག་བཞིན་ལེགས་ཚ་བའི་ཤུགས་རིངས་དག་གིས་གཏུང་བྱེད་
ཅིང་།
ཀུན་དུ་རྟོག་པས་ལུས་དམན་ཆུང་ངུར་བྱས་ཤིང་གང་ལས་མི་འགྲོ་བ།
ཉོན་མོངས་དུས་སུ་མི་ཉམས་སེམས་ལ་འཕྲལ་ལ་རབ་ཏུ་གསལ་བ་གང་།
དགེ་ལྡན་ཡོངས་སུ་སྐྱོབ་གཉེན་བསྔགས་འོས་གཅིག་བུ་དེ་ཉིད་འཚོ་བ་ཡིན། 50

རང་ཉིད་རབ་བསྐྱུངས་གཏུང་བའི་ཉམས་སྐྱོང་ཤེས་ཤིང་རི་བྱིའི་ལྟོ་བའི་ཕྲུག་ཏུ་
བཞུགས་བྱས་ཏེ།
སྨིན་བྱེད་མེ་ཡིས་རབ་ཏུ་གཏུང་བའི་བྱེད་པས་ཁྱབ་ཅིང་འཚེད་པའི་བྲུ་བ་ཡོངས་
སུ་འདྲིས་གྱུར་ཀྱང་།
སློང་བའི་ཚོགས་ཀྱི་སྲིད་པ་དྲག་པོས་བསྐྱེད་པའི་མི་བཟད་གཏུང་བ་འཕྲོག་པ་
མིན་པ་གང་།
སྐྱེ་བོ་འགྲོན་པོའི་ཤུགས་རིངས་ཆེ་བ་བསྐོལ་ཞིང་གཡེལ་བ་འགྱུར་བྱེད་ཀྱི་
མཚོའི་སྐྱེ་བ་སྨད། 51

དེ་ལྟར་སྨད་ཅིག་བསམས་བྱས་ནས། རྒྱུ་དང་འབྲས་བུ་མགྲོན་བྱས་ཏེ།
མི་སྙན་སྨྲ་བས་འཛིགས་འཛིགས་བཞིན། མི་ཡི་བདག་པོས་དེ་ལ་སྨྲས། 52

བསོད་ནམས་མི་དམན་རྒྱལ་པོ་དང་། བྲམ་ཟེ་དགྲ་གསོད་སྦྱོར་བའི་ཚེ།
འཚོ་ལས་ཆགས་བྲལ་རྒྱལ་སྲིད་ནི། ཡོངས་སུ་བཏང་ནས་དབེན་པ་བསྟེན། 53

राजधानीमितो गत्वा मामप्राप्य विचिन्तितम्।
किं करिष्यति सन्तापादयं भग्नमनोरथः॥ ४९॥

जीवत्येकः किल स कुशली क्लेशकाले नराणां
श्लाघ्यश्चित्ते स्फुरति सहसा यः परित्राणबन्धुः।
प्रत्याख्यानान्मलिनवदनस्तप्तनिश्वासशुष्यत्-
सङ्कल्पाल्पीकृततनततनुर्याति यस्मान्न चार्थी॥ ५०॥

धिग्जन्म क्षारसिन्धोः पथिकजनपृथूच्छ्वासनिर्दग्धदृष्टे-
स्तापं योऽर्थिप्रजानां हरति न विषमं तीव्रतृष्णासमुत्थम्।
जाता[1] स्वादोऽप्यगस्त्योदरकुहरलुठज्जाठराग्निप्रताप-
व्यापारव्याप्यमानक्वथनपरिचितः स्वप्रमाथव्यथानाम्॥५१॥

इति सञ्चिन्त्य नृपतिः कृतातिथ्यः फलाम्बुना।
तमुवाचाप्रियाख्यानभीतिभीत इव क्षणम्॥ ५२॥

ब्रह्मन्नदीनपुण्योऽहं राजा शत्रुबधोद्यमे।
हिंसाविरक्तः सन्त्यज्य राज्यं विजनमाश्रितः॥ ५३॥

---

[1] $\frac{W}{1}$ ज्ञाता।

ས་སྐྱོང་ལོངས་སྤྱོད་འཚོ་བའི་འབྲས། སྨིན་འཕྲོག་ལྷ་བྱུར་མི་བརྟེན་པ།
གསར་པའི་ཁྲག་གིས་སྤགས་པ་ནི། སྨིན་པོ་བཞིན་དུ་ལོངས་སྤྱོད་བྱེད། 54

གནས་མིན་འདུག་རེས་ཅི་ཞིག་བྱ། ཁྱོད་ནི་དུས་མིན་ཉེ་བར་འོངས།
ཅུང་ཟད་བདག་གིས་ནུས་པ་གང་། དེ་ནི་བསྡམས་པ་མེད་པར་བརྗོད། 55

ཅེས་བརྒྱལ་པོའི་ཚིག་ཐོས་ནས། རྡོ་རྗེས་ཡང་དག་བཙོམ་པ་བཞིན།
གཉེན་ཐར་རེ་བ་བྲལ་བ་ལས། ད་ནི་ས་ལ་འགྱེལ་བར་གྱུར། 56

བརྒྱལ་ཞིང་ས་ལ་འགྱེལ་བ་དེ། མཐོང་ནས་མིག་ནི་མཆི་མར་བཅས།
སྙན་པའི་ཚིག་གིས་དབུགས་ཕྱུང་ནས། རྒྱལ་པོས་སྨྲར་ཡང་རབ་བསམས་པ། 57

ཀྱེ་མ་བདག་ནི་བསོད་ནམས་དམན། མྱ་ངན་ལམ་དང་མཚུངས་པ་འདིར།
སྨོང་བའི་རེ་བའི་འཁྲི་ཤིང་གི། མྱུ་གུ་འཕྲལ་ལ་བསྐམས་པར་གྱུར། 58

ནོར་དོན་གཉེར་བ་ཐུན་པོའི་འདོད་པས་དང་པོ་གནས་མིན་སྨོང་བ་འབྲས་
བཅས་བསམས།

རེ་བའི་མྱུ་གུས་འདོད་པའི་བདེ་བ་མ་ལུས་ཡལ་ག་སྡོང་གི་མདོན་པར་བྲིས།
དེ་ནས་ཨ་མྲ་ཐོབ་པར་མ་གྱུར་སེང་ལྡེང་སྐམ་པོས་བཞིན་དུ་སྐད་ཅིག་ལ།
ཤིན་དུ་ཆེ་བའི་རྩོམ་པ་ཉམས་ཤིང་རེ་ཐག་ཆད་བས་འཕྲལ་ལ་བརྒྱལ་བར་གྱུར། 59

བསྒྲངས་ནས་རྙེད་པ་ཆུང་དུ་ཞིག། གལ་ཏེ་འདི་ལ་བདག་གིས་བྱིན།
བསོད་སྙོམས་བསྒྲངས་ཀྱང་ལྟོགས་གྱུར་བ། དེ་ལ་རེས་ཀྱང་ཅི་ཞིག་བྱེད། 60

हिंसाफलं महीपाला भोगं भ्रूभङ्गभङ्गुरम् ।
प्रत्यग्ररुधिरादिग्धं क्रव्याद इव भुञ्जते ॥ ५४ ॥

किं करोम्यपदस्थोऽहमकाले त्वमुपागतः[१] ।
यत्तु शक्यं मया किञ्चित्तदयन्त्रितमुच्यताम् ॥ ५५ ॥

इति राजवचः श्रुत्वा वज्रेणेव समाहतः ।
बन्धुमोक्षणनैराश्यात् स पपात महीतले ॥ ५६ ॥

मूर्च्छितं पतितं भूमौ तं दृष्ट्वा साश्रुलोचनः ।
प्रियाभिर्वाग्भिराश्वास्य राजा पुनरचिन्तयत् ॥ ५७ ॥

अहो नु मन्दपुण्योऽहं यस्मिन्नाशालताङ्कुरः ।
मरुमार्गोपमे जातः सहसा शोषमर्थिनः ॥ ५८ ॥

अर्थार्थी प्रथमं विचिन्त्य सफलामस्थानयाच्ञां क्षणात्
आशातूलिकयाभिलिख्य निखिलं शाखासहस्रैः सुखम् ।
अप्राप्याम्रमिवाथ शुष्कखदिरान्मूढेच्छया वाञ्छितं
सद्यश्छिन्नमनोरथः पृथुतरारम्भक्षयान्मूर्च्छति ॥ ५९ ॥

अस्मै यदि प्रयच्छामि याचितावाप्तमल्पकम् ।
तत् किं तेन करोत्येष भिक्षित्वापि बुभुक्षितः ॥ ६० ॥

---

१ H त्वमिहागतः ।

གལ་ཏེ་ཙ་ཚག་སྙིང་པ་དག་གིས་ཕྲོག་ཕྱུབ་ཁྲིམ་ནི་དེ་ཉིད་དུ་གནས་ཤིང་།
གང་ཡང་བྲུད་མེད་བྲི་ཡའི་ཕྲུག་གུ་ཐབ་དུ་ཉལ་ལ་རྩེ་ལྡན་དེ་དག་གིས།
གལ་ཏེ་ཀོང་བ་ཉིད་ཀྱིས་འགྲོ་ཞིང་སླར་ཡང་དེ་ནི་བསྟེན་བྱ་དེ་ལྟ་ན།
དེ་ནི་ངེས་པར་ས་བདག་སྐད་ཅིག་མཐོང་དང་མགུ་བ་ལ་ཡང་ཡོན་ཏན་ཅི། 61

བློ་གྲོས་བརྩེ་བའི་ནོར་འཛིན་གྱིས། དེ་ལྟར་བསམས་ནས་ས་འཛིན་དབང་།
དེ་འདོད་བསྒྲུབ་པར་ཆས་གྱུར་པས། རབ་སད་བྱས་ཏེ་དེ་ལ་སྨྲས། 62

ཡོངས་ཤིག་བྲམ་ཟེ་ཁྱོད་ཀྱི་ནི། འདོད་པ་བསྒྲུབ་སླད་མི་ཐོགས་པར།
འབྲས་བུ་ཐོབ་པའི་ཐབས་ཀྱི་མཆོག། བདག་གིས་ཡང་དག་སྟེར་བར་གྱུར། 63

རེ་ཞིག་བདག་གི་མགོ་བཅད་ནས། སོང་སྟེ་ས་བདག་ཚངས་བྱིན་ལ།
བྱིན་ན་དེ་ནི་དགའ་བ་ཡིས། ཁྱོད་ལ་ནོར་དག་སྟེར་བར་འགྱུར། 64

སྐྱོང་བའི་ཙན་དན་ལྗོན་པ་དེའི། ཚིག་དེ་ཐོས་ནས་གཉིས་སྐྱེས་ནི།
རྣ་བར་རབ་ཞུགས་གདུང་བ་ཡིས། ཁབ་ཀྱི་ཕྱུག་བཞིན་རབ་སྨྲས་པ། 65

སྲིད་གསུམ་སྙིང་པོ་སྐྱེ་བ་ནི། འགྲོ་བའི་བསོད་ནམས་ཀྱིས་ཐོབ་པ།
ཁྱོད་ཀྱི་མགྲིན་པ་འདི་ལ་མཚོན། བརྙོང་པོ་སྡིག་ཅན་སུ་ཞིག་བསྣུན། 66

ཆགས་པས་བློ་གྲོས་ཉམས་པ་སུ། ཁྱོད་ལ་མི་ཕན་སེམས་པར་བྱེད།
ས་ཏ་ཀཱ་ར་སོལ་བ་ཡི། རྒྱུ་རྩ་མ་རུངས་སུ་ཞིག་བྱེད། 67

तस्मिन्नेव गृहे जरत्तृणकटच्छन्ने यदि स्थीयते
चुल्लीसुप्तविड़ालवालसदयास्ता एव यद्यङ्गनाः ।
पादाभ्यामवगम्यते यदि पुनस्तेनैव सेवाधुना
तत् को नाम गुणः क्षणं क्षितिभुजा दृष्टेन मृष्टेन[1] वा॥६१॥

इति ध्यात्वा धराधीशः कृपावसुधया धिया ।
तद्याच्ञा[2]सिद्धिसन्नद्धः प्रतिबोध्य तमभ्यधात् ॥ ६२ ॥

उत्तिष्ठ वत्स सम्प्राप्तस्त्वत्समीहितसिद्धये ।
अविलम्बिफलावाप्तिरुपायः परमो मया ॥ ६३ ॥

छित्त्वा मम शिरस्तावत् ब्रह्मदत्ताय भूभुजे ।
गत्वा प्रयच्छ तत्प्रीत्या स ते वित्तं प्रदास्यति ॥ ६४ ॥

तस्यार्थिचन्दनतरोः श्रुत्वैतत् वचनं द्विजः ।
उवाच तप्तसूच्येव विद्धः कर्णप्रविष्टया ॥ ६५ ॥

तव त्रैलोक्यसारस्य जगत्पुण्याप्तजन्मनः ।
शस्त्रं कण्ठे शठेनास्मिन् केन पापेन पात्यते ॥ ६६ ॥

लोभलुब्धमतिः को नु चिन्तयेदहितं तव ।
अङ्गारकारणं क्रौर्यं सहकारे करोति कः[3] ॥ ६७ ॥

१ W_2 and H तुष्टेन वा । २ H and W_1 तद्वाञ्छा ।
३ W_2 and H सः ।

ཅེས་སྨྲ་བྲམ་ཟེ་དེ་ལ་ནི། མི་ཡི་བདག་པོས་ལན་སྨྲས་པ།
འཚོ་ཡང་བདག་ནི་བཅིངས་པ་ཡིས། དགྲ་པོ་དེ་ཡི་དྲུང་དུ་ཁྲིར། 68

རྒྱལ་པོས་འབད་པས་དོན་གཉེར་བས། ས་བདག་དགྲ་ཡི་དོགས་པ་ཅན།
ཚངས་བྱིན་དག་གི་དྲུང་དུ་ནི། དེ་ཡིས་དེ་ནི་བཅིངས་ནས་ཁྲིད། 69

དེ་ཡིས་ཁྲིར་ནས་འོངས་པ་ཡི། ས་དབང་དེ་གླངས་ཚངས་པས་བྱིན།
ནོར་དབང་མཚུངས་པས་དེ་ལ་ནོར། འདོད་པ་བས་ཀྱང་མངོན་ལྷག་བྱིན། 70

བསོད་ནམས་མི་དམན་མི་བདག་གི་ནི་སྙིང་སྟོབས་ངོ་མཚར་བྲམ་ཟེས་བ་ཀུན་
ཐོས་ནས།
ཁོན་གྱི་རྣམ་འགྱུར་ཤིན་ཏུ་བཟོད་དཀའ་མ་རུངས་ཉིད་དུ་མངོན་བརྗོད་དུག་བདང་སྟེ།
རང་གནས་ཤིན་ཏུ་མཐོ་བར་དེ་ནི་མགོ་བཞིན་བཞག་ནས་ཚངས་བྱིན་རང་ཉིད་ཀྱིས།
དེ་ཡི་ཞབས་ཀྱི་རྡུལ་སྐྱེས་དག་ལ་གཙུག་ཏོར་འཕྲེང་བས་སྐད་ཅིག་མཛེའ་བར་བྱས། 71

དེ་ནི་དཔལ་བ་རབ་ཐོབ་རང་གི་གྲོང་ཁྱེར་སོང་བའི་ཚེ།
ཡོངས་བདང་རྒྱལ་སྲིད་ཡང་དག་ཐོབ་ནས་བསོད་ནམས་མི་དམན་པས།
གྲགས་པ་ལྟར་དཀར་དེ་ཟླ་བའི་འཕྲེང་བ་གཡོ་ལྡན་རྒྱ་གདེར་གྱིས།
དུ་གླུལ་ཡི་རྣམ་མཛེས་ས་གཞི་ཆོས་ཀྱིས་བསྐྱངས་པར་གྱུར། 72

ཁྱབ་བདག་བསོད་ནམས་མི་དམན་དུ་གྱུར་གང་དེ་ང་ཉིད་དེ།
གང་དུ་དུས་ཀྱི་དགེ་འདུན་མང་པོའི་ཞབས་ཀྱིས་མངོན་དགའ་འས།
མི་རྣམས་དག་གིས་སྲིད་པ་གྲོལ་བའི་རྒྱུ་ནི་འབྱུང་འགྱུར་བ།
འདིར་དེང་དེ་ཡི་སྤྱོད་ཚུལ་སྲིད་པའི་སྙིང་པོས་བདག་གིས་དྲན། 73

इति ब्रुवाणं नृपतिर्ब्राह्मणं प्रत्युवाच तम् ।
जीवन्तं नय बद्धा वा तस्य मामन्तिकं रिपोः ॥ ६८ ॥

यत्नेनाभ्यर्थितो राज्ञा स तं बद्धा महीपतेः ।
निनाय ब्रह्मदत्तस्य समीपं शत्रुशङ्किनः ॥ ६९ ॥

तेनानीतं तमादाय ब्रह्मदत्तः क्षितीश्वरम्[1] ।
धनं धनेशतुल्योऽस्मै वाञ्छिताभ्यधिकं ददौ ॥ ७० ॥

सत्त्वाश्चर्यमदीनपुण्यनृपतेराकर्ण्य विप्रोदितं
त्यक्ता वैरविकारदुःसहतरं क्रौर्य्याभिधानं विषम् ।
धृत्वा मौलिमिवोन्नते निजपदे तं ब्रह्मदत्तः स्वयं
चक्रे तच्चरणाम्बुजप्रणयिणीमुष्णीषमालां क्षणात् ॥ ७१ ॥

तस्मिन् गते निजपुरं विनयप्रपन्ने
संप्राप्य राज्यमरिहीनमदीनपुण्यः ।
धर्मेण कीर्त्तिधवलाम्बुधिफेनमाला-
वेल्लद्दुकूलललितां पृथिवीं शशास ॥ ७२ ॥

योऽभूद्विभुर्भुवनसारमदीनपुण्यः
सोऽहं स्मृतं चरितमत्र मयाद्य तस्य ।
कालेन यत्र बहुसङ्गपदाभिरामा
भूमिर्भविष्यति नृणां भवमुक्तिहेतुः ॥ ७३ ॥

---

१ W1 क्षितीश्वरः ।

སྔོན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་གསུང་མཛད་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ནི།
སྐྱིད་ཚུལ་སེམས་དཔའ་རབ་འབར་ཐོས་ནས་ཡ་མཚན་གྱུར་པ་ཡིས།
དགའ་བས་རེག་པར་གྱུར་པ་མཐོ་རིས་བདག་པོའི་ལུས་ལ་ནི།
སྐྱུ་ལོང་འདབ་མ་མཛེས་པས་སྨྲས་པ་ཅི་ཡང་བྱུང་བར་གྱུར། 74

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྲིས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་བསོད་ནམས་མི་དམན་པའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་རྩ་གཉིས་པའོ།།

सत्त्वोज्ज्वलं भगवतश्चरितं निशम्य
पूर्व्वावदानकथितोदितविस्मयेन ।
हर्षस्पृशः किमपि नाकपतेर्बभूव
रोमाञ्चपञ्चरचनारुचिरं शरीरम् ॥ ७४ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां अदीनपुण्यावदानं नाम द्विपञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

Chapter LIII.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་རྩ་གསུམ་པ།

ལེགས་བཤད་འཚོལ་བའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

ལེགས་བཤད་མགྲིན་པར་ནོམ་གནས་བླ་མ་ལ་འདུད་མགོ་དང་ནོ་བར་ཕྱོས་པ་དང་།
ཞལ་ནི་རྟག་ཏུ་སྐྱོན་མེད་བདེན་པ་དང་ལྡན་མཁས་པ་རྣམས་ནི་དགའ་བའི་རྒྱན།
རིན་ཆེན་ཡིད་འོང་རབ་གསལ་དོ་ཤལ་བཀོད་པ་བཀྲ་བའི་ཁྱད་པར་དང་བཅས་པ།
ཆས་ལྡན་བུད་མེད་ཆས་ཀྱིས་སྐྱེ་བོ་ལྷག་མ་རྣམས་ནི་མཆོག་ཏུ་ཚིམ་པ་སྐྱེད། 1

གཞན་དུ་བཅོམ་ལྡན་འཇོམ་ལྡན་པ། བགྲོ་བྲིན་བསམ་པ་ཤེས་པ་ཡིས།
འཇོམ་པའི་རྒྱུ་ནི་དྲིས་པ་ན། ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་ཡང་གསུངས་པ། 2

བ་ར་ཎ་སིར་མི་ཡི་བདག། ལེགས་བཤད་འཚོལ་བ་ཞེས་པ་བྱུང་།
གང་གི་གྲགས་པ་དྲི་མེད་རིགས། དཔལ་གྱི་འཕྲེང་བ་བཞིན་དུ་མཛེས། 3

ཡོན་ཏན་སྐུང་ལྡན་ལེགས་སྦྱོར་ལྷུམ། དབེན་ལྡན་རྣམས་ཀྱི་སྙིང་ལ་ཆགས།
སྨྲ་རིག་མ་ཡིན་ལེགས་བཤད་ཀྱི། རྒྱུན་ཉིད་གང་ཞིག་དོན་གཉེར་བྱུར། 4

གང་གི་མཛོད་དཔལ་སྣང་རྣམས་ལ། རྟག་ཏུ་བཏང་ཡང་གཡོ་བ་མེད།
གྲགས་པ་ཡོན་ཏན་ལ་བརྟགས་ཀྱང་། རིང་ལས་ཤིན་ཏུ་རིང་བར་འགྲོ། 5

त्रिपञ्चाशत्तमः पल्लवः ।

सुभाषितगवेष्यवदानम् ।

सूक्तिः कण्ठविवर्त्तिनी गुरुनतिर्मौलौ श्रुतं श्रोत्रयोः
सत्यं नित्यमनामयञ्च वदने विद्वत्प्रियं भूषणम् ।
रत्नोदारसुतारहाररचनाचित्रेण धत्तेतरां
सन्तोषं सविशेषवेषवनितावेशेन शेषो जनः ॥ १ ॥

शक्रेणान्यत्र भगवान् सस्मितः स्मितकारणम् ।
पृष्टस्तदाशयज्ञेन सर्व्वज्ञः पुनरब्रवीत् ॥ २ ॥

सुभाषितगवेषीति वाराणस्यामभून्नृपः ।
यस्य जात्युज्ज्वलाकीर्त्तिर्मालेव विबभौ श्रियः ॥ ३ ॥

सुवृत्ते गुणसंयुक्ते हृदिसक्ते विवेकिनाम् ।
अभूद्भूषण एवार्थी यः सूक्ते न तु मौक्तिके ॥ ४ ॥

नित्यमर्थिषु मुक्तापि कोषश्रीर्यस्य निश्चला ।
कीर्त्तिर्गुणनिबद्धापि दूराद्दूरतरं गता ॥ ५ ॥

རྒྱལ་པོའི་ངང་པའི་སྐྱན་ངག་མཁན། ཉམས་ལྡན་མཆོག་གི་རྟག་བསྐོར་ཏེ།
མཁས་པའི་མདུན་ས་པད་ལྡན་ལ། ལོངས་སྤྱོད་སྐལ་བཟང་ལྡན་པ་གྱུར། 6

ཉེ་བར་བསྟན་ལ་རབ་ཞུགས་པ། དེ་ཡི་ལེགས་བཤད་ཡོན་ཏན་ཅན།
མར་མེའི་རྩེ་མོ་ལྟ་བུ་ཡིས། སྐྱེ་བོ་སྨོངས་པའི་རབ་རིབ་ཕྲོགས། 7

ནམ་ཞིག་མདུན་སར་བློ་བཟང་དེ། འདུག་བས་ལེགས་བཤད་གདམས་གྱི་ནི།
མཇུག་ཏུ་བློ་བཟང་ཞེས་པ་ཡི། བློན་པོའི་གཙོ་ལ་རབ་སྨྲས་པ། 8

ལེགས་པའི་སྒྲ་དང་ཚིག་ལ་ཞོན། ཡོན་ཏན་རྒྱན་དང་ཡང་དག་ལྡན།
ཁྱེད་རྣམས་དག་གི་ལེགས་བཤད་ཀྱིས། མདུན་ས་འདི་ནི་ངག་བཞིན་མཛེས། 9

ལེགས་པར་སྨིན་ཞིང་རོ་དང་ལྡན། ལེགས་པར་བཤད་པ་གསར་པ་ནི།
མི་དོག་ལྟ་བུ་འགའ་ཞིག་ནི། ཁྱོད་ཀྱིས་སྟེར་པར་གྱུར་དམ་ཅི། 10

ལེགས་བཤད་རྣམས་དང་མཐུན་རྣམས་དང་། རྟོག་པ་རྣམས་ཀྱང་རྒྱུས་པ་ནི།
གསར་པ་ཁོ་ན་ཡིད་འཕྲོག་སྟེ། བུད་མེད་རྣམས་ཀྱི་ལང་ཚོ་བཞིན། 11

རོ་དང་ལྡན་ཡང་ཉམས་པར་ཡངས་པའི་མེ་ཏོག་དོན་མཐུན་ཡོངས་བཏང་ནས།
ཡོངས་འདྲིས་ཡོངས་སུ་འདོར་ཞིང་རིང་ནས་རིང་དུ་རྗེས་སུ་རྒྱུ་བྱེད་པ།
གསར་པ་གསར་པའི་སྦྲང་རྩི་ལ་ཆགས་ཀྱང་དྲུག་པ་ནི་ནགས་རྣམས་སུ།
རྟག་ཏུ་ཉམས་སུ་སྤྱོང་གྱུར་རིན་ཆེན་མཚར་ལས་འཁྱམས་པར་བྱེད། 12

स राजहंसः सरसैर्वृतः कविवरैः सदा ।
विद्वत्सभाकमलिनीभोगसौभाग्यवानभूत् ॥ ६ ॥

उपदेशप्रवृत्तस्य सगुणास्तस्य सूक्तयः ।
जनस्य मोहतिमिरं जह्रुर्दीपशिखा इव ॥ ७ ॥

स कदाचित् सभासीनः सुभाषितकथान्तरे ।
सुमतिः सुमतिं नाम प्रधानामात्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥

साधुशब्दपदारूढैर्गुणालङ्कारशालिभिः ।
सभा भवद्भिर्भात्येषा भारतीव सुभाषितैः ॥९ ॥

अप्यन्विष्टानि सत्याकरसवन्ति नवानि च ।
सुभाषितानि भवतां कुसुमानीव कानिचित् ॥ १० ॥

सूक्तीनां प्रतिभानाञ्च मञ्जरीणाञ्च जृम्भितम् ।
नवमेव मनोहारि नारीणामिव यौवनम् ॥ ११ ॥

सरसमपि विहाय व्यायतं पुष्पसार्थं
परिचितपरिहारी दूरदूरानुसारी ।
भ्रमति सततसक्तास्वादमन्दादरत्वात्[1]
नवनवमधुलुब्धः षट्पदः काननेषु ॥ १२ ॥

[1] Orig. मन्दाररत्वात् ।

མདུན་ས་འདིར་ནི་ཅུང་ཟད་གང་། ལེགས་བཤད་རིན་ཆེན་ནོམ་དགོད་དེ།
ཡོངས་སུ་བརྡེག་པས་ཐར་པ་དེ། ཀུན་དུ་རིན་ཐང་མེད་པར་འགྱུར། 13

མཁས་པ་ཉིད་ནི་མེད་ན་བློ་གྲོས་ནོམ་ཉམས་མི་ནོམས་འཚོ་བ་དོན་ཡོད་མིན།
མཚུངས་མེད་གྲུས་པའི་སྙན་ངག་མེད་ན་མཁས་པ་ཉིད་ནི་ནེ་ཙོའི་སྐོག་དང་
མཚུངས།
སྙིང་ལྡན་ནོམས་ཀྱིས་ནང་གི་དེ་ཉིད་དཔྱོད་པ་མེད་ན་རབ་མཛེས་སྙན་ངག་ནི།
སྟོང་པ་ཉིད་དེ་དབེན་སའི་ཁྲོན་པའི་མར་མེ་བཞིན་དུ་བསྟེན་པར་འགྱུར། 14

དེ་ཡི་སྐད་དུ་གནས་སྐབས་འདིར། ཁྲ་བྲུག་སྒྲ་ཡིས་བྲེ་ཐྲ་བཞིན།
ལེགས་བཤད་གོ་སྐབས་གྲོགས་པོ་ཡིས། གསར་པ་ཅུང་ཟད་བརྗོད་པར་མཛོད། 15

གལ་ཏེ་སྐད་ཅིག་དེ་ཉིད་ཤེས་པས་མཆོག་ཏུ་ཡིད་དོན་སྒྲུབ་བྱེད་ན།
ཚིག་ནོམས་ཀྱིས་ནི་ཛ་དེའི་དྲི་བཟང་ངོ་མཚར་བ་དག་སྐྱེད་པར་བྱེད།
ཛེ་སྲིད་སྐྱེ་བོ་ལེགས་བཤད་བརྗོད་ལ་གོ་སྐབས་མེད་པ་མ་ཐོབ་མིན།
དེ་ལྟ་ན་ཡང་མཆོག་གི་ཚོགས་ལ་ལྷག་པར་བསྟུར་བྱས་འདི་འབྲས་བྲལ། 16

དེ་སྐད་མི་མགོན་གྱིས་བརྗོད་པ། བློ་ལྡན་སྙིང་ལ་རེག་པའི་ཚིག།
ཐོས་ནས་བློན་པོ་ཆེན་པོ་ཡིས། ས་ཡི་བདག་ལ་ལན་གསོལ་པ། 17

རྒྱལ་པོ་ཁྱོད་ཀྱི་ཚོགས་བཅད་ཉིད། མངོན་པར་གསར་པ་སྲིད་གསུམ་ན།
སྒྲོགས་ན་མཁས་པའི་དབང་ཕྱུག་དག། ལེགས་བཤད་གྲུས་པ་གཞན་གྱིས་ཅི། 18

अस्मिन् सदसि यत्किञ्चित् सूक्तरत्नं विचार्य्यते।
तत्परीक्षासमुत्तीर्णं सर्व्वत्रायात्यनर्घ्यताम्॥ १३॥

पाण्डित्येन विना विनाशितधियां व्यर्थं नृणां जीवितं
पाण्डित्यं शुकपाठषण्ढमसमोल्लासं कवित्वं विना[1]।
काव्यं चारुतरं विना सहृदयैस्तत्त्वान्तरालोचना-
शून्यं निर्जनकूपदीपकलनामन्तःसमालम्बते॥ १४॥

तस्मादस्मिन्नवसरे नूतनं किञ्चिदुच्यताम्।
चैत्रः पिकरुतस्येव सूक्तस्यावसरः सुहृत्॥ १५॥

चमत्कारो वाचां जयति जितजातीपरिमलः
क्षणं चेत् तत्त्वज्ञाः प्रगुणमवधानं विदधति।
उदग्रा सामग्री तदपि विफलैषा स्फुरितकृत्
न यावत् पाठेन स्वजन इव लब्धो ह्यवसरः॥ १६॥

इत्युक्तं नरनाथेन हृदयस्पर्शि धीमताम्।
वचः श्रुत्वा महामात्यः प्रत्यभाषत भूपतिम्॥ १७॥

राजन्नभिनवश्लोकस्तवैव भुवनत्रये।
गीयते विबुधाधीश किमन्यैः सूक्तविस्तरैः॥ १८॥

---

१ W/2 °संभ्रम°।

གུས་ལྡན་གཏོང་ཕོད་མཆོག་གྱུར་ཁྱོད། རིག་པ་དག་ལ་དགོས་པ་འདིར།
ས་ཡི་མཐིལ་འདི་ཐམས་ཅད་ནི། རིག་པ་འཛིན་པའི་གྲོང་ཁྱེར་གྱུར། 19

ཁྱོད་ནི་ཡོན་ཏན་ལྡན་པའི་གྲོགས། སྒྱུ་ཙལ་བརྡ་ལྡན་པས་མཛེས།
ཞར་ཆེ་སྐྱེ་བོ་མཐའ་དག་ནི། སྣང་བཅས་ལེགས་པའི་ལམ་ནས་འགྲོ། 20

གང་དང་གང་ལ་གྲོལ་པོ་རྗེས་སུ་ཆགས་པར་སྨད་ཅིག་ནི།
གུས་པའི་ཆ་ཞས་བྱས་པའི་སྒྱུ་ཙལ་དག་ནི་དེ་དེ་དང་།
རྩེ་དགའི་ཆས་ཀྱི་བྱེ་བྲག་དེ་དེ་ཡོན་ཏན་དེ་དེ་དང་།
སྐྱེ་བོ་སྤྱོད་ཚུལ་དེ་དེ་འཇིག་རྟེན་དགའ་བ་ཉིད་དུ་འགྱུར། 21

ས་སྐྱོང་མཁས་ན་རིག་པའི་རྩེ་དགའི་སྤྲོ་ལ་མཆོག་ཏུ་རེག་པར་གྱུར།
དཔའ་ན་གཡུལ་གྱི་རོལ་པ་དང་འགྲོགས་བརྟུལ་ཞུགས་བརྟུལ་ཞུགས་འཛིན་པར་
འགྱུར།

བློན་ན་སྨོངས་ཤིང་གཡོ་ན་ནོམ་པར་གཡོ་ལ་གདུག་ནམ་ཟུངས་སྤྱོད།
གང་གང་ས་བདག་བྱེད་པ་དེ་དེ་མཐའ་དག་སྐྱེ་བོ་བྱེད་པར་འགྱུར། 22

མི་རྟོག་འབྱུང་གནས་ལེགས་པ་ཡི། མི་རྟོག་གྲོས་བྱེད་ཉམས་དང་ལྡན།
ས་བདག་རང་ཉིད་མཁས་པ་ནི། སྐྱེ་གུའི་བསོད་ནམས་ཉིད་ཀྱིས་འབྱུང་། 23

སྐྱེ་བོ་ལེགས་བྱེད་བློ་ལྡན་བློན་པོ་དང་།
མི་བདག་མཁས་ཤིང་བདེན་པར་སྨྲ་བྱེད་པ།
འདི་དག་ནམས་ནི་དགེ་བ་དར་བའི་དུས།
མངོན་སུམ་དུ་མཚོན་མཚན་ཉིད་བཟང་པོ་ཡིན། 24

त्वयि विद्याविनोदेऽस्मिन् वदान्यवर सादरे।
विद्याधरपुरं सर्व्वं जातमेतन्महीतलम् ॥ १९ ॥

कलाकमलिनीकान्ते मित्रे गुणवतां त्वयि।
उदिते याति सालोकः सन्मार्गेणाखिलोजनः ॥ २० ॥

सा सा कला स स विलासविशेषलेश-
स्ते ते गुणाः स स जनश्चरितञ्च तत्तत्।
लोके प्रियत्वमधिरोहति यत्र यत्र
राजा करोति सरसः क्षणमादरांशम् ॥ २१ ॥

भूपाले विदुषि स्पृशत्यतिशयं विद्याविलासोत्सवं
शूरे सङ्गररङ्गसङ्गमरुचिर्गृह्णाति वीरव्रतम्।
मूढे मुह्यति चञ्चले विचलति क्रूरे नृशंसायते
यत् यत् भूमिपतिः करोति कुरुते तत्तत् समस्तो जनः ॥२२॥

सरसः साधुपुष्पाणां वसन्तः कुसुमाकरः[१]।
प्रजापुण्यैर्भवत्येव स्वयं विद्वान्महीपतिः ॥ २३ ॥

जनः सुवृत्तिर्मतिमानमात्यः
सत्याभिलाषी नृपतिर्मनीषी।
एतानि कालस्य शुभोदयस्य
प्रत्यक्षलक्ष्याणि सुलक्षणानि ॥ २४ ॥

---

१ W_1 and W_2 विकाशकुसुमाकरः।

གང་གིས་གནས་དང་གནས་སུ་དགོས་དོན་ཉིད་ལ་བློ་ལྡན་བློ་ནི་གར་བྱེད་ཅིང་།
གང་ཞིག་འགྲོར་ཚེ་ལེགས་ལྡན་བདག་ཉིད་རྣམས་ཀྱིས་ལེགས་བཤད་ནོ་བའི་
གྲོན་དུ་གྱུར།
གང་འདི་མི་བདག་བདག་ཉིད་ཆེ་གྲུས་གྲུ་ཡིས་དབྱུལ་བའི་དབྱངས་ཅན་དག་གི་
གཏེར།
འདི་ནི་རང་ཉིད་དམ་པའི་ཚིག་དག་ལ་རིག་པའི་ཁྲིམ་ཐབ་སྒྲོ་དགའ་ཡིན། 25

རྒྱལ་པོའི་བཀུར་བ་ཆེན་པོ་ཡིས། དམ་པའི་ཡོན་ཏན་མཛེས་པ་ནི།
ནགས་སུ་རྫོན་པ་རྣམས་ཀྱང་ནི། ནུས་པ་རྣམ་པར་བཀྲ་ལ་ཆགས། 26

རྫོན་པ་གདུག་པ་ཅན་ཞེས་པ། ནགས་ཀྱི་མཐའ་འཁོབ་དག་ན་གནས།
དེ་ལས་དོག་ཏུ་ལེགས་བཤད་ཀྱི། རིན་ཅེན་གསར་པ་གསར་པ་ཐོབ། 27

དྲིགས་ལྡན་གཉིས་འཐུང་དགྲ་གཏེར་ནི། བསྐུན་བྲལ་གླང་པོའི་སྒུ་དིག་གིས།
སྐྱན་ངག་མཁན་གྱི་དོན་མཐུན་ལས། དོག་ཏུ་དེ་ཡིས་ལེགས་བཤད་བླངས། 28

ཞེས་པ་བློན་པོའི་ཚིག་ཐོས་ས་བདག་གིས།
མདུན་ས་པ་བཀྲི་མདུན་ས་རབ་བཏང་ནས།
སྤྲས་པའི་གཟུགས་ཀྱིས་པོ་བྲང་འཁོར་སོང་དེ།
ཐུན་མོང་སྐྱེ་བོའི་རྗེས་སུ་མཐུན་པར་བྱས། 29

यन्नृत्यन्ति पदे पदे मतिमतां काव्यार्थतत्त्वे धियो
यत् कर्णाभरणीभवन्ति विभवे भव्यात्मनां सूक्तयः ।
यत् सारस्वत एष कीर्णमहिमा मुद्रादरिद्रोनिधि-
र्विद्यानां नृपतिः स्वयम्बरविधौ सोऽयं विवाहोत्सवः ॥२५॥

राजमानेन महता राजमाने गुणे सताम् ।
लुब्धकाः सूक्तिवैचित्र्ये लुब्धकाः काननेष्वपि ॥ २६ ॥

लुब्धकः क्रूरको नाम प्रत्यन्तेऽस्ति वनेचरः ।
सदा नवनवं[1] तस्मात् सूक्तरत्नमवाप्यते ॥ २७ ॥

दृप्यद्द्विपारिनखराघातभिन्नेभमौक्तिकैः ।
सततं कविसार्थेभ्यः स गृह्णाति सुभाषितम् ॥ २८ ॥

श्रुत्वेत्यमात्यस्य वचः क्षितीशः
सभां समुत्सृज्य विसृज्य सभ्यान् ।
अन्तःपुरं गुप्तमुपेत्य रूपं
चकार सामान्यजनानुरूपम् ॥ २९ ॥

---

१ W1 नवरतम् ।

སྐར་ཚོགས་ཁྲུས་པ་ལྷ་བུར་མཛོད་དགའ་ཞིང་།
ཕན་ཚུན་འོད་ཟེར་རབ་ཏུ་གསལ་བྱེད་པའི།
དོ་ཤལ་བཟུང་ནས་ལེགས་བཤད་དོན་གཅེར་དེ།
གྲིབ་མ་གཉིས་པ་དང་བཅས་ནགས་མཐར་སོང་།

དེ་ནི་ངེས་པར་དུད་པའི་ཤིང་རྣམས་ཀྱིས།
མི་དོག་སྐྱུང་གཞོན་གྱིས་བཀྲམ་མགྲོན་བྱས་བཞིན།
དེ་ཡིས་འབད་པས་བཙལ་བས་རྗོན་པ་ནི།
རྗོན་ལ་རབ་ཆགས་རི་ཡི་ངོས་སུ་སྐྱེད།

གླང་པོ་རྣམས་ཀྱིས་བདེ་བའི་མི་མཐུན་ཕྱོགས།
རི་དྭགས་རྣམས་ལ་ཕྱུག་སྐྱས་འདེབས་བྱེད་མཁས།
འཁྲུག་པོའི་རིམ་པ་བཞིན་དུ་མ་རུངས་གཞུ།
རང་སེམས་ལྷ་བུ་ལག་པ་གཡོན་པས་འཛིན།

རྟག་ཏུ་ནགས་ན་གནས་པའི་མི་མཐུན་ཕྱོགས།
གསོད་པ་གཅིག་པུ་ལ་མཁས་ལག་གཡས་ཀྱིས།
ལག་ལྡན་སྡེ་རྣམས་མཐའ་དག་བྱུང་གྲོལ་ལ།
རྣམ་པར་འགྲོད་པའི་མདའ་ནི་རབ་ཏུ་འཛིན།

	Rs.	
Pingala Chhandah Sútra, (Sans.) Fasc. II—III @ /6/ each	0	12
Prithiráj Rásau, (Sans.) Part I, Fasc. I, Part II, Fasc. I—V @ /6/ each	2	4
Ditto (English) Part II Fasc. I	0	12
Prákrita Lakshaṇam, (Sans.) Fasc. I	1	8
Parásara Smṛiti (Sans.) Vol. I, Fasc. 1—8, Vol. II, Fasc. 1—4, Vol. III, Fasc. I @ /6/ each	4	14
Paráśara, Institutes of (English)	0	12
Śrauta Sútra of Ápastamba, (Sans.) Fasc. I—XII @ /6/ each ..	4	8
Ditto Áśvaláyana, (Sans.) Fasc. I—XI @ /6/ each ..	4	2
Ditto Látyáyana (Sans.) Fasc. I—IX @ /6/ each ..	3	6
Ditto Śánkháyana (Sans.) Vol. I, Fasc. 1—7, Vol. II, Fasc. 1—2, @ /6/ each	3	6
Sáma Veda Saṃhitá, (Sans.) Vols. I, Fasc. 3—10; II, 1—6; III, 1—7; IV, 1—6; V, 1—8, @ /6/ each Fasc.	13	2
Saṃkhya Sútra Vritti (Sans.) Fasc. I—IV @ /6/ each	1	8
Sáhitya Darpana, (English) Fasc. I—IV @ /6/ each ..	1	8
Sánkhya Aphorisms of Kapila, (English) Fasc. I and II @ /6/ each ..	0	12
Sarva Darśana Sangraha, (Sans.) Fasc. II	0	6
Sankara Vijaya, (Sans.) Fasc. II and III @ /6/ each	0	12
Sánkhya Pravachana Bháshya, Fasc. III (English preface only) ..	0	6
S'ri Bháshyam, (Sans.) Fasc. I—II	0	12
Suśruta Saṃhitá, (Eng.) Fasc. I and II @ /12/ each ..	1	8
Taittiríya Áraṇya (Sans.) Fasc. I—XI @ /6/ each	4	2
Ditto Bráhmana (Sans.) Fasc. I—XXIV @ /6/ each	9	0
Ditto Saṃhitá, (Sans.) Fasc. II, IV—XXXV @ /6/ each ..	10	2
Ditto Prátiśákhya, (Sans.) Fasc. I—III @ /6/ each ..	1	2
Ditto and Aitareya Upanishads, (Sans.) Fasc. II and III @ /6/ each	0	12
Táṇḍyá Bráhmaṇa, (Sans.) Fasc. I—XIX @ /6/ each ..	7	2
Tattva Chintámaṇi, Vol. I, Fasc. 1—9; Vol. II, 1—6 (Sans.) @ /6/ each	5	10
Tul'sí Sat'saí, (Sans.) Fasc. I—III	1	2
Uttara Naishadha, (Sans.) Fasc. III, V—XII @ /6/ each	3	6
Uvásagadasáo, (Sans.) Fasc. I—VI @ /12/	4	8
Varáha Purána, (Sans.) Fasc. I—XIII @ /6/ each	4	14
Váyu Purána, (Sans.) Vol. I, Fasc. I—VI; Vol. II, Fasc. I—VII, @ /6/ each Fasc.	4	14
Vishṇu Smṛiti, (Sans.) Fasc. I—II @ /6/ each	0	12
Vivádaratnákara, (Sans.) Fasc. I—VII @ /6/ each ..	2	10
Vṛihannáradíya Puráṇa, (Sans.) Fasc. I—V @ /6/	1	14
Yoga Sútra of Patañjali, (Sans. & English) Fasc. I—V @ /14/ each ..	4	6

Tibetan Series.

Sher-Phyin Vol. I, Fasc. 1—5 Vol. II, Fasc. I @ 1/ each	6	0
Pag-Sam thi S'iñ, Fasc. I	1	0
Rtogs brjod dpag bsam ħkhri S'iñ (Tibetan & Sans.), Vol. I, Fasc. 1—3 @ 1/ Vol. II, Fasc. 1	4	0

Arabic and Persian Series.

'Álamgírnámah, with Index, (Text) Fasc. I—XIII @ /6/ each ..	4	14
Áin-i-Akbarí, (Text) Fasc. I—XXII @ 1/ each	22	0
Ditto (English) Vol. I (Fasc. I—VII)	12	4
Akbarnámah, with Index, (Text) Fasc. I—XXXVII @ 1/ each	37	0
Bádshahnámah with Index, (Text) Fasc. I—XIX @ /6/ each ..	7	2
Beale's Oriental Biographical Dictionary, pp. 291, 4to, thin paper ..	4	8
Catalogue of Persian books and MSS. in the library of A. S. B., Fasc. I	1	0
Dictionary of Arabic Technical Terms, and Appendix, Fasc. I—XXI @ 1/ each	21	0
Farhang-i-Rashídí (Text), Fasc. I—XIV @ 1/ each	14	0
Fihrist-i-Túsí, or, Túsy's list of Shy'ah Books, (Text) Fasc. I—IV @ /12/ each	3	0
Futúḥ-al-Shám Waqidí, (Text) Fasc. I—IX @ /6/ each	3	6
Ditto Azádí, (Text) Fasc. I—IV @ /6/ each	1	
Haft Asmán, History of the Persian Mansawí (Text) Fasc. I ..	0	12
History of the Caliphs, (English) Fasc. I—VI @ /12/ each ..	4	8
Iqbálnámah-i-Jahangírí, (Text) Fasc. I—III @ /6/ each ..	1	2
Iṣábah, with Supplement, (Text) 51 Fasc. @ /12/ each ..	38	4
Maásir-ul-Umará, Vol. I, Fasc. 1—9, Vol. II, 1—9 Vol. III, 1—6 @ /6/ each	9	0
Maghází of Wáqidí, (Text) Fasc. I—V @ /6/ each	1	14
Muntakhab-ul-Tawáríkh, (Text) Fasc. I—XV @ /6/ each ..	5	10

(*Turn over.*)

Muntakhab-ul-Tawáríkh (English) Vol. II, Fasc. I—V @ /12/ each Rs. 3 12
Muntakhab-ul-Lubáb, (Text) Fasc. I—XIX @ /6/ each 7 4
Mu'ásir-i-'Alamgírí (Text), Fasc. I—VI @ /6/ each 2 2
Nokhbat-ul-Fikr, (Text) Fasc. I 0 6
Nizámí's Khiradnámah-i-Iskandarí, (Text) Fasc. I and II @ /12/ each .. 1 8
Riyazu-s-Salátín, (Text) Fasc. I—IV @ /6/ each 1 8
Suyúty's Itqán, on the Exegetic Sciences of the Koran, with Supplement, (Text) Fasc. II—IV, VII—X @ 1/ each 7 0
Tabaqát-i-Náṣirí, (Text) Fasc. I—V @ /6/ each 1 14
Ditto (English) Fasc. I—XIV @ /12/ each .. 10 8
Táríkh-i-Fírúz Sháhí of Ziaa-al-dín Barní (Text) Fasc. I—VII @ /6/ each 2 10
Táríkh-i-Baihaqí, (Text) Fasc. I—IX @ /6/ each 3 6
Táríkh-i-Fírozsháhí, of Shams-i-Siráj Afíf, (Text) Fasc. I—V @ /6/ each 1 14
Wis o Rámín, (Text) Fasc. I—V @ /6/ each 1 14
Zafarnámah, Vol. I, Fasc. I—IX, Vol. II, Fasc. I—VIII @ /6/ each .. 6 6
Túzak-i-Jahángírí (English) Fasc. I 0 12

ASIATIC SOCIETY'S PUBLICATIONS.

1. Asiatic Researches. Vols. VII, IX to XI; Vols. XIII and XVII, and Vols. XIX and XX @ /10/ each .. Rs. 80 0
   Ditto Index to Vols. I—XVIII 5 0
2. Proceedings of the Asiatic Society from 1865 to 1869 (incl.) @ /4/ per No.; and from 1870 to date @ /6/ per No.
3. Journal of the Asiatic Society for 1843 (12), 1844 (12), 1845 (12), 1846 (5), 1847 (12), 1848 (12), 1850 (7), 1851 (7), 1857 (6), 1858 (5), 1861 (4), 1864 (5), 1865 (8), 1866 (7), 1867 (6), 1868 (6), 1869 (8), 1870 (8), 1871 (7), 1872 (8), 1873 (8), 1874 (8), 1875 (7), 1876 (7), 1877 (8), 1878 (8), 1879 (7), 1880 (8), 1881 (7), 1882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 1885 (6) 1886 (8), 1887 (7), @ 1/ per No. to Subscribers and @ 1/8 per No. to Non-Subscribers.
   N. B. The figures enclosed in brackets give the number of Nos. in each Volume.
4. Centenary Review of the Researches of the Society from 1784—1883 .. 3 0
   General Cunningham's Archæological Survey Report for 1863-64 (Extra No., J. A. S. B., 1864) 1 8
   Theobald's Catalogue of Reptiles in the Museum of the Asiatic Society (Extra No., J. A. S. B., 1868) 1 8
   Catalogue of Mammals and Birds of Burmah, by E. Blyth (Extra No., J. A. S. B., 1875) 3 0
   Sketch of the Turki Language as spoken in Eastern Turkestan, Part II, Vocabulary, by R. B. Shaw (Extra No., J. A. S. B., 1878) .. 3 0
   Introduction to the Maithili Language of North Bihar, by G. A. Grierson, Part II, Chrestomathy and Vocabulary (Extra No., J. A. S. B., 1882).. 3 0
5. Anis-ul-Musharrahín 3 0
6. Catalogue of Fossil Vertebrata 2 0
7. Catalogue of the Library of the Asiatic Society, Bengal 3 8
8. Examination and Analysis of the Mackenzie Manuscripts by the Rev. W. Taylor 2 0
9. Han Koong Tsew, or the Sorrows of Han, by J. Francis Davis .. 1 8
10. Iṣábah-us-Ṣúfiyah, edited by Dr. A. Sprenger, 8vo. 1 8
11. [illegible], a Commentary on the Hidayah, Vols. II and IV, @ 16/ each .. 32 0
12. Jawámi-ul-'ilm ir-riyází, 168 pages with 17 plates, 4to. Part I .. 2 0
13. Khizanat-ul-'ilm 4 0
14. Mahábhárata, Vols. III and IV, @ 20/ each 40 0
15. Moore and Hewitson's Descriptions of New Indian Lepidoptera, Parts I—III, with 8 coloured Plates, 4to. @ 6/ each 18 0
16. Purána Sangraha, I (Markandeya Purana), Sanskrit 1 0
17. Sharaya-ool-Islam 4 0
18. Tibetan Dictionary by Csoma de Körös 10 0
19. Ditto Grammar 8 0
20. Vuttodaya, edited by Lt.-Col. G. E. Fryer 2 0

Notices of Sanskrit Manuscripts, Fasc. I—XXIV @ 1/ each .. 24 0
Nepalese Buddhist Sanskrit Literature, by Dr. R. L. Mitra 5 0

N. B. All Cheques, Money Orders &c. must be made payable to the "Treasurer Asiatic Society" only.

BIBLIOTHECA INDICA;

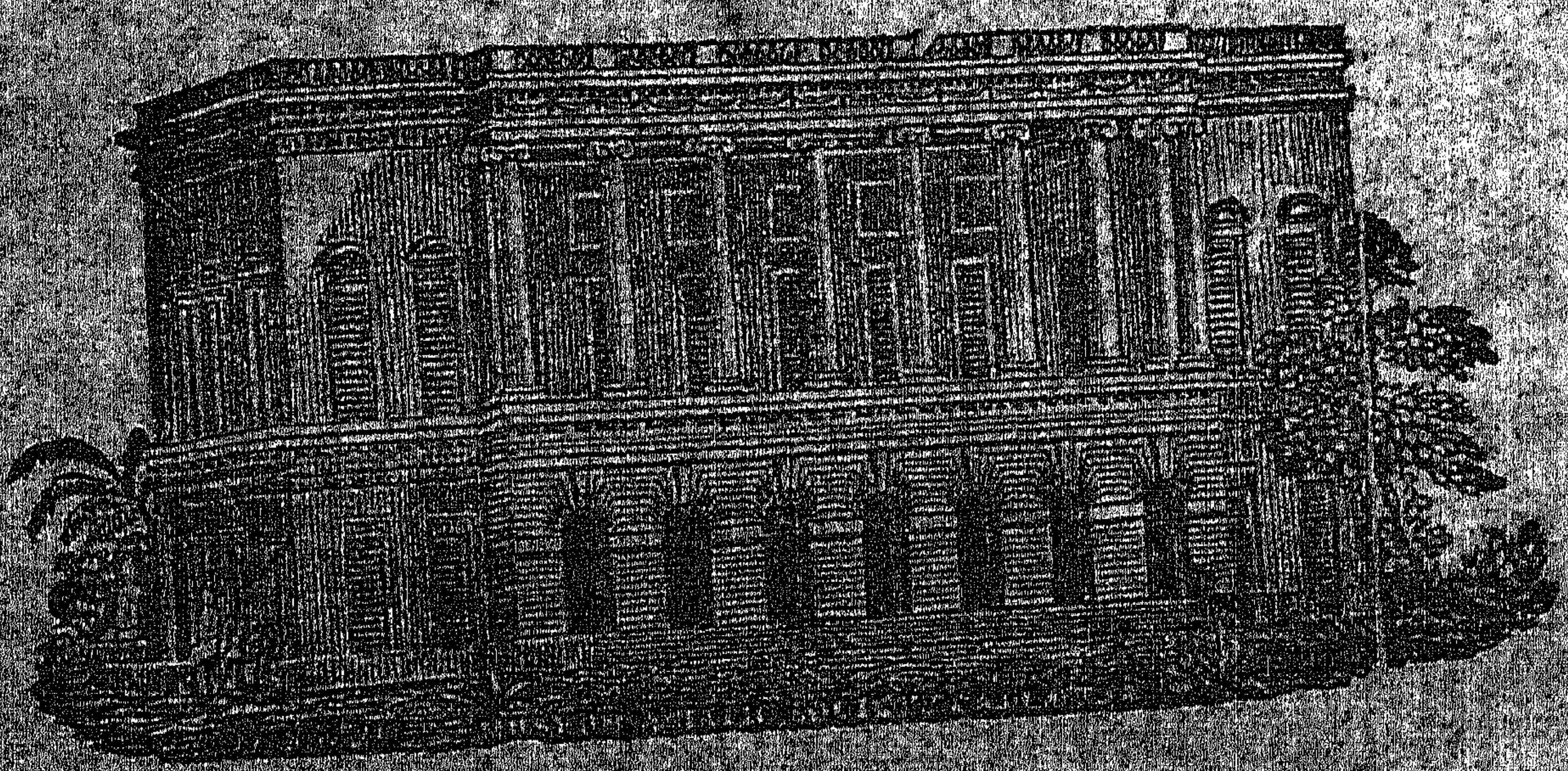
A

COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

NEW SERIES No. 826.



AVADÁNA KALPALATÁ

WITH ITS TIBETAN VERSION

NOW FIRST EDITED

BY

SARAT CHANDRA DAS, C. I. E.,

ASSOCIATE MEMBER, AS. SOC., BENG.

AND

PANDIT HARI MOHAN VIDYÁBHÚSHANA,

ORIENTAL LIBRARIAN, AS. SOC., BENG.

VOL. II, FASC. II.

CALCUTTA:

PRINTED AT THE BAPTIST MISSION PRESS,

AND PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY, 57, PARK STREET.

1893.

LIST OF BOOKS FOR SALE

AT THE LIBRARY OF THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL,

No. 57, PARK STREET, CALCUTTA.

AND OBTAINABLE FROM

THE SOCIETY'S AGENTS, MESSRS. KEGAN PAUL, TRENCH, TRÜBNER & CO., LD.

PATERNOSTER HOUSE, CHARING CROSS ROAD, LONDON, W. C. AND
MR. OTTO HARRASSOWITZ, BOOKSELLER, LEIPZIG, GERMANY.

*Complete copies of those works marked with an asterisk * cannot be supplied—some of the Fasciculi being out of stock.*

BIBLIOTHECA INDICA.

Sanskrit Series.

		Rs.	
Advaita Brahma Siddhi, (Text) Fasc. I—IV @ /6/ each	...	Rs. 1	8
*Agni Purána, (Text) Fasc. II—XIV @ /6/ each	...	4	14
Aitareya Áranyaka of the Rig Veda, (Text) Fasc. I—V @ /6/ each	...	1	14
Anu Bháshyam (Text) Fasc. I—II ...	...	0	12
Aphorisms of Sándilya, (English) Fasc. I	...	0	6
Ashtasáhasriká Prajnaparamitá, (Text) Fasc. I—VI @ /6/ each	...	2	4
Asvavaidyaka, (Text) Fasc. I—V @ /6/ each	...	1	14
Avadána Kalpalatá, (Sans. and Tibetan) Vol. I, Fasc. I-III; Vol. II, Fasc. I @ 1/	...	4	0
*Bhámatí, (Text) Fasc. II—VIII @ /6/ each	...	2	10
Brahma Sútra, (English) Fasc. I	...	0	12
Brihaddevata (Text) Fasc. I—IV @ /6/ each	...	1	8
*Brihaddharma Purána, (Text) Fasc. I—III @ /6/ each	...	1	2
Brihataranyaka Upanishad (English) Fasc. II—III @ /6/ each	...	0	12
Chaitandya-Chandrodaya Nátaka, (Text) Fasc. II—III @ /6/ each	...	0	12
Chaturvarga Chintamani (Text) Vols. I, Fasc. 3—11; II, 1—25; III. Part I, Fasc. 1—18. Part II, Fasc. 1—9 @ /6/ each	...	22	14
*Chhándogya Upanishad, (English) Fasc. II	...	0	6
Gopatha Brahmana, (Text) Fasc. I—II	...	0	12
*Hindu Astronomy, (English) Fasc. II—III @ /6/ each	...	0	12
Kála Mádhaba, (Text) Fasc. I—IV @ /6/ each	...	1	8
Katantra, (Text) Fasc. I—VI @ /12/ each	...	4	8
Katha Sarit Ságara, (English) Fasc. I—XIV @ /12/ each	...	10	8
Kúrma Purana, (Text) Fasc. I—IX @ /6/ each	...	3	6
*Lalita-Vistara, (Text) Fasc. III—VI @ /6/ each	...	1	8
Ditto (English) Fasc. I—III @ /12/ each	...	2	4
Madana Párijáta, (Text) Fasc. I—X @ /6/ each	...	3	12
Manutiká Sangraha, (Text) Fasc. I—III @ /6/ each	...	1	2
*Márkandeya Purána, (Text) Fasc. IV—VII @ /6/ each	...	1	8
Márkandeya Purána, (English) Fasc. I—III @ /12/ each	...	2	4
*Mímámsá Darsana, (Text) Fasc. III—XIX @ /6/ each	...	6	6
Nárada Smriti, (Text) Fasc. I—III @ /6/	...	1	2
Nyayavártika, (Text) Fasc. I	...	0	6
*Nirukta, (Text) Vol. I, Fasc. 4—6; Vol. II, Fasc. 1—6; Vol. III, Fasc. 1—6; Vol. IV, Fasc. 1—8 @ /6/ each	...	8	10
*Nítisára, or The Elements of Polity, By Kamandaki, (Sans.) Fasc. II—V @ /6/ each	...	1	8
Nyáyabindutiká, (Text)	...	0	10
Nyaya Kusumánjali Prakarana (Text) Vol. I, Fasc. 1—6; Vol. II, Fasc. 1—2 @ /6/ each	...	3	0
Parisishta Parvan, (Text) Fasc. I—V @ /6/ each	...	1	14

परस्परांशुप्रतिबद्धतारं[1]
विस्फारतारानिकराभिरामम्।
हारं समादाय सुभाषितार्थी
छायाद्वितीयः स ययौ वनान्तम्॥ ३०॥

स तत्र बालानिलकीर्णपुष्पैः
वृक्षैः कृतातिथ्य इवावनम्रैः।
अन्विष्य यत्नान्मृगयाप्रसक्तं
गिरेस्तटे लुब्धकमाससाद॥ ३१॥

वामेन वामं करिणीसुखानां
वैधव्यदीक्षारसिकं मृगीणाम्।
चक्रक्रमं[2] क्रूरतरं करेण
चापं स्वचित्तोपममुद्वहन्तम्॥ ३२॥

वधैकदक्षेण च दक्षिणेन
वनौकसां नित्यमदक्षिणेन।
हस्तेन विन्यस्त-समस्त-हस्ति-
वर्गापवर्गं[3] विशिखं दधानम्॥ ३३॥

---

१ ०H भारम्। २ H वक्लाक्रमम्। W2 वक्रक्रमम्।
३ H वर्गापसर्गम्।

རྩེ་མོ་རླུང་གིས་དལ་གྱིས་བསྐྱོད་པ་ཡི།
རྨ་བྱའི་སྒྲོ་ཡི་སྤྱོད་གཡོགས་བསྒྲུབས་གྱུར་པ།
སྐྲག་པ་གཡོ་བ་རི་དྭགས་རྣམས་ཀྱི་མིག།
བདག་པོ་འཚོ་བ་བསྲུང་བར་གསོལ་འདེབས་བཞིན། 34

དེས་དེ་ཚིག་གིས་མངོན་མཆོད་མཆོད་བྱ་བཞིན།
སྐྱེ་རྒུའི་བླ་མས་ཕྱག་འཚལ་བླ་མ་བཞིན།
མཆུ་མཛེས་དམར་བས་ཕྲེ་བ་སོ་ཡི་འོད།
ཡལ་འདབ་ལྷ་བུ་འཛིན་ཅིང་རབ་སྨྲས་པ། 35

ཁྱོད་ནི་རྟག་ཏུ་ལེགས་པའི་ལེགས་བཤད་རྣམས།
བསྔུ་ལ་རབ་ཏུ་འབད་པ་བདག་གིས་ཐོས།
སྐྱེ་བོའི་ལམ་བསྟན་སྣང་དུ་ལེགས་བཤད་ཀྱི།
རིན་ཆེན་སྒྲོན་མེ་གསར་པ་ཅུང་ཟད་སྩོལ། 36

རང་གཟུགས་རོལ་པས་ཟླ་བའི་དྲེགས་འཇོམས་ཞིང་།
དཔལ་གྱི་འཛེ་སྐྱིག་འཛུམ་པའི་རྩེ་དགའ་བསྐྱེད།
སྨན་པའི་ཚོགས་རྣམས་འཛོམས་པའི་རྡོ་ཤལ་འདི།
ཁྱོད་ཀྱི་དེ་ཡི་འདོད་པའི་རང་བཞིན་ཡིན། 37

मायूरपक्षैरनिलावहेला-
तरङ्गिताग्रैर्विहितोत्तरीयम् ।
नेत्रैर्मृगीणां पतिजीवरक्षां
सन्त्रासलोलैरिव याच्यमानम् ॥ ३४ ॥

स तं गिरा पूज्यमिवाभिपूज्य
गुरुः प्रजानां गुरुवत् प्रणम्य ।
उवाच शोणाधरकान्तिभिन्नां
दन्तद्युतिं पल्लवितां दधानः ॥ ३५ ॥

मया श्रुतः साधु सुभाषितानां
तवानिशं संग्रहणे प्रयत्नः ।
मार्गोपदेशाय जनस्य दीप्तं
प्रयच्छ किञ्चिन्नवसूक्तरत्नम्[1] ॥ ३६ ॥

अयञ्च ते तत्प्रतिपण्यरूपो
लावण्यलीलादलितेन्दुदर्पः ।
हारः प्रहारस्तिमिरोत्कराणां
लक्ष्मीविलासे स्मितकेलिकारः ॥ ३७ ॥

---

१ H नवरसूक्तम् ।

ཞེས་བརྗོད་དོ་ཤལ་འོད་ཀྱིས་ཕྱོགས་ཁེངས་པ།
ས་ཡི་འབྲེར་འཛིག་དག་གིས་དེ་ལ་བརྟེན།
སྐྱི་ལམ་རེ་བ་ཉམས་ལ་སྐྱེད་དཀའ་དེ།
ཇོན་པས་མཐོང་ནས་དལ་གྱིས་རབ་བསམས་པ། 38

སློག་ཅིང་བདག་ལ་སྦྱིན་བྱ་བྱིན་ནས་ཀྱང་།
ཕྱི་ནས་འདི་ནི་ངེས་པར་གཏུང་བར་འགྱུར།
འདི་ནི་འཛིག་རྟེན་ཕ་རོལ་སར་འདས་ནས།
དོ་ཤལ་ཇི་ལྟར་བདག་རང་ཉིད་དུ་འགྱུར། 39

སྐད་ཅིག་འདི་བསམས་དེ་ལ་དེས་སྨྲས་པ།
དགེ་བ་དམ་ཚིག་གིས་ནི་ལེགས་བཤད་སྦྱིན།
གལ་ཏེ་རི་འདིའི་རྩེ་ལ་རང་གི་ལུས།
ལེགས་བཤད་ཐོབ་པའི་འཕྲལ་ལ་མཆོང་ནའོ། 40

གདུག་པའི་སེམས་ལྡན་ཇོན་པའི་ཚིག་དེ་དག།
ཐོས་ནས་ས་ཡི་བདག་པོས་རབ་བསམས་པ།
ཀྱེ་མ་ངེས་པར་འདུ་བྱེད་ལྡན་པ་འདི།
དགག་པའི་བྱ་སྤྱོད་དག་ལ་མངོན་པར་སྦྱོར། 41

उक्केति हारं करपूरिताश्र-
मदर्शयद्भूमिपुरन्दरोऽस्मै ।
तं लुब्धकः स्वप्नमनोरथेषु
दुष्प्रापमालोक्य शनैः प्रदध्यौ ॥ ३८ ॥

दत्त्वाप्यधीमानिममप्रदेयं
पश्चादयं तापमुपैति नूनम् ।
अस्मिन्नतीते परलोकभूमिं
हारः कथं मे निजतामुपैति ॥ ३९ ॥

क्षणं विचिन्त्येति स तं बभाषे
ददामि साधो समयेन हृक्तम् ।
शृङ्गाद्गिरेरस्य यदि स्वदेहं
सम्प्राप्तहृक्तः क्षिपसि प्रसह्य ॥ ४० ॥

क्रौर्य्योचितं लुब्धकवाक्यमेतत्
अचिन्तयद्भूमिपतिर्निशम्य ।
अहो नु संस्कारवतोऽस्य कामं
निषिद्ध-कार्य्याचरणाभियोगः ॥ ४१ ॥

རིང་དུ་ཡོན་དན་བསྒྲུན་པར་གྲགས་གྱུར་ཅིང་།
མངོན་དུ་ངན་པའི་སྤྱོད་པ་མཚོན་གྱུར་པ།
བསམ་པ་གྲུ་གྲུ་རྣམས་ཀྱི་གྲགས་པ་གཞན།
དེ་བཞིན་སྤྱོད་ཚུལ་གཞན་དེ་མཚུངས་མ་ཡིན། 42

ངན་པ་འདི་ཅི་ནགས་མཐར་གནས་པ་ཅི།
སེམས་ཅན་འཚེ་ཅི་ཡོན་དན་མངོན་སྤྱོར་ཅི།
ལེགས་བཤད་བརྗོད་ཅི་བརྩེ་བ་མེད་ཉིད་ཅི།
ཀྱི་མ་འདི་ཡིས་སྤྱོད་ཚུལ་སྔོངས་པས་བཅོམ། 43

རྒྱུན་དུ་མདུན་ནས་སྙན་པའི་གླུ་ལེན་ཅིང་།
ནགས་ཀྱི་བརྟུལ་ཞུགས་རྣམས་ཀྱི་ཞི་བཞིན་མཛེས།
སྤྲེད་ལྡན་ཧོན་པའི་ཡོན་དན་བསྟུ་བ་ནི།
སྒྲོག་ནི་འཕྲོག་བྱེད་ཅི་ཞིག་བརྗོད་པའམ། 44

རིག་པའི་ཁྱད་པར་དག་ལ་འབད་བྱས་ཀྱང་།
མི་བསྒྲུན་ངེས་པར་བརྟང་པོའི་རང་བཞིན་ཉིད།
གདེངས་ཀའི་རིན་ཆེན་མཛེས་འཛིན་སྦྲུལ་རྣམས་ནི།
གདུག་པའི་སྨན་པ་ཁྲོ་བའི་རང་བཞིན་འཛིན། 45

दूरे गुणारोपण-विश्रुतानां
प्रत्यक्षसंलक्षितदुष्कृतानाम्।
भवत्यतुल्यः कुटिलाशयाना-
मन्यः प्रवादश्चरितं तथान्यत्॥ ४२॥

क्व क्षुद्रतैषा क्व वनान्तवासः
क्व सत्त्वहिंसा क्व गुणाभियोगः।
क्व सूक्तचर्चा क्व च निष्कृपत्व-
महो विमोहाहतमस्य वृत्तम्॥ ४३॥

गायत्यसक्तं मधुरं पुरस्तात्
वन्यव्रतैः शान्त इवावभाति।
लुब्धस्य लुब्धस्य किमुच्यते वा
प्राणापहारी गुणसंग्रहैर्यः॥ ४४॥

विद्याविशेषेऽपि कृतप्रयत्नः
खलो भवत्येव खरस्वभावः।
व्यालाः फणारत्नरुचिं दधानाः
क्रूरं तमः क्रोधमयं वहन्ति॥ ४५॥

བསྟན་བཅོས་མན་ངག་ཉམས་ཀྱིས་དག་བྱས་ཀྱང་།
ངེས་པར་བློ་ངན་རབ་དང་ཉིད་མི་འགྱུར།
ཀ་ཕྱིར་ཚོགས་ཀྱིས་ཡོངས་སུ་བགོས་གྱུར་ཀྱང་།
མི་བཟད་སྐྱོག་པ་རང་གི་དྲི་མི་གཏོང་། 46

ཡུན་རིང་འདི་སྤྱོད་ཡོན་ཏན་དོན་གཉེར་དེས།
གསར་པའི་ཉེར་བསྟན་ཅན་པར་མངོན་འདོད་ལས།
ཞིགས་བཤད་སྐྱོལ་ཅིག་ས་འཛིན་ངོས་རྩེ་ལས།
ཕྱི་ནས་ལུས་འདི་དོར་བར་བྱ་ཞེས་སྨྲས། 47

བདེན་པའི་ནོར་ལྡན་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས།
རོ་ཤལ་འོད་ཀྱིས་གཙུག་ལག་ཁང་སྣངས་ཏེ།
གཟུང་བར་མཛོད་ཅེས་བརྗོད་ནས་ཕྲ་མོར་ནི།
རིགས་པ་མིན་ལ་ཆགས་པས་བརྗོད་པར་བཙམས། 48

རང་བདེ་འམ་ལམ་གྱི་དོག་ཏུ་གདུང་བྱེད་སྡིག་དང་ཉོན་མོངས་རིག་མི་བྱ།
ཚུལ་ཁྲིམས་ཀྱིས་ཀྱང་དགེ་བའི་གནས་ཀྱི་བསོད་ནམས་ཚོགས་ལ་མཆོག་ཏུ་བསྟེན།
གཡོ་བའི་ཡུལ་གྱི་ཉམས་མྱོང་དགྲ་ལ་ལྷག་པར་ཆགས་པའི་སེམས་འདི་ནི།
ཆགས་དང་བྲལ་ཞིང་མངོན་འདོད་མཐའ་ལས་ཚིག་ཤེས་དག་གིས་ཆོམ་པར་བྱ། 49

शास्त्रोपदेशैः परिमृज्यमानः
प्रसन्नतां याति न नाम जाल्मः ।
कर्पूरपूरैः परिपूरितोऽपि
नोद्वात्यसह्यं लशुनः स्वगन्धम् ॥ ४६ ॥

चिरं विचार्य्येति स सद्गुणार्थी
नवोपदेशश्रवणाभिलाषात् ।
प्रयच्छ सूक्तं क्षितिभृत्तटाग्रात्
त्यक्ष्यामि पश्चात्तनुमित्युवाच ॥ ४७ ॥

श्रुत्वा वचः सत्यधनस्य तस्य
हारं समादाय रुचां विहारम् ।
प्रगृह्यतामित्यभिधाय सूक्तं
प्रचक्रमे वक्तुमयुक्तसक्तः ॥ ४८ ॥

पापं शापं[1] स्वसुखशरणे न स्पृशेत्तीव्रतापं
शीघ्रोत्तालं कुशलसदनं पुण्यपद्मं भजेत ।
चित्तं चैतच्चपलविषयास्वादसंवादलुब्धं
कुर्य्याद्वीतस्पृहमभिमतानन्तसन्तोषतृप्तम् ॥ ४९ ॥

१ W_2 सापम् ।

འདི་ནི་བདེ་ག་ཤེགས་བསྟན་པ་དག་དང་རབ་ཞི་རྒྱལ་སྲིད་སེང་གེའི་ཁྲི།
མི་ཉམས་དག་གི་གདུང་བ་སྐྱོང་བྱེད་དགེ་བའི་ཆོས་ནི་ཐུན་མོང་ཉིད།
ཡིད་བྱུང་ཉམས་པར་སེལ་བར་བྱེད་པའི་ཉམས་འགྱུར་དག་ནི་ཀུན་དུ་འཇོམས།
ཡིད་ཀྱི་མེ་ལོང་དག་བྱེད་ལེགས་བྱས་ཚོགས་ནི་ཉེ་བར་སྒྲུབས་པ་ཡིན། 50

ལེགས་བཤད་འདི་ནི་མི་བདག་དེ་ཉིད་རྗེས་སུ་འབྲང་བས་རི་དྭགས་དགྲ་ལས་ཧྟེད།
ལེགས་དོན་དྲི་མེད་བདག་ཉིད་དག་བྱེད་དེ་ཡང་སྙིང་ལ་ཉམས་བཀོད་ནས།
ཤིན་དུ་མཐོ་བའི་རི་ཡི་རྩེ་མོར་འཛེགས་ནས་ལུས་ནི་རབ་དུ་བདང་བར་གྱུར།
བསོད་ནམས་ཡིད་ལྡན་ཉམས་ནི་ཤིན་དུ་བདེན་པ་འདོད་ཀྱི་གཡོ་བའི་ལུས་
འདི་མིན། 51

འགྲོ་ཉམས་ཡང་དག་བསྐལ་སྣང་སྨོན་ལམ་དག་ནི་ནང་ཉིད་དུ།
བཟུང་ནས་དེ་ནི་རི་ཡི་རྩེ་ལས་ཟི་སྲིད་ལྷུང་གྱུར་པ།
དེ་སྲིད་རི་ཡི་གནས་བསྟེན་ཉམས་པར་རྒྱལ་བ་ཞེས་བྱ་བའི།
གནོད་སྦྱིན་གྱིས་བསྐྱངས་ལུས་ནི་ས་ལ་རབ་དུ་ཕྱིན་པར་གྱུར། 52

དེ་ཡིས་བརྩོན་འགྲུས་ཨ་མཚན་དབང་གིས་བཞིན་དུ་འཇིག་རྟེན་གསུམ།
འདར་བར་གྱུར་ཅིང་བར་སྣང་ལས་ཀྱང་མེ་ཏོག་ཆར་བབས་ཆེ།
གནས་སྐབས་གསུམ་པའི་ཚོགས་ཀྱིས་སྤྱོད་ཚུལ་ཡང་དག་མཆོད་གྱུར་པའི།
རྒྱལ་པོ་དཔལ་གྱིས་རང་གི་རྒྱལ་པོའི་ས་བྲང་དག་དུ་སོང་། 53

इदं सुगतशासनं प्रशमराज्यसिंहासनं
नृणां व्यसनवारणं कुशलधामसाधारणम्।
मनोभवविसर्जनं भवविकारसन्तर्जनं
मनोमुकुरमार्जनं सुकृतसञ्चयोपार्जनम्॥ ५० ॥

संप्राप्येति सुभाषितं मृगरिपोस्तत्त्वानुसारी नृपः
सूक्तार्थं हृदये निधाय विमलं तं चात्मसंशोधनम्।
आरुह्याद्रिशिरः समुन्नततरं देहं समुत्सृष्टवा-
निष्टं सत्यमतीव पुण्यमनसां नेदं वपुश्चञ्चलम्॥ ५१ ॥

सन्तारणाय जगतां प्रणिधानमन्त-
र्धृत्वा स शैलशिखरान्निपपात यावत्।
तावत् गिरिस्थितिजुषा विजयाभिधेन
यक्षेण रक्षिततनुः क्षितिमाससाद॥ ५२ ॥

तद्वीर्यविस्मयवशादिव घूर्णमाने
लोकत्रये कुसुमवर्षिणि चान्तरीक्षे।
संपूज्यमानचरितस्त्रिदशव्रजेन
राजा जगाम शनकैर्निजराजधानीम्॥ ५३ ॥

དེ་ནས་དེ་ནི་ཕན་པར་རབ་ཞུགས་ས་ཡི་དབང་པོ་ཡིས།
ཉེ་བར་བསྟན་པའི་ཡུལ་ཅན་ལེགས་པར་བཤད་པ་དེ་ཡིས་ནི།
རྟག་ཏུ་སྐྱེ་བ་མ་ལུས་སྲིད་པ་ཐྲིལ་གྱིས་གནོན་བྱེད་པ།
ཆོས་ཀྱི་བདེ་བ་རྟག་ཏུ་དམ་པའི་ལམ་ལ་འགོད་པ་བསྐྱབས། 54

གནས་སྐབས་འདིར་ནི་ཚོང་འདུས་དག་གི་ལམ་དུ་ཇོན་པ་འདི།
དོ་ཤལ་བཅོང་བའི་བློ་ཡིས་ཡོངས་སུ་གྱུ་བར་བྱེད་པ་ན།
འདི་ནི་ཆོས་ཀུན་པ་ཞེས་མཚུངས་མེད་བབ་ཅོལ་འདར་ལྡན་པ།
ས་བདག་མདུན་སར་གྲོང་ཁྱེར་སྲུང་བའི་སྐྱེ་བོས་ཁྱེར་པར་གྱུར། 55

རིང་པོ་ཉིད་ནས་དོ་ཤལ་འོད་ཟེར་རབ་གསལ་ནོམ་འཕྲོ་ཆགས་གྱུར་པ།
སྲོག་ནི་འཇོམས་པའི་དམ་ཚིག་བསྐྱབས་པ་དེ་ནི་རྒྱལ་པོས་ཤེས་གྱུར་ནས།
འདི་ནི་བདག་གི་སློབ་དཔོན་ཞི་བའི་ཡོ་དན་གསལ་བའི་ལེགས་བཤད་སྟོན།
མཆོད་འོས་འདི་ཞེས་བདུད་བྱས་མཆོད་པ་བྱས་ནས་དེ་ནི་བཏང་བར་གྱུར། 56

དེ་ལྟར་མི་བདག་ལེགས་བཤད་ཅེས་བྱ་བདེན་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་སྙིང་སྟོབས་
ལྡན་པར་གྱུར།
དེ་ཉིད་དུས་ཀྱི་སྐབས་ཡང་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་གཏེར་ཐོབ་བདག་ཉིད་ང་ཡིན་ནོ།
རང་གི་སྤྱོད་ཚུལ་བཅོམ་ལྡན་གྱིས་བཤད་དེ་དག་ཐོས་ནས་ལྷ་རྣམས་བདག་པོ་ནི།
དགའ་བས་སྤྲིན་གྱི་ནགས་ཚལ་ནོམ་པར་གྱིས་པ་པདྨའི་འབྱུང་གནས་དཔལ་
བསྟེན་གྱུར། 57

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་
བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ལེགས་བཤད་འཚོལ་བའི་རྟོགས་པ་
བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་གསུམ་པའོ།།

तत्रोपदेशविषयेण सुभाषितेन
तेनानिशं जनमशेषमथ क्षितीशः।
चक्रे भवाभिभवशर्म्मणि धर्म्मनित्ये
सत्कर्म्मणि प्रणिहितं हितसम्प्रवृत्तः ॥ ५४ ॥

अत्रान्तरे विपणिवर्त्मनि लुब्धकोऽसौ
हारस्य विक्रयधिया परिवर्त्तमानः।
चौरोऽयमित्यसमसाहसकम्पमानः
क्ष्माभृत्सभां नगररक्षिजनेन नीतः ॥ ५५ ॥

दूरादेव स्फुटतरकरासक्तविस्फारहारं
प्राणापातैर्विहितसमयं तं परिज्ञाय राजा।
आचार्य्योऽयं मम शमगुणव्यक्तसूक्तोपदेष्टा
पूजार्होऽसाविति कृतनतिः मानयित्वात्यजत्तम् ॥ ५६ ॥

इत्यासीत्स सुभाषिताख्यनृपतिः सत्यव्रतः सत्यवान्
सम्यग्बोधिनिधानलब्धमहिमा कालेन सोऽहं पुनः।
श्रुत्वैतत्कथितं निजं भगवता वृत्तं सुराणां पति-
र्भेजे हर्षविबुद्धलोचनवनः पद्माकरस्य श्रियम् ॥ ५७ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां सुभाषितगवेष्यवदानं नाम त्रिपञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

Chapter LIV.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་རྩ་བཞི་པ།

སེམས་ཅན་སྨན་ཞེས་པའི་རྟོགས་བརྗོད།

༄༅ །རྒྱ་ཆེར་གྲགས་པ་བསྟེན་པའི་བསྔགས་འོས་རི་བོང་ཅན་ལྟར་མཛེས།
གཙུག་གི་ནོར་བུ་གཞན་གྱི་དོན་ལ་སྐྱོ་བ་མེད་པའི་དུང་།
གང་གི་སྒྲོག་ནི་སོང་བར་གྱུར་ཀྱང་ལེགས་པའི་སྒྲ་ཡིས་གནས།
བཀྲ་ཤིས་གཏེར་གྱིས་འཇིག་རྟེན་དག་གི་དགེ་བ་རྒྱས་པར་བྱེད། 1

མི་དོག་ཅན་མ་ཞེས་པ་ཡི། མཚན་གྱི་བདུལ་ནས་བཙོམ་ལྡན་འདས།
རི་དྭགས་འཁྲོག་བྱེད་བརྟུལ་ཞུགས་ནི*། དོགས་མེད་ལྡན་པའི་ཚལ་ན་བཞུགས། 2

དེར་ནི་རྗེས་སོང་བརྒྱ་ཕྲིན་གྱིས། སྔར་ཡང་འཇོམས་ལྡན་དག་ལ་དྲིས།
དེ་ཡི་མངོན་སྤྱོད་དྲན་གྱུར་ནས། འཇོམས་པའི་རྒྱུ་ནི་རབ་ཏུ་གསུངས། 3

ལོ་ནི་སྟོང་ཕྲག་བདུན་ཅུ་གཉིས། སྐྱེ་བོ་ཆེ་རིང་གྱུར་ཆེ་སྤྲོན།
གྲོང་ཁྱེར་དབང་ཆེན་ལྡན་ཞེས་པ། མཐོ་རིས་དགའ་བ་ཐུལ་པར་གྱུར། 4

དེར་ནི་ནོར་གྱི་ཁྲི་གྲོས་བདག དབང་ཆེན་པོ་ཞེས་བྱ་བ་བྱུང་།
གང་གི་གྲགས་པ་ག་བུར་གྱི། སྟོང་བུས་ཕྱོགས་ནི་སྨུན་བྲལ་བྱས། 5

---

* Here the translator has evidently mistaken the word বত (བརྟུལ་ཞུགས་) for ব্রাত (ཚོགས་རྣམས་) which means multitude or number.

चतुःपञ्चाशत्तमः पल्लवः ।

सत्त्वौषधावदानम् ।

श्लाघ्यः शशाङ्करुचिरः पृथुकीर्त्तिभाजां
शङ्खः शिखामणिरखिन्नपरोपकारः ।
यः साधुशब्दवसतिर्गतजीवितोऽपि
लोकस्य मङ्गलनिधिः कुशलं तनोति ॥ १ ॥

भगवान् पुष्पिलां नाम विनीय क्षणदाचरीम् ।
विजहार हरिव्रातनिःशङ्कहरिणे वने ॥ २ ॥

तत्रानुयायिना पृष्टः पुनः शक्रेण सस्मितः ।
स पूर्वचरितं स्मृत्वा स्मितकारणमभ्यधात् ॥ ३ ॥

द्वासप्ततिसहस्राब्ददीर्घायुषि जने पुरा ।
अभून्महेन्द्रवत्याख्या जितस्वर्गोत्सवा पुरी ॥ ४ ॥

महेन्द्रसेन इत्यासीत्तस्यां वसुमतीपतिः ।
यश्चक्रे कीर्त्तिकर्पूरवर्त्त्या वितिमिरा दिशः ॥ ५ ॥

གང་ཞིག་སྨན་པ་དམ་པ་བཞིན། དགྲ་ཡི་གྲགས་པའི་རིམ་བཅོམ་ཞིང་།
སྐབས་ངན་བསྐྱེན་པའི་ནད་གྲོགས་དེ། སྐྱེ་གུ་སྲིད་བྲལ་ནོལ་གནས་བསྐྲུབས། 6

བསོད་ནམས་ཚོགས་ནི་ནོམ་བཅས་ཉིད། གྱུར་པ་བཞིན་དུ་དེ་ཡི་བུ།
སེམས་ཅན་ཀུན་ལ་ཕན་བརྩོན་པ། སེམས་ཅན་སྨན་ཞེས་བྱ་བར་གྱུར། 7

དེ་ནི་བསྐལ་པ་བཟང་པོ་པའི། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔས་བཀྱེན།
སྙིང་རྗེ་དགའ་དང་བདང་སྙོམས་དང་། བྱམས་པ་ནམས་ཀྱི་གྲོགས་སུ་གྱུར། 8

གྲོང་དང་གྲོང་ཁྱེར་ནགས་མཐའ་དང་། ཕྱོགས་དང་གླིང་ནམས་ཐམས་ཅད་ནས།
ནད་པ་འོངས་ནམས་ཏག་ཏུ་ནི། དེ་ཡིས་རིག་པས་བསོས་པར་གྱུར། 9

སྐྱེ་བོའི་ནགས་འདིར་དམ་པ་དེ། ཙན་དན་བཞིན་དུ་ཅི་ཡང་སྤྱོད།
གང་གི་ལུས་ཀྱི་གཞན་ཕན་འདི། མི་ཆུང་རབ་ཏུ་གྲུས་པར་བྱེད། 10

ཆེན་པོའི་ནད་ཀྱིས་གདུངས་པ་ནམས། དེ་ཡིས་འཕྲལ་ལ་བདེ་བར་བསྐྲུབས།
ངན་པའི་ཉོན་མོངས་གདུང་བ་ནམས། དམ་པ་དག་དང་འགྲོགས་པས་བཞིན། 11

ནོན་གཅེར་ནམས་ཀྱི་ལུས་ཀྱི་ནད། རིག་པ་དང་ནི་སེམས་ཀྱི་ཡང་།
ནོར་གྱི་ཕྲོགས་པས་ཕྱོགས་ནམས་སུ། ནད་པ་མེད་ཅིང་སློང་མེད་གྱུར། 12

དེ་ནས་དུས་ཀྱི་རྩེ་དགའ་ནི། ངོ་མཚར་ཐམས་ཅད་འཕྲོག་བྱེད་པས།
སྐྱེ་བོའི་བསོད་ནམས་ཡོངས་ཟད་ལས། དཔལ་ལྡན་དེ་ནི་མགོ་རིས་སོང་། 13

रिपुदर्पज्वरहरः कृच्छ्रहृद्दुर्दशाजुषाम् ।
व्यधात्तृष्णापहः स्वस्था यः सद्वैद्य इव प्रजाः ॥ ६ ॥

तस्याभूत् पुण्यसम्भार इव साकारतां गतः ।
पुत्रः सत्त्वौषधो नाम सर्व्वसत्त्वहितोद्यतः ॥ ७ ॥

स भाद्रकल्पिको बोधिसत्त्वः सत्त्वविभूषितः ।
करुणामुदितोपेक्षामैत्रीणां वल्लभोऽभवत् ॥ ८ ॥

पुरग्रामवनान्तेभ्यो दिग्द्वीपेभ्यश्च सर्व्वशः ।
रोगिणोऽभ्येत्य सततं तत्स्पर्शात् स्वास्थ्यमाययुः ॥ ९ ॥

स कोऽप्यस्मिन् जनवने सुजनश्चन्दनायते ।
परोपकारमतनुं तनुर्यस्य तनोत्यलम् ॥ १० ॥

स दीर्घव्याधिदग्धानां विदधे सहसा सुखम् ।
दुर्जनायासतप्तानामिव साधुसमागमः ॥ ११ ॥

रोगे स्पर्शेन शारीरे मानसे द्रविणेन च ।
हृते तेनार्थिनां दिक्षु नार्त्तोऽभून्न च याचकः ॥ १२ ॥

ततः कालविलासेन सर्व्वाश्चर्य्यापहारिणा ।
स ययौ निधनं श्रीमान् जनपुण्यपरिक्षयात् ॥ १३ ॥

བདུད་རྩིའི་ཟེར་ནི་ཉིན་འགའ་མིག་རྣམས་དག་གི་མྱུང་བྱའི་བདག་ཉིད་འགྱུར།
ཡོན་ཏན་དྲི་བཟང་སྤྲོ་བའི་མེ་ཏོག་རྣམས་ནི་སྐད་ཅིག་གནས་པའི་ཚོགས།
དུས་མིན་དུས་ནི་འདོད་པས་མཆོག་ཏུ་དགའ་བ་ཤིན་ཏུ་གཙོད་ལ་མཁས།
ཅི་ཡང་འདི་ནི་སུ་ཡི་ཡིད་ལ་ཟུག་རྔུ་ལྟ་བུར་བསྒྲུབ་མ་ཡིན། 14

གང་ཞིག་ཡིད་འོང་བསོད་ནམས་ཡངས་པའི་ཟློང་གིས་རྗེད་གྱུར་པ།
གདུང་བ་ཀུན་གྱི་སྨན་དང་འབད་མེད་བདེ་བ་སྐད་ཅིག་གིས།
ངེས་པར་དུས་ཀྱི་ཆ་ཡིས་འཛོམས་པ་དེ་དེ་མཐོང་གྱུར་ནས།
བླུན་པོ་རྣམས་ནི་དབེན་པའི་ཆ་ལ་ནམ་ཡང་མི་རིག་གོ། 15

དེ་ནས་དེ་གྲགས་ལྷག་མའི་ཚེ། དང་པོ་དེ་བྲལ་ལས་སྐྱེས་པའི།
སྡུག་བསྔལ་བདུང་ནས་ནད་རང་བཞིན། སྐྱེ་བོ་རང་གི་སྡུག་བསྔལ་བསྟེན། 16

དེ་ནས་གཞོན་ནུ་དག་གི་ལུས། མཚན་ཉིད་ཤེས་པའི་སྨོན་པོ་ཡིས།
ནགས་ཀྱི་མཐའ་རྩ་རབ་བསྒྲུངས་ཏེ། སྐྱེ་བོ་རྣམས་ལ་ཕན་སླད་བཀོད། 17

མེ་ཏོག་འཁྲི་ཤིང་གིས་སྐྱིས་པ། རྫིང་བུ་དགའ་བའི་གནས་དེར་ནི།
བསོད་ནམས་བཞིན་དུ་དེ་ཡི་ལུས། སྙིང་པ་མེད་པ་ཉིད་དུ་གནས། 18

རི་བས་ཕྱོགས་མཐའ་ལས་འོང་བ། ནད་པའི་ཚོགས་ཀུན་སྨྲ་ཡང་ནི།
དེ་ཡིས་ཡང་དག་རིག་ཙམ་གྱིས། འཕྲལ་ལ་བསོས་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 19

सुधांशुर्नेत्राणां कतिपयदिनास्वाद्यमहिमा
क्षणस्थायी वर्गः सुरभिगुणसर्गः सुमनसाम्।
अकाले कालेच्छा[1] प्रियतरसमुच्छेदचतुरा
विधत्ते कस्यैषा किमपि न मनःशल्यकलनाम्॥ १४॥

यत्पेशलं विपुलपुण्यपरैर[2]वाप्तं
सर्व्वार्त्तिभेषजमयत्नसुखं क्षणेन।
तत्तद्विलोक्य किल कालवलावलीढं
मूढाः स्पृशन्ति न विवेकलवं कदाचित्॥ १५॥

अथ तस्मिन् यशःशेषे त्यक्ता तद्विरहोद्भवम्।
दुःखं स्वदुःखमेवादौ भेजे रोगभयाज्जनः॥ १६॥

लक्षणाढ्यैः कुमारस्य शरीरं मन्त्रिभिस्ततः।
न्यस्तं हिताय लोकानां वनोपान्ते सुरक्षितम्॥ १७॥

तस्मिन् पुष्करिणीरम्ये देशे फुल्ललताकुले।
अपर्युषितमेवासीत्तस्य पुण्योपमं वपुः॥ १८॥

आशागता दिगन्तेभ्यः सर्व्वरोगिगणाः पुनः।
तस्य संस्पर्शमात्रेण सहसा स्वस्थतां[3] ययुः॥ १९॥

---

१ H कृतान्तेच्छा। २ H ॰पुण्यपरै॰। ३ H सुस्थताम्।

དེ་ཡིས་རིག་པའི་རླུང་གི་ནོར་བསྐྱོད་པདྨ་འི་ཚོགས་ནམས་དང་།
རྩ་ལ་རྒྱུ་བས་བསྒྱུར་པས་མཚོ་སྐྱེས་ཅན་གྱི་རྩ་ལ་ནི།
ཁྲུས་བྱས་མཐའ་དག་ནད་ལས་ནོར་གྲོལ་སྐྱོན་དང་བྲལ་གྱུར་ཅིང་།
འཕྲུལ་ལ་ཉིད་དུ་མི་ནམས་བདུད་རྩི་འཕུངས་བཞིན་རབ་ཏུ་མཛེས། 20

གང་གི་མིང་ནི་བསྒྲགས་ཉིད་ཀྱིས། ནད་ནམས་ཟད་པ་ཉིད་འགྱུར་བ།
གང་ཞིག་གཞོན་ནུ་སེམས་ཅན་སྨན། དེར་ནི་ང་ཉིད་དེ་ཚེ་གྱུར། 21

དྲན་པའི་བདུད་རྩི་དག་གི་གཏམ། འདི་དག་སུ་ཞིག་དྲན་ན་ཡང་།
དེ་ཡི་ནད་གདུང་རང་བཞིན་གྱི། སྡུག་བསྔལ་ཉེ་བར་ཞི་བར་འགྱུར། 22

དུས་ཀྱི་ཡུལ་འདིར་མི་ཡི་བདག། གང་ཞིག་འཛིག་རྟེན་ལ་ཕན་སྨད།
མཆོད་རྟེན་རབ་གནས་བྱེད་འགྱུར་བའི། ཀྱང་ངན་མེད་ཅེས་བྱ་བ་འབྱུང་། 23

འཆི་མེད་གྲོལ་པོའི་སློབ་གཅིག་གིས།
བདེ་གཤེགས་ཀྱིས་བཤད་འདི་ཐོས་ནས།
དགའ་བའི་རོལ་པ་ནོར་གྱིས་པའི།
བཞིན་གྱི་འོད་ཀྱིས་ནམ་པར་མཛེས། 24

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་སེམས་ཅན་སྨན་ཞེས་བྱ་བའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་བཞི་པའོ།།

तत्स्पृष्टमारुतविघट्टितपद्मखण्ड-
हिण्डीरमण्डनजलासु सरोजिनीषु ।
स्नाता विमुक्तसकलामयनिर्व्यपायाः
पीतामृता इव बभुः सहसैव मर्त्याः ॥ २० ॥

सत्त्वौषधकुमारो यः सोऽहमेव तदाभवम्[१] ।
यस्य सङ्कीर्तनेनैव यास्यन्ति व्याधयः क्षयम् ॥ २१ ॥

स्मरिष्यति स्मृतिसुधां ममैतां यः कथामपि ।
आधिव्याधिमयं दुःखं तस्य शान्तिमुपेष्यति ॥ २२ ॥

अशोको नाम देशेऽस्मिन् कालेनोत्पत्स्यते नृपः ।
चैत्यं हिताय लोकस्य यः प्रतिष्ठापयिष्यति ॥ २३ ॥

इति सुगतोदितमेकधिया
श्रुत्वैवामरराजः ।
हर्षविलासविकाशितया
वदनरुचा विरराज ॥ २४ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां सत्त्वौषधावदानं नाम चतुःपञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

---

१ W 1 °भवत् ।

CHAPTER LV.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙ་ལྔ་པ།

ཐམས་ཅད་སྐྱེར་བའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

༄༅། །ཡིད་བཞིན་ནོར་བུ་ངེས་པར་ནམ་བསམས་དངོས་པོ་སྐྱེར་བྱེད་ཅིང་།
དཔག་བསམ་ཤིང་ཡང་ཡོངས་སུ་བརྟགས་པ་ཁོ་ན་སྐྱིད་པར་བྱེད།
ལུས་ནི་རབ་སྨིན་ནས་ཚོག་དག་ལ་རང་ཉིད་བརྩོན་པ་གང་།
དེ་དག་བསྐྱོད་ལ་ཡང་དག་འོས་པའི་ཚོག་ནི་གང་ཞིག་ཡིན། 1

གྷཱ་ཊ་ཡ་བ་གྷཱ་ཊ་ཀ། སྨྲི་བྱེད་གསང་པ་པ་བདུལ་ནས།
སྐྲ་ཅན་ནགས་ལས་མ་སྣང་བར། སྟོན་པ་ནགས་ཚལ་གཞན་དུ་གཤེགས། 2

དེར་ནི་སྟོན་བྱུང་དྲན་གྱུར་ནས། བཞིན་འཛུམ་མཛད་ལ་འཛུམ་པའི་རྒྱུ།
བརྒྱ་བྱིན་གྱིས་ནི་གུས་པས་དྲིས། དེ་ཡིས་སྨྲར་ཡང་རབ་གསུངས་པ། 3

གྲོང་ཁྱེར་ཐམས་ཅད་ལྡན་པ་ཞེས། ནོར་བུའི་བ་གམ་ནམ་མཁའ་ལ།
རིག་པའི་འོད་ཟེར་གྲོད་པ་ཅན། ཕུན་ཚོགས་ཀུན་གྱི་གནས་སུ་གྱུར། 4

དེར་ནི་རྒྱལ་པོའི་ཟླ་བ་དག། ཟླ་མེད་འོད་ལྡན་ཀུན་སྐྱེར་བྱུང་།
གང་གི་གྲགས་པ་ཟླ་འོད་ཀྱིས། སྲིད་གསུམ་ཉིན་དང་མཚན་མོར་མཛེས། 5

पञ्चपञ्चाशत्तमः पल्लवः ।

सर्व्वन्ददावदानम् ।

चिन्तामणिः किल विचिन्तितवस्तुदाता
कल्पद्रुमश्च परिकल्पितमेव सूते ।
तस्य स्तुतौ समुचितानि पदानि कानि
देहप्रदानसमये स्वयमुद्यतो यः ॥ १ ॥

घाटोपघाटकौ शास्ता विनीयोन्मदगुल्मकौ ।
केशिनीकाननादन्यद्वनमन्तर्हितो ययौ ॥ २ ॥

प्राग्वृत्तस्मरणस्मेरवदनः स्मितकारणम् ।
स तत्र पृष्टः शक्रेण प्रणयात् पुनरब्रवीत् ॥ ३ ॥

अभूत् सर्व्वावती नाम वसतिः सर्व्वसम्पदाम् ।
नगरी गगनालग्नमणिहर्म्म्यांशुहासिनी ॥ ४ ॥

आसीत्सर्व्वन्ददस्तस्यां राजेन्दुरमलद्युतिः ।
यस्य त्रिभुवनज्योत्स्ना बभौ कीर्त्तिर्दिवानिशम् ॥ ५ ॥

མཛེས་ལྡན་ལེགས་བྱས་སྙིང་པོའི་གནས་སྐབས་དག་གི་ཁྱབ་པར་གྱིས།
འདུལ་བའི་ཡམ་དུ་གནས་པ་ཐོབ་ཅིང་གཟུགས་བཟང་ལྡན་གྱུར་པ།
གང་གི་ལེགས་སྨྲ་དུལ་བའི་རྒྱན་ལྡན་སྒྲོག་པའི་བདེ་ཉིད་དུ།
སྤྲིན་པ་གྱུར་ཉེ་གླང་པོའི་བདག་པོ་དག་གི་བཞིན་དུ་འོ། 6

ནམ་ཞིག་ས་ཡི་བགྲོ་བྱིན་དེ། སྐྱེ་གོའི་བྲ་བ་ལྟ་བྱེད་ཅིང་།
རྗེས་སུ་གཞུང་ལ་མངོན་ཕྱོགས་པས། ཕྱི་རོལ་ཁྲམས་གནས་ས་གཞི་བསྟེན། 7

དེར་ནི་མཐའ་ལས་རྒྱལ་ཕྲན་གྱི། མགོ་བོའི་རིན་ཆེན་ལ་སྣང་དེས།
ལུས་ནི་གྲགས་མེད་དག་གི་བཞིན། ས་ཡི་བྲ་བ་ཐོས་པར་གྱུར། 8

དེ་ཡི་ཀུང་སྟེགས་ཟླ་ཤེལ་གྱིས། རང་བཞིན་ལ་ནི་འབོས་གྱུར་ཅིང་།
མདུན་དུ་རབ་བདུད་སློང་བ་རྣམས། སྐར་ཡང་བསམ་པའི་གདུང་བ་བཏང་། 9

སྐབས་ཅར་ཐུག་རོན་རབ་སྐྲག་ཅིང་། འདབ་གཤོག་ཟད་པ་བཞིན་དུ་ནི།
འགྲོ་བ་མེད་པས་ས་བདག་གི། བྱིའི་པའི་ཚ་བ་རབ་ཏུ་བསྟེན། 10

རབ་སྐྲག་མིག་ནི་འཁྲུལ་བྱེད་ཅིང་། ཡན་ལག་ཀུན་ཏུ་འཁྲམས་པ་དེ།
མཐོང་ནས་ས་ཡི་བདག་པོ་ནི། འཕྲུལ་ལ་བརྩེ་བའི་དབང་དུ་གྱུར། 11

འདི་ཡི་འཇིགས་པ་གང་ལས་ཤེས། རབ་གྱིས་པད་མའི་འཕྲེང་ལྡན་གྱིས།
པདྨ་ཅན་ལྟར་འོད་གསལ་བའི། སྤྱན་གྱིས་ཕྱུར་དུ་ཕྱོགས་ནས་བལྟས། 12

शोभाजुषः सुकृतसारदशाविशेषै-
र्लब्धस्थितेर्विनयवर्त्मनि भद्रमूर्त्तेः।
यस्याययौ विजयमण्डनडिण्डिमत्वं
दानेन कुञ्जरपतेरिव साधुवादः ॥ ६ ॥

स कदाचित् प्रजाकार्य्यदर्शनानुग्रहोन्मुखः।
भेजे वाह्याङ्गनस्थानभुवं भूमिशतक्रतुः ॥ ७ ॥

स तत्रानन्तसामन्तमौलिरत्नेषु विम्बितः।
शुश्राव पृथिवीकार्य्यमसङ्ख्यैरिव विग्रहैः ॥ ८ ॥

चन्द्रकान्तमये तस्य संक्रान्ताः प्रणताः पुरः।
पादपीठे पुनश्चिन्तातापं तत्यजुरर्थिनः ॥ ९ ॥

अत्रान्तरे परिभ्रष्टः श्लिष्टपक्ष इवागतिः।
पारावतः क्षितिपतेरूरुमूलमशिश्रियत् ॥ १० ॥

तं कातरतरोद्भ्रान्तनेत्रं सङ्कोचिताङ्गकम्।
दृष्ट्वा दयाविधेयोऽभूत् सहसा पृथिवीपतिः ॥ ११ ॥

स समुत्फुल्लकमलालीलाकमलिनीत्विषा।
कुतोऽस्य भयमित्याशा दृशा क्षिप्रं व्यलोकयत् ॥ १२ ॥

སྐབས་དེར་སྨིན་པ་གསོད་བྱེད་ནི། སྨིང་སྦྱོབས་བདེག་པར་འདོད་པ་ཡི།
སྐྲུ་མས་ཇོན་པའི་ནོམ་པར་ནི། འོངས་ནས་མི་བདག་ལ་སྨྲས་པ། 13

ལྷ་གཅིག་ཡུན་རིང་ན་སྟེད་པའི། བདག་གི་བཟའ་བ་བྲེ་དེ་ཐོང་།
འདི་ནི་མ་བསླངས་མི་ཟློག་པའི། བདག་ཅག་ལྷན་སྐྱེས་འཚོ་བ་ཡིན། 14

འགྲོ་བའི་བདག་པོ་བདག་གི་ཟས། རང་བཞིན་གྱིས་ནི་གྲུབ་པ་འདི།
མེད་ན་འཚོ་བ་གཏོང་བར་འགྱུར། གང་ཕྱིར་ཟས་ནི་སྲོག་གི་གཟུངས། 15

དུས་འདིར་ཟས་ནི་ཆད་པ་ལས། བདག་གི་འཚོ་བ་བཏང་འགྱུར་ན།
བདག་གི་ཁྱིམ་ཐབ་བུ་དང་བཅས། རི་བ་ཆད་པས་ནམ་ཉམས་འགྱུར། 16

ཆོས་ལྡན་གང་གིས་གཅིག་ཉིད་ནི། བསྲུངས་པས་གང་དུ་མང་པོ་དག།
ཆོས་ལས་ཉམས་པར་འགྱུར་ན་བྱེ། དེ་ལ་ཆོས་ནི་ཅི་ཞིག་འདྲ། 17

ཕྱུག་རྟོན་ལ་ནི་བྱམས་པ་ཡིས། བདག་ལ་ཞེ་སྡང་བྱ་མི་འོས།
གང་ཕྱིར་ཁྱོད་ཉིད་ལྷ་བུ་ནི། སྐྱུ་ལྡན་ཆགས་པས་འཇུག་པ་མིན། 18

ཇི་ལྟར་འདི་ཉིད་དེ་བཞིན་བདག། ཁྱེད་ལ་དེད་གཉིས་བྱེ་བྲག་ཅི།
དམ་པ་འབྱུང་པོ་ཀུན་ལ་སྙོམས། གཅིག་ལ་བརྩེ་བ་བྱེད་པ་མིན། 19

དེས་འདི་སྨྲས་ཚེ་མི་བདག་གི། ལག་པ་གདུབ་བུའི་སྒྲ་ལྡན་པས།
འཇིགས་པར་མི་བྱ་ཞེས་སྨྲ་བཞིན། བྱ་ནི་ཕྱུག་གིས་རབ་བསྒྲིབས་ཏེ། 20

तस्मिन्नवसरे सत्त्वं जिज्ञासुः पाकशासनः ।
मायया लुब्धकाकारः समभ्येत्याब्रवीन्नृपम् ॥ १३ ॥

देव मुञ्च चिरावाप्तं भक्ष्यं मम विहङ्गमम् ।
इयं नः सहजा वृत्तिरनिवृत्तिरयाचिता ॥ १४ ॥

निसर्गसिद्धमेतन्मे भोजनं जगतीपते ।
त्यजतो जीवितं नास्ति प्राणा ह्यशनधारणाः ॥ १५ ॥

क्षणेऽस्मिन्नशनच्छेदान्मयि संत्यक्तजीविते ।
विनंक्ष्यति विलुप्ताशा सपुत्रा मे कुटुम्बिनी ॥ १६ ॥

एकसंरक्षणेनैव यः करोति बहुक्षयम् ।
स धर्म्मो यत्र धर्म्मात्मन्नधर्म्मस्तत्र कीदृशः ॥ १७ ॥

मयि पारावतप्रीत्या न द्वेषं कर्त्तुमर्हसि ।
न हि कारणरागेण प्रवर्त्तन्ते भवद्विधाः ॥ १८ ॥

यथैवायं तथैवाहं कोविशेषस्तवावयोः ।
सर्व्वभूतसमाः सन्तः कृपां नैकत्र कुर्व्वते ॥ १९ ॥

इत्युक्ते तेन नृपतिर्लीनं कङ्कणराविणा ।
न भेतव्यमितीवाह खगं प्रच्छाद्य पाणिना ॥ २० ॥

དེ་ནས་སེམས་ཅན་གཟིར་བ་ཀུན། ཡོངས་བསྐྱབ་དུས་ནི་བྲུས་པ་ཡི།
ཆར་སྤྲིན་འཛམ་པའི་སྒྲ་དབྱངས་ལྡིར། ཟབ་པའི་ཚིག་གིས་རབ་སྒྲུས་པ། 21

སྐད་ཅིག་ཆོས་པ་དོན་གཉེར་བས། མི་བཟད་སྡིག་ཆགས་གསོད་མ་བྱེད།
ལུས་ཅན་སྡིག་ལ་ཆགས་པ་ཡི། གདུང་བའི་ཉམ་འགྱུར་མཚུངས་པ་ཉིད། 22

གཞན་གྱི་སྡིག་ནི་སྤྲོགས་པ་ཡིས། གང་ཞིག་ཡོངས་སུ་འཚོ་བྱེད་པ།
དེ་ཡི་དགེ་ལེགས་ལྡོག་འགྱུར་དེ། གང་ཕྱིར་སྡིག་པའི་གདུང་བ་སྟེར། 23

དེ་ལྟ་ཉིད་དུ་མ་ཆད་པར། རང་འདོད་ཡང་དག་བཞེད་ཅིང་གུས།
བདག་གི་དོན་དུ་ཟས་གང་གང་། ཉེ་བར་བསྒྲུབས་པ་གླང་བར་མཛོད། 24

ཅེས་པ་གྲོལ་པོའི་ཚིག་ཐོས་ནས། ཡོངས་སུ་བཞིན་ལོག་ཤུགས་རིངས་ཅན།
ལོངས་སྤྱོད་མཆོག་ལ་ཡིད་བྱུང་བའི། རྗེན་པས་ལན་ནི་རབ་སྨྲས་པ། 25

བདག་ཅག་ནགས་ན་གནས་རྣམས་ཀྱིས། རྒྱལ་པོའི་ལོངས་སྤྱོད་རོ་མི་ཤེས།
འབྲུ་ཟས་ཉམས་སུ་མ་མྱོང་བའི། རི་དགས་ལ་དུས་དགའ་མ་ཡིན། 26

ཆོར་མའི་འཁྲི་ཤིང་འདབ་མེད་སྨྱུ་ངན་དག་ལ་ཡོངས་འཛིགས་མ་ཐོབ་ནས།
ནགས་ཚལ་ལྗོང་ཞིང་སྐྱུམ་པར་ངོ་མོ་སྨྱུ་ངན་དག་གིས་ཅི་ཡང་སྐམ།
རྩྭ་ད་རབ་སྨིན་དུག་བཞིན་བྱུ་རོག་གིས་ནི་ཟ་བར་མི་བྱེད་དེ།
རང་བཞིན་དག་གི་དབྱེ་བས་འོས་པ་འདིར་ནི་ཀུན་ལ་བདེ་བ་སྟེར། 27

स ततः स्निग्धजीमूतघोषगम्भीरया[1] गिरा।
उवाच सर्व्वसत्त्वार्त्तिपरित्राणकृतक्षणः॥ २१॥

मा कृथाः क्षणतृप्त्यर्थी विषमं प्राणिवैशसम्।
तुल्यव्यथाविकारोऽयं प्राणस्नेहः शरीरिणाम्॥ २२॥

परप्राणापहारेण या वृत्तिः परिकल्प्यते।
निवृत्तिः श्रेयसां सा हि पापतापं प्रयच्छति॥ २३॥

अधुनैवापरिच्छिन्ननिजेच्छासम्मतादरम्।
गृह्यतामशनं यद् यन्मदर्थमुपकल्पितम्॥ २४॥

श्रुत्वेति राजवचनं परिम्लानाननः श्वसन्।
वरोपभोगविमनाः प्रत्यभाषत लुब्धकः॥ २५॥

न वयं राजभोगानां रसज्ञा वनवासिनः।
न हि शष्पाशनाभ्यासा मोदन्ते मोदकैर्मृगाः॥ २६॥

अलब्ध्वा निष्पचां मरुपरिचितां कण्टकलतां
वने स्निग्धश्यामे किमपि करभः शुष्यति शुचा।
न काकः सत्पाकं कवलयति चूतं विषमिव
स्वभावानां भेदादुचितमिह सर्व्वस्य सुखदम्॥ २७॥

१ W 1 स्निग्धगम्भीरजीमूतघोषया।

རྒྱལ་པོ་འོས་ཟས་རིང་ཟློས་ནས། ཉང་པར་སྐྱར་ཡང་ཡང་བདག་ཅིང་།
གང་ཞིག་ཉིན་གཞན་རྙེད་དཀའ་མིན། དེ་དག་ཟློས་ན་བདེ་བ་སྐྱེད། 28

རྒྱ་ཆེ་རོ་ལྡན་ཁ་ཟས་ཡོངས་འདྲིས་རོ་དང་བྲལ་བ་ཟད་མི་བྱེད།
འཁོར་གྱི་རྩོམ་པ་མང་པོར་ལྷུང་ཉམས་གཅིག་པུ་ཉིད་དུ་གནས་མི་བྱེད།
ཞིང་དུ་ཞེན་པ་ཀིང་པས་འགྲོ་བའི་དུས་ན་ཤིན་ཏུ་སྒྲ་ངན་བྱེད།
དོན་ཐོབ་ཉམས་ན་མི་བཟད་ཉོན་མོངས་ཚུབ་མོར་ཤིན་ཏུ་གདུང་བར་བྱེད། 29

ལྷ་གཅིག་རྒྱལ་པོ་ལ་འོས་ཟས། ཁྱོད་ཀྱི་སྨྲུན་གྱིས་གཟིགས་ཉམས་ལ།
རྟག་དུ་རྙེད་དཀའ་མིན་མོད་ཀྱང་། སྐྱེ་བར་སྟོན་མེད་བདག་མི་དགའ། 30

ཛོན་པས་མཛོན་པར་བསད་པའི་ཤ། བདག་ཅག་ཉམས་ཀྱི་སྲོག་ལྟར་སྐྱོད།
རེས་ན་རང་ལུས་རབ་ཚོད་ལ། བྱ་ཡི་ཉིས་འགྱུར་སྦྱིན་པར་མཛོད། 31

མི་བདག་བསམ་པ་འཁྲུགས་པ་ཡིས། ཚིག་དེ་ཐོས་ནས་འཕྲལ་ལ་ནི།
དགའ་བས་སྤྲུན་གྱི་ཆུ་སྐྱེས་དག། རབ་ཏུ་རྒྱས་པས་དེ་ལ་སྨྲས། 32

བྱ་དང་ཁྱོད་ཀྱི་སྲོག་དག་ནི། བསྲུང་སྐྱད་མཚུངས་པའི་ཐེ་ཚོམ་ལ།
བློ་བཟང་ཁྱོད་ཀྱི་ཐབས་འདི་ནི། གསལ་བར་བདག་ལ་ཉེ་བར་བསྟན། 33

གཉིས་ཀའི་སྲོག་ལ་ཐེ་ཚོམ་གྱིས། ཁྲོགས་ལ་ཞེན་པས་འཁྲུགས་གྱུར་པ།
བདག་གི་ཡིད་ནི་གློགས་ཀྱིས་བཞིན། ཁྱོད་ཉིད་ཀྱིས་ནི་བརྟེན་པར་བྱས། 34

राजार्हभोगं भुक्त्वाद्य प्रातर्भोक्तास्मि किं पुनः ।
तद्भुक्तं सुखमाधत्ते यदन्येषुर्न दुर्लभम् ॥ २८ ॥

रसोदाराहारैर्न हि परिचितोऽश्नाति विरसं
न तिष्ठत्येकाकी बहुपरिजनारम्भपतितः ।
रथारूढः पद्भ्यां गमनसमये शोचतितरा
मवाप्तार्थभ्रंशः कषति[1] विषमक्लेशपरुषः ॥ २९ ॥

देव त्वद्दृष्टिदृष्टानां सततं नैव दुर्लभम् ।
राजार्हभोजनं किन्तु जन्मापूर्व्वं न मे प्रियम् ॥ ३० ॥

मृगयाभिहतं मांसमस्माकं जीवितायते ।
तत् स्वदेहसमुत्कृत्तं खगद्विगुणमर्प्यताम् ॥ ३१ ॥

चिन्ताविषण्णः श्रुत्वैतत् वचनं सहसा नृपः ।
प्रहर्षोत्फुल्लनयनाम्भोरुहस्तमभाषत ॥ ३२ ॥

खगस्य तव च प्राणरक्षायै तुल्यसंशये ।
ममोपदिष्टः स्पष्टोऽयमुपायः सुधिया त्वया ॥ ३३ ॥

उभयप्राणसन्देहदोलारोहणविह्वलम् ।
त्वयैव धृतिमानीतं वयस्येनेव मे मनः ॥ ३४ ॥

---

१ W1 कशति ।

ཁྱོད་ཀྱི་མིག་ཞགས་ཀྱིས་བཅིངས་པའི། བྱ་འདི་རབ་ཏུ་གདུང་བར་མཐོང་།
ད་ལྟ་ཉིད་དུ་བདག་གིས་ཤེས། རེ་ཞིག་སྒྲོག་གི་གཟུངས་ཐག་མཐོང་། 35

རྒྱལ་པོ་དམ་བཅས་བདེན་པ་ཡིས། སྙིང་རྗེ་ལས་ནི་འདི་བརྗོད་ཅོ།
དུག་ལྡན་མདའ་ཡིས་ཕུག་པ་བཞིན། བློན་པོ་རྣམས་ནི་རྨོངས་པར་གྱུར། 36

སྨིན་པའི་སྐབས་སུ་ཕན་མི་ཕན། གྲོགས་ཀྱིས་བདག་ལ་བརྗོད་མི་བྱ།
ཞེས་པ་དེ་ཡི་དམ་ཚིག་གིས། ལུས་ནི་གཏོང་བར་ངེས་པར་གྱུར། 37

དེ་ནས་མི་བདག་གིས་སྨྲས་པ། གང་ཞིག་བདག་གི་ལུས་ལ་ཤ།
བཅད་ནས་སྲང་ལ་འདེབས་བྱེད་པ། དེ་ལ་ནོར་ནི་རབ་ཏུ་སྦྱིན། 38

དེ་ནས་རྒྱལ་པོ་གསེར་གྱི་ཆར། འབེབས་པས་བོས་པའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས།
ངན་པའི་ལས་ཀྱི་བློ་རྨུས་ཕྱིན། ནོ་བ་བསྐྱིབས་ཤིང་སོང་བར་གྱུར། 39

གདུག་པའི་བློ་ཞེས་བྱ་བ་གཅིག། སེར་སྣའི་མིག་ནི་སེར་པོ་ཡིས།
གསེར་དག་བླངས་ནས་གདུག་པ་ཡི། ལས་ལ་ཆས་སུ་ཞུགས་པར་གྱུར། 40

གདུག་པ་ལས་ནི་སོག་ལེ་བཞིན། དྲང་པོ་གཅོད་ལ་མཁས་གྱུར་ཅིང་།
རང་བཞིན་གྱིས་ནི་འཁྱོག་པ་ཡི། གདུག་པའི་བདག་ཉིད་ཅི་མི་བྱེད། 41

त्वद्दृष्टिपाशबद्धोऽयं विहगः प्रविमुच्यताम् ।
मन्मांसैः क्रियतां तावत् सम्प्रति प्राणधारणम् ॥ ३५ ॥

राज्ञा सत्यप्रतिज्ञेन कारुण्यादित्युदीरिते ।
अमात्या मुमुहुर्विद्धा विषदिग्धैः शरैरिव ॥ ३६ ॥

न दानावसरे वाच्यं सचिवैर्मे हिताहितम् ।
इत्यभूत् समयस्तस्य शरीरत्यागनिश्चयः ॥ ३७ ॥

अथाब्रवीन्नरपतिस्तस्मै वित्तं प्रयच्छत ।
तुला[१]मारोपयति मे मांसमुत्कृत्य यस्तनोः ॥ ३८ ॥

हिरण्यवर्षिणा राज्ञा समाहूतास्ततो जनाः[२] ।
कुकर्म्मकूणितधियः पिधाय श्रवणौ ययुः ॥ ३९ ॥

एकस्तु दारुणमतिः नाम्ना कपिलपिङ्गलः ।
अभूत्क्रणकमादाय सन्नद्धः क्रूरकर्म्मणि ॥ ४० ॥

सरलच्छेददक्षाणां वक्राणाञ्च[३] निसर्गतः ।
क्रकचानामिव क्रौर्य्यात् किमकृत्यं दुरात्मनाम् ॥ ४१ ॥

17 A १ All the MSS. तुल्यम् । २ $\frac{W}{1}$ द्विजाः ।
३ All the MSS. चक्रणाञ्च ।

གང་གི་མཚོན་གྱིས་མི་ནུས་དེ་དག་ཀུལ་ཀའི་ཚིག་གིས་འཇོམས་པར་བྱེད།
གང་ཞིག་བཟློད་པར་མི་ནུས་ཅི་ཡང་དེ་དག་འཕྲུལ་ལ་སྒྲུབ་པར་བྱེད།
གང་ཞིག་བྱ་བར་མི་ནུས་དེ་དག་ཀྱང་ནི་ཡིད་ཀྱིས་སེམས་པར་བྱེད།
མ་བསྡམས་གླང་པོ་དག་གིས་སྤྱོད་པས་ངོ་མཚར་ཐམས་ཅད་གྱིས་པར་བྱེད། 42

དེ་ནས་དེ་ཡིས་ཕྲུག་རོན་ནི། སྤྲང་ལ་གཞལ་ནས་ས་བདག་གིས།
བྱིན་པ་གསལ་བའི་ཤ་དག་ནི། རབ་བཅད་དེ་དང་མཚུངས་པར་བཀོད། 43

དེ་ནས་ས་ཡི་བདག་པོ་ཡི། ཁྲག་ཐིགས་དང་པོ་རིག་པ་ཡི།
འཁྲུགས་པ་བཞིན་དུ་ས་གཞི་ནི། ཡུན་རིང་ནམ་པར་གཡོས་པར་གྱུར། 44

དེ་ནས་ཕྲུག་རོན་ལྡི་བ་དང་། ཤ་ནི་ཡང་བ་ཉིད་གྱུར་ཆེ།
ཤ་ནི་གཞན་དག་རབ་ཆོད་ལ། བྱིན་ཞིས་ས་ཡི་བདག་པོས་སྤྲས། 45

བརྒྱ་དང་དཔུང་པའི་ཤ་བཅད་ཀྱང་། བྱ་དང་མཚུངས་པ་ཉིད་མ་གྱུར།
འཇིག་རྟེན་གྱི་ནི་ཐ་ཆོམ་དང་། མཚུངས་པའི་སྲང་དེར་མི་བདག་བཞུགས། 46

མི་བདག་རྒྱ་གྲུས་ལྷག་མའི་ལུས། རང་ཉིད་སྲང་ལ་འཛེགས་པའི་ཚེ།
དེ་ཡི་གདོང་བ་བཟུང་དཀའ་བས། ཡིད་བྱུང་གྲགས་པ་ཕྱོགས་མཚམས་སོང་། 47

དེ་ཡི་དུས་ནས་ཡི་བདག་པོ་དག་གི་བརྟེན་པ་འདི།
ཉམས་པ་མེད་པས་ཡ་མཚན་གྱུར་པའི་ལྷ་ཡི་བུ་མོ་རྣམས།
གཙུག་ཕུད་འཕྲེང་བར་འོས་པའི་པདྨོས་ཡོངས་གང་ལག་པ་ཡིས།
དེ་ཡི་སྤྱོད་ཚུལ་དག་ལ་མཆོད་པའི་གུས་པ་ཅི་ཡང་བྱུང་། 48

न शस्त्रैः शक्यं यद्विदलयति तत् केलिवचसा
न शक्यं यद्वक्तुं किमपि कुरुते तच्च सहसा।
न शक्यं कर्त्तुं यत्तदपि कलयत्येव मनसा
खलः सर्व्वाश्चर्य्यं किरति चरितैरप्रतिहतः॥ ४२॥

स पारावतमारोप्य तुलामथ महीपतेः।
दक्षिणोरुसमुत्कृत्तं मांसं तत्तुल्यमादधे॥ ४३॥

प्रथमैरथ भूभर्त्तुः स्पृष्टा रुधिरविन्दुभिः।
विघूर्णमाना सुचिरं विह्वलेवाभवन्मही॥ ४४॥

पारावतेऽथ गुरुतां मांसे च लघुतां गते।
दीयतामन्यदुत्कृत्य मांसमित्याह भूपतिः॥ ४५॥

कृत्तोरुभुजमांसेऽपि न प्राप्ते खगतुल्यताम्।
त्रैलोक्यसंशयतुलामारुरोह तुलां नृपः॥ ४६॥

नृपतौ स्वयमारूढ़े स्नायुशेषतनौ तुलाम्।
तत्त्यागदुर्ग्रहोद्विग्ना ययौ कीर्त्तिर्दिगन्तरम्॥ ४७॥

तस्मिन् क्षणे क्षितिपतेरपरिक्षतेन
धैर्य्येण विस्मयमयस्त्रिदशाङ्गनानाम्।
धम्मिल्लमाल्यपरिपूरितपाणिपद्मः
पूजादरः किमपि तच्चरिते बभूव॥ ४८॥

ཉམ་འགྱུར་མེད་པར་ས་ཡི་བདག ། སྤང་ལ་འཛེམས་པ་མཐོང་གྱུར་ནས།
སྐྱེས་བུ་གདུག་པ་བྱེད་པ་པོ། སྒྲག་བཅས་དེ་ཡིས་དེ་ལ་དྲིས། 49

ལུས་ཀྱི་སྦྱིན་པ་འདི་ཡིས་ནི། ཁྱོད་ནི་ཅི་བཞིན་ཡོངས་མི་ཤེས།
གང་ཕྱིར་ལུས་ཅན་རྟེད་པ་ཀུན། ཡང་དག་རྫོམ་པ་ལུས་ཀྱི་དོན། 50

གལ་ཏེ་ལུས་ནི་གདང་ལ་སེམས། ཉམས་པ་མེད་དམ་བདེན་པར་སྨྲོས།
ཞེས་སྨྲས་དེ་ལ་རྒྱལ་པོ་ནི། བཞིན་འཛུམ་ལྡན་པས་རབ་སྨྲས་པ། 51

འཇིག་རྟེན་འདི་ན་ཐོབ་བྱ་ནི། བདག་ལ་ཅི་ཡང་མེད་མོད་ཀྱི།
འགྲོ་བ་ཀུན་ལ་ཕན་པའི་སླད། བླ་མེད་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་འདོད། 52

གལ་ཏེ་བདག་གི་སེམས་འདི་ནི། ཉམས་པ་མེད་ན་བདེན་པ་དེས།
ལུས་ནི་ཡོངས་སུ་མ་ཉམས་ཤིང་། རང་བཞིན་རྫོགས་པ་ཉིད་གྱུར་ཅིག 53

ཅེས་པ་བརྗོད་པ་ཙམ་ཉིད་ཀྱིས། ས་བདག་བདེན་པའི་ངང་ཚུལ་གྱིས།
ལུས་ཀྱི་མི་ནི་རབ་གསོས་ཏེ། མ་ཉམས་ལྷ་བ་ལྟར་མཛེས་གྱུར། 54

དེ་ནས་ཕྱུག་རོན་རྫོན་པ་དག ། སོང་ཞིང་ས་སྐྱོང་འོད་ལྡན་ནི།
ཤར་ཚེ་སྤྲོ་བ་ཆེན་པོ་དང་། རབ་གསལ་འཕྲོར་པ་ལྡན་པར་གྱུར། 55

निर्विकारं समालोक्य तुलारूढं महीपतिम्।
क्रूरकारी स पप्रच्छ पुरुषस्तं ससाध्वसः॥ ४९॥

अनेन देहदानेन न जाने किं तवेप्सितम्।
सर्व्वलाभसमारम्भाः शरीरार्था हि देहिनाम्॥ ५०॥

सत्यं ब्रूहि तनुत्यागे चित्तं यदि न खण्डितम्।
इति ब्रुवाणं तं राजा बभाषे सस्मिताननः॥ ५१॥

न प्राप्यमस्ति मे किञ्चिल्लोकेऽस्मिन् किन्त्वनुत्तराम्।
हिताय सर्व्वजगतां सम्यक्संबोधिमर्थये॥ ५२॥

अखण्डितमिदं चित्तं यदि सत्येन तेन मे।
अस्तु प्रकृतिमापन्नं शरीरमपरिक्षतम्॥ ५३॥

इत्युदीरितमात्रेण सत्यशीलस्य भूपतेः।
अक्षीवचन्द्ररुचिरं रूढव्रणमभूद्वपुः॥ ५४॥

ततः पारावते याते लुब्धके च महोत्सवः।
भूपालो भास्वदुदये प्रकाशविभवोऽभवत्॥ ५५॥

གང་ཞིག་ངེས་པར་ས་ཡི་བདག་པོ་ཐམས་ཅད་སྐྱེར་གྱུར་པ།
དེ་ཉིད་ང་ཡིན་སྐྱེས་བུ་སེར་སྐྱ་དེ་ཡང་ལྷས་བྱིན་ནོ།
དེ་ཡི་སྔོན་བྱུང་ཡང་དག་དྲན་ནས་བདག་གིས་འཇོམས་པ་སྨོས།
ཞེས་པ་སྟོན་པ་ལས་ཐོས་འཚོ་མེད་བདག་པོ་དགའ་བར་གྱུར། 56

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཐམས་ཅད་སྐྱེར་བའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྐྱེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་ལྔ་པའོ།།

सर्व्वन्दद‍ः क्षितिपतिः किल यो बभूव
सोऽहं पिशङ्गपुरुषः स च देवदत्तः।
तद्वृत्तसंस्मरणतः प्रस्तस्मितोऽहं
श्रुत्वेति शास्तुरमराधिपतिर्ननन्द ॥ ५६ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां सर्व्वन्ददावदानं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

CHAPTER LVI.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙོ་དྲུག་པ།

ཀླུ་བ་གླང་སྐྱོང་བདུལ་བའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

གང་དག་མཐོང་བས་ཞེ་སྡང་དུག་གི་ནི། ཚ་བ་རབ་ཏུ་ཞི་བ་ཉིད་གྱུར་ཅིང་།
བདུད་རྩིའི་རི་བསིལ་སྐྱེ་བོ་དམ་པ་ཡི། ཟླ་བ་དེ་དག་སུ་ཡི་ཕྱུག་འཚོས་མིན། 1

གནོད་སྦྱིན་ཁ་སྟོན་དག་གི་གནས། དེ་ལས་སྣང་བ་མིན་གྱུར་ཏེ།
གྲོང་ཁྱེར་ཧིང་གུ་མར་ད་ནར། སྐད་ཅིག་གིས་ནི་བཅོམ་ལྡན་བྱོན། 2

དེར་ནི་ས་བདག་ཚངས་བྱིན་གྱིས། དུལ་བ་ཡི་ནི་མཆོད་པ་བྱས།
དེ་ཡིས་ཡང་དག་རྗེས་མཐུན་པར། སྐལ་ལྡན་རྣམས་ལ་རྗེས་བསྟན་མཛད། 3

དེར་ནི་གྲོང་པ་རྣམས་འོངས་ཏེ། གོད་པ་ཀུན་དུ་ལུས་ཅན་རྣམས།
ནམ་པར་ལྷུང་ལ་སྐྱོབ་མཛད་པའི། བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་རབ་གསོལ་པ། 4

གྲོང་ཁྱེར་མཐའ་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས། རྫ་བ་ཡི་ནི་རི་ཞིག་ཡོད།
དེ་ན་ཀླུ་ནི་བ་གླང་སྐྱོང་། དྲག་པོ་བཟོད་པར་དཀའ་བ་གནས། 5

དེ་ནི་ཕྱུགས་དང་སྐྱེ་བོ་དང་། འབྲུ་རྣམས་ཀུན་གྱི་རྡོ་རྗེ་ཆེ།
ཕུན་སུམ་ཚོགས་རྣམས་དངོས་མེད་སྣད། ཅི་ཡིས་ནམ་སྤྲུལ་རིག་མ་གྱུར། 6

षट्पञ्चाशत्तमः पल्लवः ।

गोपालनागदमनावदानम् ।

सन्दर्शनेन येषां द्वेषविषोष्मा प्रशान्तिमुपयाति ।
अमृतरसशीतलास्ते कस्य न सुजनेन्दवो वन्द्याः ॥ १ ॥

धारामुखस्य यक्षस्य स्थानादन्तर्हितस्ततः ।
क्षणादवाप भगवान्नगरं हिङ्गुमर्द्दनम् ॥ २ ॥

विनयात् पूजितस्तत्र ब्रह्मदत्तेन भूभुजा ।
तत्संसदि क्षणं चक्रे धन्यानामनुशासनम् ॥ ३ ॥

तत्र पौराः समभ्येत्य भगवन्तं व्यजिज्ञपुः ।
सर्व्वापद्विनिपातेषु त्रातारं सर्व्वदेहिनाम् ॥ ४ ॥

भगवन्नस्ति नगरस्यान्ते पाषाणपर्व्वतः ।
तत्र गोपालको नागः क्रूरो वसति दुःसहः ॥ ५ ॥

स पशूनां जनानाञ्च शस्यानाञ्च महाशनिः ।
सम्पन्नानामभावाय न विघ्नः केन निर्म्मितः ॥ ६ ॥

མ་དུལ་འདུལ་མཛད་མ་ཞི་བ། ཞི་མཛད་ཁྲོད་ཀྱི་བརྩེ་བ་ནི།
ཉེ་བར་འཚེ་བ་འདི་དག་ལ། བདག་ཅག་སྐྱབས་འཚོལ་རྣམས་ཀྱི་སྐྱབས། 7

ཞེས་བརྗོད་དེ་དག་སོང་བའི་ཚེ། བཅོམ་ལྡན་སྙིང་རྗེའི་གཏེར་དག་ནི།
འདུས་པའི་དབུས་ལས་མི་སྣང་བར། རྡོ་བའི་ས་འཛིན་དག་ཏུ་གཤེགས། 8

དེ་ངོས་ཤིན་ཏུ་སྡུག་པོ་ན། འཇིགས་རུང་གདེངས་ཅན་ཁང་པ་ནི།
དུག་གི་དབུགས་རྣམས་དག་གིས་ཆུ། སྔོན་པོར་བྱས་བཞིན་དེ་ཡིས་མཐོང་། 9

རལ་གྲི་ཤུབས་མེད་གཡོ་བ་ཡི། མི་བཟད་པོ་རླབས་ཀྱིས་འཁྲུགས་ནགས།
དེ་ཡི་འགྲམ་དུ་བཅོམ་ལྡན་གྱིས། སྐྱིལ་ཀྲུང་བཅས་ཏེ་ཉེ་བར་བཞུགས། 10

མཆེས་ག་ཤིན་སྨྲུན་ནི་བདུད་རྩིའི་གཉེན། དང་བས་རབ་ཏུ་གཟིགས་པ་ཡིས།
དེ་ཡིས་སྐྱུར་བར་དུག་བཞིན་དུ། དུག་དང་བཅས་པ་དུག་མེད་ཐོབ། 11

སྐུ་ལུས་གསེར་འོད་མཐིང་ཁ་ཡི། ཆུ་ལ་སྣང་བས་དེ་རབ་མཛེས།
མ་ར་ཀ་ཏ་ལྟར་མཛེས་པའི། མཐའ་ལ་ཉི་མ་འགྲོ་བ་བཞིན། 12

དེ་ཡི་སྣང་བས་ནམ་བཅོམ་པས། ཀླུ་ཡི་ཁང་པར་རབ་རིབ་རྣམས།
འཁྲིས་པར་བྱེད་པ་གཡོ་བ་ཡི། སྦྲུལ་གྱི་ཚོགས་དང་མཚུངས་པར་གྱུར། 13

ཀླུ་ཡི་རྒྱལ་པོས་དེ་མཐོང་ནས། མིག་ནི་ཁྲག་ལྟར་དམར་བ་ཡིས།
འཕྲུལ་ལ་ནམ་མཁར་རབ་ཞུགས་ཏེ། གྲོང་ཁྱེར་སྤྲིན་གྱི་རང་བཞིན་བྱས། 14

अदान्तदमनस्यास्मिन्नशान्तशमनस्य ते ।
उपसर्गे कृपास्माकं शरणं शरणैषिणाम् ॥ ७ ॥

इत्युक्त्वा तेषु यातेषु भगवान् करुणानिधिः ।
अन्तर्हितः सभामध्याद्ययौ पाषाणभूधरम् ॥ ८ ॥

तटे विसङ्कटे तस्य भवनं भीमभोगिनः ।
स ददर्श विषश्वासैरिव श्यामीकृतोदकम् ॥ ९ ॥

वलन्निष्कोशनिस्त्रिंशविषमोर्मिवनाकुले ।
तत्तीरे भगवान् बुद्धः पर्य्यङ्कं समुपाविशत् ॥ १० ॥

प्रसन्नालोकनसुधाबन्धुना स्निग्धचक्षुषा ।
स निनायाशु सविषं विषं निर्विषतामिव ॥ ११ ॥

नीलाम्बुबिम्बिततनुः स बभौ कनकद्युतिः ।
रविर्मरकतच्छायं गाहमान इवाम्बरम् ॥ १२ ॥

तिमिरं नागभवने तत्प्रकाशविलुचितम् ।
पलायमानव्यालोलव्यालजालतुलां ययौ ॥ १३ ॥

नागराजस्तमालोक्य रुधिरारुणलोचनः ।
सहसाकाशमाविश्य चक्रे मेघमयं जगत् ॥ १४ ॥

རེ་ཡི་ཁྲོ་བའི་མེ་ཡིས་ནི། །དུ་བའི་ཚོགས་བཞིན་སྨུག་པོ་ལས།
རབ་འཐོན་སྨྲིག་གི་ལྡེ་རྣམས་ཀྱིས། །ཕྱོགས་རྣམས་སྨག་པ་བཞིན་དུ་འདར། 15

སྲིད་པའི་སྤྲིན་རྣམས་དག་གི་སྒྲ། །འཇིགས་པ་རྩོམ་པར་སྒྲོགས་བྱེད་པས།
ས་འཛིན་རྣམས་ཀྱི་སྙིང་བཞིན་དུ། །ཤུག་དང་ཁང་པ་ཞོམ་པར་གྱུར། 16

དེ་ནས་རྡོ་ཆེན་ཚོགས་དཀྲིགས་ཆར། །རི་འཕྲེང་མཐའ་དག་ཉོན་མོངས་ཤིང་།
བརྟན་པ་ལྷུང་བྱེད་ལྗོན་ཤིང་ནི། །ཕྱི་མར་བྱེད་པ་བབ་པར་གྱུར། 17

ལག་འགྲོ་གདུག་པས་རབ་སྤྲོས་པའི། །ཆར་དེ་སྐྱོབ་པས་གཟིགས་ཉིད་ན།
རླུང་བཞིན་གཡོ་བས་བསྐྱེད་པ་ཡིས། །མེ་ཏོག་ཆར་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 18

དེར་ནི་རབ་གསལ་དྲི་མེད་ནགས་ཚལ་ཉེ་བར་བསླད་པ་མེད།
སྤྲང་བ་སྐྲ་དཀྲུངས་ལེན་པའི་མེ་ཏོག་དང་ལྷན་མཐོང་གྱུར་ནས།
དགའ་བའི་འཛུམ་དཀྲིགས་ཏོ་ཤལ་ཁྲར་ལས་ངེས་པར་རྒྱལ་གྱུར་པའི།
ནགས་ཀྱི་ལྷ་ཡི་གདུག་པའི་གདེངས་ཅན་དབང་པོ་དེ་ལ་སྨྲས། 19

ཀྱེ་ལགས་དུས་ཀྱི་སྤྲིན་དག་ཉམ་འགྱུར་དག་ནི་ཡོངས་སུ་ཐོབ།
ཁྱོད་ལྟ་བུ་རྣམས་འཇིགས་པའི་རླུང་གིས་བཅོམ་པར་གྱུར་བ་ན།
གང་གི་ཀེད་སྐབས་ཐུག་གི་རོལ་པས་སྐྱབས་སུ་འགྲོ་བྱེད་པའི།
གསེར་གྱི་རི་བོ་འདི་ལ་ཅི་ཡང་གཡོ་བ་མེད་པ་ཉིད། 20

क्रोधाग्निधूमनिवहैरिव तस्य घनोद्गमैः ।
विद्युज्जिह्वैरकम्पन्त दिशः सन्त्रासिता इव ॥ १५ ॥

गर्ज्जितैर्मत्तमेघानां प्रलयारम्भशंसिभिः ।
गुहागेहान्यभज्यन्त हृदयानीव भूभृताम् ॥ १६ ॥

ततः पिष्टद्रुमा वृष्टिः क्लिष्टाद्रिशकलावली ।
पपात पातितधृतिः स्थूलोपलकुलाकुला ॥ १७ ॥

सा दुष्टभुजगोत्सृष्टा वृष्टिर्दृष्ट्यैव तायिनः ।
ययौ बालानिलोल्लासल्लसत्कुसुमवर्षताम् ॥ १८ ॥

दृष्ट्वा प्रकाशविशदान्यनुपप्लवानि
भृङ्गोपगीतकुसुमानि वनानि तत्र ।
हर्षस्मितप्रसरनिर्जिततारहाराः
क्रूरं फणीन्द्रमवदन् वनदेवतास्तम् ॥ १९ ॥

भोः कालमेघ विकृतिं परिमुञ्च किञ्च
निष्कम्प एव कनकाचल एष यस्य ।
युष्मद्विधाः प्रलयमारुतभज्यमाना
लीलानितम्बकुहरं शरणं प्रयान्ति ॥ २० ॥

དེ་ནས་འཕྲུལ་ལ་ཕྱུགས་པས་ནི། ཡོངས་སུ་ཟད་ཅིང་རྣམ་འགྱུར་བདང་།
ཐལ་མོ་སྦྱར་ནས་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ། སྐུ་ཡིས་སྟོན་པ་ལ་ཕྱག་འཚལ། 21

བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་སྙིང་རྗེའི་གཏེར། བསྐལ་པའི་གནས་དག་རབ་ཕྱིན་པས།
སྐྱབས་སུ་སོང་བར་གྱུར་བ་དེ། དགེ་བ་མཆོག་ལ་རྗེས་བཟུང་མཛད། 22

ཞབས་ལ་མགོ་ཡིས་གཏུགས་པ་དེ། གུས་པ་ཡིས་ནི་གསོལ་བཏབ་པ།
བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བས་རྟག་ཏུ་ནི། དེ་ལ་ཡང་དག་ཉེ་བར་མཛད། 23

གནས་སྐབས་དེར་ནི་དེ་ཉིད་དུ། གནོད་སྦྱིན་ལག་ན་རྡོ་རྗེ་དག།
ཞར་ལ་འོངས་པ་ཞི་བའི་སྐད། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རྗེས་བཟུང་མཛད། 24

དེ་ནས་འཇིག་རྟེན་གདུང་བ་མི་བཟད་ནམ་གློག་སྟོན་པ་ནི།
རྣམ་གྱིས་བསྟོད་པའི་ཚིག་གིས་སྐབས་གསུམ་པ་ཡིས་མཆོད་གྱུར་པ།
སྟོན་གྱིས་སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱི་ཞབས་པད་དག་དང་མཇལ་བ་ལས།
དག་པའི་རྡོ་བའི་གཞི་ལྡན་ནགས་ཚལ་གྱི་ཞིང་བསྟེན་པར་མཛད། 25

དེར་དེ་འཛུམ་དང་ལྡན་པ་ལས། ལྷ་ཡི་རྒྱལ་པོ་ལྷུར་འོངས་པས།
འཛུམ་པའི་རྒྱུ་དྲིས་དེ་ལ་ནི། ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་བཀའ་སྩལ་པ། 26

དག་བྱེད་དྲི་མ་མེད་པའི་ཆུ་ཡི་རྒྱུན་དང་ལྡན་གྱུར་ཅིང་།
ཁོན་མེད་སེམས་ཅན་སྐལ་བཟང་འཁོད་པ་དཀའ་ཐུབ་དག་གི་ནགས།
ཆོས་ནི་ལྷག་གནས་སྡོམ་བརྩོན་རྣམས་ཀྱི་ཡིད་ནི་དག་བྱེད་པ།
ཞི་བའི་གནས་འདི་དག་ཏུ་ང་ཉིད་ཁོ་ནས་རོལ་བྱས་མིན། 27

ततः सद्यःपरिक्षीणमदः संत्यक्तविक्रियः।
नागः शास्तारमभ्येत्य प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥ २१ ॥

तस्य यातस्य शरणं भगवान् करुणानिधिः।
शिक्षापदप्रदश्चक्रे कुशलाग्रमनुग्रहम् ॥ २२ ॥

प्रणयादर्थितस्तेन चरणालीनमौलिना।
सततं तस्य भवने सन्निधिं विदधे जिनः ॥ २३ ॥

तस्मिन्नवसरे तत्र प्रसङ्गात्तस्य शान्तये।
यक्षस्य चक्रे भगवान् वज्रपाणेरनुग्रहम् ॥ २४ ॥

लोकोपतापमसमं विनिवार्य्य शास्ता
विस्तारितस्तुतिपदस्त्रिदशार्च्यमानः।
भेजे वनानि विहरन्नथ पूर्व्वबुद्ध-
पादाम्बुजप्रणयपूतशिलातलानि ॥ २५ ॥

तत्र सन्दर्शनात्तेन सुरराजेन सस्मितः।
स्मितस्य कारणं पृष्टः सर्व्वज्ञस्तमभाषत ॥ २६ ॥

एतेषु पुण्यसलिलामलनिर्झरेषु
निर्व्वैरसत्त्वसुभगेषु तपोवनेषु।
धर्म्माधिवासमुनिमानसमार्जनेषु
शान्तेः पदेषु नु[१] मयैव कृतोविहारः ॥ २७ ॥

१ All the MSS. न।

སེང་གེའི་ཞུ་འོག་རི་དགས་ཕྲུག་གུ་སྐྱུ་བ་དབེན་པའི་ནགས་ཚལ་འདིར།
བཀྲུ་ཁྲིན་དཔལ་ལྡན་འཁོར་བ་འཇིག་དང་བདེ་གཤེགས་གསེར་ཐུབ་དེ་དང་ནི།
ཡང་དག་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་དྲི་མེད་ཀློ་ལྡན་ཐུབ་པ་འོད་སྲུངས་ཏེ།
མཐའ་དག་འཇིག་རྟེན་གདུང་བའི་སྨན་པ་རྣམས་ཀྱིས་འདི་ཉིད་དུ་གནས་མཛད། 28

དེ་ནས་དེ་སྐད་སྨྲས་དེས་གཟིགས་ཉིད་ཀྱི།
བསོད་ནམས་སྨིན་ལ་ཉེ་བར་འོངས་པ་ཡི།
ཇོན་པ་དག་ནི་སྐྱབས་སུ་སོང་བ་ལ།
བསྐྱབ་པའི་གནས་འོས་ཞི་བ་བསྟན་པ་མཛད། 29

སྐལ་ལྡན་དགེ་ལ་ཡིད་ཆགས་ཇོན་པ་ནི།
བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རྗེས་སུ་བཟུང་བ་ལས།
དེར་ནི་མཆོད་རྟེན་རི་དགས་བདག་པོ་དག།
རིས་གནས་དགུ་སྣ་སེན་མོས་མཚན་པ་བྱས། 30

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་སྐྱུ་བ་ཡང་སྐྱོང་བཏུལ་བའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙོ་དྲུག་པའོ།།

ककुच्छन्दः श्रीमान् कनकमुनिरथैव सुगतः
स सम्यक्संबुद्धः शमविमलधीः काश्यपमुनिः ।
विविक्तेऽस्मिन् सिंहीस्तनतलवलद्बालहरिणे
वने चक्रुः शक्रः स्थितिमखिललोकार्त्तिभिषजः ॥ २८ ॥

इति ब्रुवाणः समुपागतस्य
स पुण्यपाकादथ लुब्धकस्य ।
सन्दर्शनैरेव शमं दिदेश
शिक्षापदार्हं शरणं गतस्य ॥ २९ ॥

भाग्यवान् भगवतोह्यनुग्रहा-
ल्लुब्धकः कुशललुब्धमानसः ।
तत्प्रदिष्टनखकेशलाञ्छनं
तत्र चैत्यमकरोन्मृगाधिपम् ॥ ३० ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां गोपालनागदमनं नाम षट्पञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

CHAPTER LVII.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙ་བདུན།

མཆོད་རྟེན་གྱི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

ཕྱོགས་ཀྱི་མཛེས་པའི་ནོ་རྒྱན་དང་། མཚུངས་པར་ཡོན་ཏན་དམ་པ་བཀོད།
གང་ཞིག་གྲགས་པའི་མཆོད་རྟེན་གྱིས། འགྲོ་མཛེས་དེ་དག་རྒྱལ་གྱུར་ཅིག། 1

དེ་ནས་དེར་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས། བསྒྲུ་ཁྲིན་གུས་པས་གསོལ་བཏབ་པས།
སངས་རྒྱས་སྔ་མའི་མཆོད་རྟེན་མཛད། རང་གི་མཆོད་རྟེན་ཁྲིད་དུ་བཅུག། 2

ལྷ་རྣམས་ཀྱིས་དེར་རིན་ཅན་གྱིས། རང་བཞིན་ཉི་འོད་བསྒྲུ་ལྡན་བྱས།
འགྲོ་བའི་སྐྱོངས་པ་ཆེན་པོ་དང་། མཚུངས་པའི་སྨུན་པ་ག་ཤེད་སོང་། 3

དེར་ནི་ཏྲི་ཛ་མི་འམ་ཅི། མི་དང་ཀླུ་དང་ལྷ་རྣམས་ལ།
འདུལ་བའི་ཆོས་ཀྱི་མན་ངག་ནི། ཡང་དག་བསྟན་ནས་རྒྱལ་བ་ག་ཤེགས། 4

རྗེ་བའི་རི་ལ་ལྷ་རྣམས་ཀྱིས། མཆོད་རྟེན་བཞི་ནི་བཀོད་པ་ལ།
བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ལྔ་པ་ཡི། མཆོད་རྟེན་མཆོད་རྟེན་ལྔ་དག་བཀོད། 5

དེ་ནས་བྲ་ལོ་ཀཱ་ཞེས་པའི། ཡུལ་དུ་དེ་བཞིན་ག་ཤེགས་པ་བྱོན།
ལུས་ཅན་གྱིས་བཞིན་ཆོང་དཔོན་ནི། ལེགས་པར་རབ་སད་ཅེས་པས་མཆོད། 6

सप्तपञ्चाशत्तमः पल्लवः।

स्तूपावदानम्।

दिक्कान्ताश्रवणोत्तंसतुलारोपितसद्गुणाः।
ते जयन्ति जगद्येषां यशस्तूपैर्विराजते[1] ॥ १ ॥

भगवानथ शक्रेण तत्र प्राणावनार्थितः।
पूर्व्वबुद्धकृतस्तूपे निजस्तूपमकारयत् ॥ २ ॥

कृते रत्नमये तस्मिन् देवैः सूर्य्यशतत्विषि।
जगाम जगतां क्वापि महामोहोपमं तमः ॥ ३ ॥

तत्र किन्नरगन्धर्व्वनरनागदिवौकसाम्।
धर्म्मोपदेशविनयं समादिश्य ययौ जिनः ॥ ४ ॥

पाषाणपर्व्वते देवैर्न्यस्ते स्तूपचतुष्टये।
भगवान् पञ्चमं स्तूपं पञ्चस्तूपैन्र्यवेशयत् ॥ ५ ॥

अथ वाक्लोक्षनामानं देशं प्राप्तस्तथागतः।
श्रेष्ठिना सुप्रबुद्धेन कुवेरेणेव पूजितः ॥ ६ ॥

---

१ W_1 जगन्त्येषां यशस्तूपो विराजते ॥ H and W_2 जगत्येषाम्।

གང་ཞིག་དེ་ནི་རྗེས་འབྲང་བཅས། འདུལ་བའི་ཆོས་ནི་དེ་ལ་བསྟན།
སྦྱོངས་པའི་གཉེར་སད་ལེགས་པར་ནི། རབ་སད་རབ་སད་ཉིད་ཐོབ་གྱུར། 7

བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་བཀའ་ལས་དེས། རང་གི་བསོད་ནམས་བཞིན་མཐོ་བ།
ནཱ་ལོ་ཀཱི་ཡ་ཞེས་པ་ཡིས། མཆོད་རྟེན་རིན་ཅན་འབར་བ་བྲུས། 8

དེ་ནས་དཔལ་གྱི་དེ་བཞིན་གཤེགས། ཊམ་བ་ར་ཡི་གྲོང་དུ་བྱོན།
གཏོང་སྦྱིན་ཊམ་བ་ར་ཞེས་པ། བསླབ་གནས་རབ་དུ་བྱིན་པས་བཏུལ། 9

གདུམ་པོའི་གྲོང་དུ་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ། གདུམ་མ་མ་ལི་ཀ་ཞེས་པ།
བུ་བདུན་དག་དང་ལྷན་ཅིག་ཉིད། འདུལ་བ་ཡི་ནི་མཐོ་བར་མཛད། 10

ལས་ཀྱི་ལྷག་མས་གདུམ་པོའི་རིགས། ཐུབ་པས་སྲུན་སྤྱང་དེ་དག་རྣམས།
གྲུལ་བ་མཐོང་ལས་པདྨ་ཡི། འབྱུང་གནས་བཞིན་དུ་དྲི་མེར་གྱུར། 11

ཐ་ཤལ་སྐྱོན་གྱིས་སྲུན་སྤྱང་སྨན་པ་དག་དུ་འཁོས་གྱུར་ཅིང་།
སྡིག་པའི་ཉེ་བར་གདུང་བ་ཆེན་པོས་གདུངས་ཤིང་ཉིན་རྣམས་ལ།
ཉམ་ཐོག་ངན་པ་དང་བྲལ་སྙིང་རྗེས་རབ་ཞུགས་དམ་པ་རྣམས།
དམན་ལ་དམིགས་པའི་རྗེས་སུ་ཆགས་པས་ལྷག་པར་གྱུར་པ་ཡིན། 12

དེ་ནས་བདེ་གཤེགས་རྗེས་འབྲང་བཅས། སྨྲ་ཊ་ལ་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་བྱོན།
དཔལ་ལྡན་ཁྱིམ་བདག་གུ་འཛིན་ཞེས། བྱ་ལ་ལེགས་པའི་གདམས་ངག་མཛད། 13

दिदेश धर्म्मविनयं तस्मै येन स सानुगः ।
मोहनिद्राक्षये प्राप सुप्रबुद्धः प्रबुद्धताम् ॥ ७ ॥

स शासनाद्भगवतः पुण्यं निजमिवोन्नतम् ।
वाक्कोशीयाभिधं स्तूपं रत्नदीप्तं न्यवेशयत् ॥ ८ ॥

डम्बरग्राममासाद्य शनैरथ तथागतः ।
विनीय डम्बरं नाम यक्षं शिक्षापदप्रदः[1] ॥ ९ ॥

चण्डालग्राममभ्येत्य चण्डालीं मल्लिकाभिधाम् ।
सहितां सप्तभिः पुत्रैर्विनयोपनतां व्यधात् ॥ १० ॥

ते कर्म्मशेषसम्प्राप्तमातङ्गकुलदूषिताः ।
पद्माकर इव प्रापुर्वैमल्यं जिनदर्शनात्[2] ॥ ११ ॥

अन्येषु दूषिततरेषु जुगुप्सितेषु
पापोपतापविपुलव्यसनातुरेषु ।
सन्तः प्रवृत्तकरुणाः कुविकल्पहीना
दीनावलम्बनवशादधिकं[3] भवन्ति ॥ १२ ॥

अवाप्य पाटलग्रामं सानुगः सुगतस्ततः ।
धर्म्यां गृहपतेश्चक्रे पोतलाख्यस्य सत्कथाम् ॥ १३ ॥

---

१ All the MSS. यक्षशिक्षापदप्रदः ।
२ All the MSS. वैमल्यजिनदर्शनात् ।
३ W दीनावलम्बनवशात् ।

བདེ་བར་གཤེགས་པས་རྗེས་བཟུང་བས། བསླབ་པའི་གནས་ཐོབ་དྲི་མེད་དེས།
དེ་ཡི་དབུ་སྐྲ་སེན་ཆ་ཡིས། མཚན་པའི་རིན་ཆེན་མཆོད་རྟེན་བྱས། 14

དེ་ནི་བལྟར་འོངས་དབང་པོ་ལ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རབ་གསུངས་པ།
རྒྱལ་པོ་མི་ལིན་དྲ་ཞེས་པས། ཡུལ་འདི་མཆོད་རྟེན་བྱེད་པར་འགྱུར། 15

དེ་ལྟར་གནས་དང་གནས་སུ་བཅོམ་ལྡན་བརྩེ་བས་བསྟན་པས་གཟིགས་པ་ཡིས།
མཐའ་དག་འཇིག་རྟེན་ནོམས་ཀྱི་ཀླུ་ངན་སྨོངས་དང་འཇིགས་པ་བཏང་བར་གྱུར།
མཆོད་རྟེན་མངོན་པར་གསར་བྱས་སྐྱིབས་ན་ནོར་བུའི་དྲི་ལ་ཆུང་སྐྲ་སྐྲོགས།
དར་དིར་ཚོགས་ཀྱི་རྩེད་འཛེ་དག་གིས་ས་གཞི་རབ་སྤྲེད་ལྡན་པར་གྱུར། 16

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་མཆོད་རྟེན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་བདུན་པའོ།།

शिक्षापदाप्तवैमल्यः सुगतानुग्रहेण सः ।
तत्केशनखलेशाङ्कं रत्नस्तूपमकारयत् ॥ १४ ॥

तत्र सन्दर्शनायातं भगवानिन्द्रमब्रवीत् ।
मिलिन्द्रो नाम राजास्मिन् देशे स्तूपं करिष्यति ॥ १५ ॥

इति भगवतः स्थाने स्थाने दयार्द्रविलोकना-
दभवदखिलो लोकः शोकप्रमोहभयोज्झितः ।
अभिनवकृतस्तूपोत्सङ्गक्कणन्मणिकिङ्किणी-
कुलकलकलक्रीडालोला बभूव च मेदिनी ॥ १६ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां स्तूपावदानं नाम सप्तपञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

CHAPTER LVIII.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙ་བརྒྱད་པ།

བསོད་ནམས་སྟོབས་ཀྱི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

ཀུད་པའི་གདུང་བ་ཞི་བྱེད་གཟིགས་པ་རབ་དུ་དང་བའི་ངོ་དག་གིས།
སྐྱེས་བུ་རྣམས་ནི་ནད་དང་བྲལ་མཐོང་སྲིད་པས་ཟིལ་མནན་འཁྲུགས་པའི་སྨན་པ་
གང་།
ངེས་པར་དགེ་བ་མཐའ་དག་བསྐྱེད་པའི་ནོར་འཛིན་གྱུར་པའི་བདུད་རྩི་ནི།
རྫོགས་པའི་སྙིང་རྗེ་ནང་དུ་འཛིན་པ་དེ་དག་གི་སྐྱད་ཕྱུག་བྱུར་འོས། 1

གྲོང་ཁྱེར་པདྨ་ལྡན་པ་ན། བཅོམ་ལྡན་འཇམ་དང་བཅས་པ་ལ།
ལྷ་ཡི་རྒྱལ་པོས་འཛུམ་པའི་རྒྱུ། དྲིས་ནས་སླར་ཡང་རབ་གསུངས་པ། 2

དཔལ་ལྡན་བསོད་ནམས་སྟོབས་ཞེས་པའི། ས་ཡི་བདག་པོ་སྐྱོན་བྱུང་སྟེ།
གང་ཞིག་གྲོང་ཁྱེར་སྟོང་ཕྲག་ནི། བརྒྱད་ཅུ་ཡོངས་སུ་འཛིན་པར་གྱུར། 3

དེ་ཡི་རྒྱལ་པོའི་ཕོ་བྲང་ནི། བསོད་ནམས་ལྡན་ཞེས་བྱ་བ་སྟེ།
ཤེལ་གྱི་རྣམ་པར་ཡིད་འོང་ཞིང་། མཚན་མོའི་བདག་པོའི་འོད་བཞིན་མཛེས། 4

སྐྱེད་ཚལ་གསར་པར་འགྲོ་བའི་སྐབས། ནམ་ཞིག་ཤིང་རྟ་ཞོན་པ་དེས།
ལམ་དུ་ཕན་པའི་ཟས་བྲལ་བས། ནད་ཀྱིས་གཟིར་ཞིང་འདུག་པ་མཐོང་། 5

अष्टपञ्चाशत्तमः पल्लवः ।

पुण्यबलावदानम् ।

अनिन्द्या वन्द्यास्ते सकलकुशलोत्पत्तिवसुधां
सुधां सिद्धामन्तर्दधति किल ये पूर्णकरुणाः ।
प्रसन्नैरापन्नव्यसनशमनालोकनरसैः
कृतारोग्याः पुंसां भवपरिभवक्षोभभिषजः ॥ १ ॥

नगर्यां पुष्कलावत्यां सस्मितः स्मितकारणम् ।
सुरराजेन भगवान् पृष्टः पुनरभाषत ॥ २ ॥

श्रीमान् पुण्यबलो नाम पुराभूत् पृथिवीपतिः ।
यस्याशीतिसहस्राणि नगरीणां परिग्रहाः ॥ ३ ॥

तस्य पुण्यवती नाम राजधानी व्यराजत ।
स्फटिकागाररुचिरा ज्योत्स्नेव रजनीपतेः ॥ ४ ॥

स कदाचिन्नवोद्यानयात्रायां रथमास्थितः ।
ददर्श पथ्यविरहात् पथि सीदन्तमातुरम् ॥ ५ ॥

རིང་པོའི་ནད་ཀྱིས་མནར་བ་ཡིས། ཡོངས་སུ་ཉམས་པ་དེ་མཐོང་ནས།
ཕྱོགས་མཚམས་མ་ལུས་གནོན་པ་དེ། སྙིང་རྗེས་ཟིལ་མནན་གདུང་བར་གྱུར། 6

གཞན་གྱི་ཡོངས་གདུངས་མཐོང་གྱུར་ན། འགྲོ་ལ་འཚོས་དེ་དམ་པ་ཡི།
མེ་ལོང་རྣམས་ནི་གདུང་འགྱུར་དེ། ཉི་མ་མེ་ཤེལ་རང་བཞིན་བཞིན། 7

དེ་ཡིས་གྲོང་ཁྱེར་ཐམས་ཅད་དང་། སྒོ་དང་སྲང་རྣམས་མཐའ་དག་ཏུ།
ནད་པ་རྣམས་ལ་ཟས་དང་སྨན། གནས་དང་མལ་སྟན་ལ་སོགས་བྱས། 8

དེ་ནས་དེ་དག་རྣམས་ཀྱི་སླད། རིམ་གྲོ་པ་ནི་མཁས་པ་བསྐོས།
གང་ཕྱིར་དམ་པའི་རིམ་གྲོ་པ། ནད་གསོའི་ཡན་ལག་དང་པོ་ཡིན། 9

བཟོད་ལྡན་སྙིང་རྗེས་བརྟན་ཞིང་བཟོད། གསོ་བྱེད་འདོད་པ་དག་ལ་གནས།
མཛད་ལས་ཐེ་ཚོམ་མི་བྱེད་པའི། རིམ་གྲོ་པ་ནི་རྙེད་པ་དཀའ། 10

དེ་ནས་རྒྱལ་པོས་རིམ་གྲོ་པ། དུལ་བ་རྣམས་ནི་ལེགས་བོས་ནས།
སྨྲས་པ་ཉིན་དང་མཚན་མོར་ནི། ནད་པ་རྣམས་ཀྱི་རིམ་གྲོ་མཛོད། 11

རྒྱལ་པོ་ལ་འོས་གནས་རྣམས་སུ། མལ་སྟན་མཆོག་སོགས་ཕུན་ཚོགས་བྱས།
རིན་ཅེན་སྣས་ལྡན་པ་སྣོ་ཙན། དྲི་མེད་ཆུ་ལྡན་ནད་པའི་ཕྱིར། 12

སྨན་པ་དང་ནི་སྨན་དག་ཀྱང་། ཕུན་ཚོགས་ཤིན་ཏུ་ཆེ་བ་བསྒྲུབས།
ང་ནི་དེ་དག་བསོས་གྱུར་པ། ཁྱེད་ཀྱི་གཉེར་ཞེས་བདག་གི་བློ། 13

स तं दृष्ट्वा परिम्लानं दीर्घरोगेण दुर्गतम्।
विव्यथे करुणाक्रान्तः क्रान्ताखिलदिगन्तरः ॥ ६ ॥

सन्तप्तं परमालोक्य सद्यःसंक्रान्तिदर्पणाः[1]।
सन्तः सन्तापमायान्ति सूर्य्यकान्तमया इव ॥ ७ ॥

समस्तद्वाररथ्यासु सर्व्वेषु नगरेषु सः।
रोगिणां भक्तभैषज्यशालाशय्याद्यकारयत् ॥ ८ ॥

आदिदेश ततस्तेभ्यः कुशलान् परिचारकान्।
प्रथमं हि चिकित्साङ्गं व्याधेः सत्परिचारकः ॥ ९ ॥

करुणार्द्रः क्षमः क्षान्तश्चिकित्सकमते स्थितः।
स्नेहादविचिकित्सश्च[2] दुर्लभः परिचारकः ॥ १० ॥

राजा ततः समाहूय नियतान् परिचारकान्।
अवदत् क्रियतां रोगिपरिचर्य्या दिवानिशम् ॥ ११ ॥

राजार्हशालासु कृता वरशय्यादिकल्पना।
रोगिणां रत्नसोपानाः पद्मिन्यश्चामलोदकाः ॥ १२ ॥

भिषग्भैषज्यसम्पत्तिर्विहिता च महीयसी।
अधुना युष्मदायत्तं तत्स्वास्थ्यमिति मे मतिः ॥ १३ ॥

---

१ H सन्तप्तदर्पताः। २ H स्नेहादमलमूलेषु।

འཇིག་རྟེན་འདིར་ནི་རིམ་གྲོ་པ་དང་བརྟེན་པའི་སྨན་པ་ཆོས་ཀྱི་གཞན་དུ་མི་
རྣམས་ཀྱི།
ཡོངས་སུ་གདུང་བ་ཤིན་ཏུ་བསིལ་བ་ཡིས་ཀྱང་གང་བ་དག་ནི་བདེ་བའི་དྲོ་བ་ཡིས།
སྒྲིད་པ་བསིལ་བའི་ཆུ་ཡིས་དང་ནི་ངལ་བ་ཡང་ཡང་ཆུང་དུ་ཕན་ཟས་ཉེར་
བསྟབས་པས།
ཁྱོད་གསོས་འགྱུར་ཞེས་བསྟན་པའི་ཚིག་སྐྱན་ཀུ་རེའི་རིམ་པས་མི་དགའ་བ་
དག་ཞི་བར་བྱེད། 14

དེ་ཡི་སྐད་དུ་ཁྱེད་རྣམས་ཀྱིས། ནད་ཀྱིས་གདུངས་ཤིང་འཁྱོལ་རྣམས་ལ།
ཡང་དང་ཡང་དུ་ཚིག་དག་གིས། དབུགས་དབྱུང་འདི་ནི་དྲན་པར་བྱས། 15

སྨན་པ་སྐྱོན་མེད་བདེ་གཤེགས་བཀའ་དྲིན་དང་།
ཆོས་ཀྱི་མན་ངག་དམ་པའི་སྨན་དག་ཀྱང་།
འཁོར་བ་རིང་པོའི་རིམས་ཀྱིས་བསྐམས་རྣམས་ཀྱི།
དཔུང་གཉེན་ཞི་བའི་བཅུད་ལེན་དེ་དག་ཡིན། 16

མི་བདག་ནོར་གྱི་ཆར་འབེབས་ངེས། དེ་དག་རྣམས་ལ་དེ་སྐད་བསྟན།
ནད་པ་མ་ལུས་གསོས་བྱའི་སྐད། སོང་ནས་ཇི་སྐད་བརྗོད་བཞིན་བྱས། 17

དེ་ནས་ནད་གྲོལ་དེ་དག་རྣམས། དགེ་བ་འདོད་པས་དེ་ལ་ཡིད།
སོང་བ་རྣམས་ལ་བལྟ་བའི་སྐད། མི་བདག་རང་ཉིད་ཕྱི་རོལ་བྱུང་། 18

सन्तापं शमयत्यतीव शिशिरैः शीतं सुखेनोष्मणा
तृष्णां शीतजलैर्मुहुर्मितहिताहारोपचारैः क्रमम्।
स्वस्थोऽसीत्यधृतिं प्रियेण वचसा केलिक्रमेणारतिं
लोकेऽस्मिन् परिचारकः स्थिरभिषग्धर्म्मः परस्मिन्नृणाम्॥१४॥

तस्मात् भवद्भिस्तप्तानां रोगयोगेन सीदताम्।
कार्य्या मुहुर्मुहुर्वाक्यैरियमाश्वासनस्मृतिः॥ १५ ॥

वैद्योऽनवद्यः सुगतः प्रसादी
धर्म्मोपदेशः परमौषधञ्च।
संसारदीर्घज्वरशोषितानां
परायणं शान्तिरसायनं तत्॥ १६ ॥

इत्यादिष्टा नृपतिना ते तेन वसुवर्षिणा।
गत्वा यथोचितं चक्रुः स्वास्थ्याय किल रोगिणाम्॥ १७ ॥

ततः कुशलवादेन तेन तद्गतमानसान्।
व्याधिमुक्तान्नरपतिः स्वयं द्रष्टुं विनिर्ययौ॥ १८ ॥

བརྒྱ་བྱིན་གྱིས་ཀྱང་དེ་ལ་ནི། གཉིས་འཐུང་དཀར་པོ་མཆེ་བ་ནི།
དྲུག་ལྡན་གྱིས་དྲངས་ཤིང་དེ་དག། བསོད་ནམས་རབ་འབར་རྣམ་པར་སྤྲུལ། 19

རིན་ཆེན་གསེར་གྱི་མཚོ་སྐྱེས་རྣམས། རེག་ན་བདེ་བའི་རླུང་གིས་གཡོས།
བྱུང་བའི་ན་ཆུང་གླུ་ལེན་པའི། ལམ་དུ་མཆོག་གི་པད་ལྡན་ཡང་། 20

རིན་ཆེན་མཚོ་སྐྱེས་དེ་དག་ལ། གནས་སོགས་བདུད་རྩིའི་ཆ་རྫོགས་པའི།
ལྷ་མོ་རྣམས་ཀྱི་རིང་པོ་ནས། མི་བདག་བྱོན་པ་བསྟན་པར་གྱུར། 21

སྙིང་སྟོབས་བདུད་རྩིའི་རྒྱ་མཚོ་དེའི། སྙིང་སྟོབས་ཞེས་འདོད་ལྷ་ཡི་བདག།
བདག་ཉིད་ལོང་བའི་གཟུགས་བྲུས་ནས། དེ་ལ་མངོན་དུ་ཕྱོགས་ཏེ་གནས། 22

རྒྱལ་པོ་མིག་གིས་དམན་པ་བདག། སྐྱེ་བར་སྣང་བ་རྣམ་པར་སྤངས།
སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཡོངས་སྐྱོབ་པར། ཞུགས་པ་ཁྱོད་ཅན་ཉེ་བར་འོངས། 23

ཁྱོད་ཀྱི་མཐུ་ཡིས་ནད་པ་ནི། འདི་དག་ལེགས་པར་གསོས་གྱུར་ནས།
འོད་ལྡན་མཛེས་པས་ཁྱོད་ཀྱི་ནི། གྲགས་པ་སྣ་ཚོར་སྒྲོག་ཅིང་རྒྱུ། 24

སྡུག་བསྔལ་བཀྲེན་དང་ལོང་བའི་གཉེན། ལྷ་ཡི་བདག་ནི་བསྐྱབ་པར་འོས།
བདག་ལ་མིག་ནི་གཡས་པ་དག། གལ་ཏེ་ཡོད་ན་གནང་བར་མཛོད། 25

དེས་འདི་བརྗོད་ཚེ་མི་བདག་ནི། རབ་དང་བཞིན་རས་མཛེས་པ་ཡི།
འགྲོ་རྣམས་ཡང་དག་བསྒྲལ་བའི་སྐད། རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར། 26

शक्रस्त्वपरशक्रस्य तस्य पुण्यसमुज्ज्वलम् ।
रथं विनिर्म्ममे युक्तं षड्दन्तैः पाण्डुरैर्द्विपैः ॥ १९ ॥

सुखस्पर्शानिलालोलहेमरत्नसरोरुहाः ।
भृङ्गाङ्गनोपगीताश्च दिव्याः कमलिनीः पथि ॥ २० ॥

तेषु रत्नसरोजेषु स्थिता नृत्यकलाकुलाः ।
दूरान्नृपतिमायान्तं सुरनार्य्यः सिषेविरे ॥ २१ ॥

तस्य सत्त्वसुधासिन्धोः सत्त्वं ज्ञातुं मरुत्पतिः ।
कृत्वान्धरूपमात्मानमभ्येत्य तमभाषत ॥ २२ ॥

राजन्नयनहीनोऽहं जन्मालोकविवर्जितः ।
सर्व्वसत्त्वपरित्राणसन्नद्धं त्वामुपागतः ॥ २३ ॥

एते तव प्रभावेण रोगिणः स्वास्थ्यमागताः ।
त्वत्कीर्त्तिवादमुखराश्चरन्ति रुचिरत्विषः ॥ २४ ॥

त्रातुमर्हसि मां देव दुःखदीनान्धबान्धव ।
दक्षिणं नयनं मह्यं दीयतां यदि शक्यते ॥ २५ ॥

इत्युक्तस्तेन नृपतिः प्रसन्नवदनद्युतिः ।
सन्तारणाय जगतां सम्यक्सम्बोधिसिद्धये ॥ २६ ॥

སྨོན་ལམ་རབ་ཏུ་བཏབ་བྱས་ཏེ། མིག་ནི་མཆོད་གྱིས་རབ་ཕྱུངས་ནས།
བརྟན་པའི་གཏེར་གྱིས་དེ་ལ་བྱིན། ལྷ་རྣམས་ཀྱིས་ནི་མེ་ཏོག་གཏོར། 27

དེ་ཡི་མོད་བྱུང་སྦྱིན་པ་ཡིས། ཡ་མཚན་ནས་བཞིན་ས་གཞི་ནི།
ཆུ་གཏེར་གཡོ་བའི་སྐྱེ་རགས་ཅན། རི་དང་བཅས་པ་མ་ལུས་འདར། 28

མིག་གཅིག་གིས་ནི་སྣང་བ་དག། སྐྱེས་པ་དེ་མཐོང་ས་ཡི་བདག།
སྦྱིན་པའི་རོ་ལ་རབ་དགྱེས་པས། གཉིས་པ་སྦྱིན་པར་བརྩོན་པར་གྱུར། 29

དེ་ནས་ལྷ་ཡི་བདག་པོ་ནི། རང་གི་ལུས་སུ་ཡང་དག་གནས།
དེ་ཡི་མིག་ནི་བསོས་བྱས་ཏེ། སྙིང་སྟོབས་མཆོག་ཉིད་རབ་ཏུ་བསྔགས། 30

གང་ཞིག་སྦྱིན་ཚེ་རང་གི་ཡན་ལག་ལ་འང་།
ནམ་ཡང་ཆགས་པ་ཆུང་ངུ་སྐྱེ་མིན་པ།
ངེས་པར་སྙིང་སྟོབས་གྱི་མཚོ་གྱིས་དེ་ལ།
ནོར་ཞེས་བརྗོད་པའི་ཏུལ་ལ་རང་བློ་ཅི། 31

དེ་ཚེ་མི་བདག་བསོད་ནམས་སྟོབས་གྱུར་ཏེ།
དེ་ཉིད་སྦྱིན་པའི་རོ་ཡིས་བྱང་ཆུབ་ཐོབ།
དེ་ཡི་ངོ་མཚར་སྤྱོད་ཚུལ་དྲན་པས་ན།
དེ་ཡི་རང་བཞིན་ཉིད་ཐོབ་འཇུམ་པ་མཛད། 32

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་བསོད་ནམས་སྟོབས་ཀྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་བརྒྱད་པའོ།།

प्रणिधानं समाधाय शस्त्रेणोत्पाट्य लोचनम्।
ददौ धैर्य्यनिधिस्तस्मै पुष्पैरापूरितः सुरैः॥ २७॥

तस्यात्यद्भुतदानेन विस्मयादिव साचला।
विचचालाखिला पृथ्वी विलोलार्णवमेखला॥ २८॥

जातालोकं तमालोक्य नेत्रेणैकेन भूपतिः।
अतिदानरसप्रीत्या द्वितीयं दातुमुद्ययौ॥ २९॥

ततः सुरपतिस्तस्य समास्थाय निजं वपुः।
स्वस्थं विधाय नयनं प्रशशंसातिसत्त्वताम्॥ ३०॥

दानक्षणे स्वावयवेऽपि यस्य
न जायते स्नेहलवः कदाचित्।
का नाम तस्योर्जितसत्त्वसिन्धो-
र्द्दनाभिधाने रजसि स्वबुद्धिः॥ ३१॥

स भूपतिः पुण्यबलोऽहमेव
तदाभवन्दानरसाप्तबोधिः।
आश्चर्य्यवृत्तस्मरणेन तस्य
जातस्मितस्तन्मयतामवाप्तः॥ ३२॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां पुण्यबलावदानं नामाष्टपञ्चाशत्तमः पल्लवः॥

Chapter LIX.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙོ་དགུ་པ།

ཀུ་ཎ་ལའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

ཤིན་ཏུ་རབ་གསལ་གྲགས་པའི་ཚོན་རིས་ཡོན་ཏན་རིན་ཆེན་རྒྱན།
མ་ཉམས་སྦྱིན་པའི་མེ་ཏོག་དང་ལྡན་བདེན་པའི་འབྲུག་པ་འབྲས།
གང་གི་དཔལ་ནི་ཚུལ་ཁྲིམས་གཙང་མའི་དུ་གུ་ལས་མཛེས་པ།
དེ་ཉིད་གཅིག་པུ་ལེགས་བྱས་ལ་འོས་འཁོར་ལོ་སྒྱུར་བ་ཡིན། 1

གྲོང་མཆོག་པཱ་ཊ་ལི་པུ་ཏྲ་ཞེས་པ།
ན་ཆུང་ས་གཞི་ཐིག་ལེ་ལྟར་གྱུར་པར།
ཉི་མའི་རིགས་ཀྱི་རྒྱན་གྱུར་གྲགས་པའི་གཏེར།
དཔལ་ལྡན་ས་བདག་སྨྱ་ངན་མེད་པ་བྱུང་། 2

དང་པོར་འདོད་ལྡན་དེ་འདོད་ཉེ་ཚིག་དང་།
དེ་ནས་རྣོན་པོ་གདུག་པའི་ཉེར་སྤྱོད་དང་།
ཕྱི་ནས་ཆོས་ནི་ཉེ་བར་འཛིན་པ་ཡིས།
དབེན་པ་སྨིན་པའི་ན་ཚོད་རབ་གྲགས་གྱུར། 3

ऊनषष्टितमः पल्लवः।

कुणालावदानम्।

एकः स एव सुकृतोचितचक्रवर्त्ती
सुव्यक्तकीर्त्तितिलका गुणरत्नभूषा।
अम्लानदानकुसुमा कृतसत्यचर्च्चा
यस्यावभाति शुचिशीलदुकूलिनी श्रीः ॥ १ ॥

पुरोत्तमे पाटलिपुत्त्रनाम्नि
महीयुवत्यास्तिलकायमाने।
यशोनिधिः मौर्य्यकुलावतंशः
श्रीमानशोकः क्षितिपो बभूव ॥ २ ॥

पूर्व्वं स कामोपपदेन कामी
चण्डोपचारेण ततश्च तीक्ष्णः।
धर्म्मप्रदानेन[2] जगाम पश्चा-
द्विवेकपाके वयसि प्रसिद्धिम् ॥ ३ ॥

---

[1] H has an additional verse after the first S'loka :—
अशोकपुत्त्रो हिमराजनेत्त्रः कुणालनामालभदक्षिपातम्।
चैत्यस्य नेत्त्रोत्पतनस्य कर्म्मात् भूयोऽलभन्नेत्रप्रढौकनेन ॥

མྱ་ངན་མེད་དེ་རབ་དང་བསོད་ནམས་ཀྱིས།
ཉེ་བའི་ནགས་ཚལ་ས་གཞི་མཛེས་པས་བརྒྱན།
སྐྱེས་པར་གྱུར་ཚེ་དགེ་བའི་མྱུ་གུ་ཡིས།
འཇིག་རྟེན་མྱ་ངན་མེད་ཉིད་ངེས་པར་འཛིན། 4

དེ་ཡི་བདེ་སྐྱིད་ལྷ་མོ་པདྨ་ལྡན།
ཕོ་བྲང་འཁོར་གྱི་མཛེས་མའི་གཙུག་གནས་པས།
ཀུན་སྒྲོ་བུ་ནི་བསོད་ནམས་དག་གིས་བསྐྱེད།
གདོང་བ་རྗེས་འབྲང་དཔལ་གྱི་ལེགས་བརྗོད་བཞིན། 5

གསེར་ལྟར་དག་པ་མི་ཡི་དབང་པོའི་བུ།
པད་རྫིང་དཔལ་གྱི་པདྨའི་འདབ་འདྲའི་སྤྱན།
གསེར་རིའི་ངང་པ་ཀུ་ཎ་ལ་ཞེས་པའི།
མིག་མཚུངས་དེ་ནི་ཀུ་ཎ་ལ་ཞེས་གྱུར། 6

རིག་པ་བུ་མོའི་བདག་མཐོང་དྲི་མ་མེད།
སྒྲུ་ཙོལ་འཁྲི་ཤིང་ནམས་ཀྱི་དགའ་བའི་དཔྱིད།
གྲགས་པ་ཀུ་མུད་ལྡན་པའི་ཟླ་ཀྱིས་པ།
དེ་ནི་འཇིག་རྟེན་ཀུན་གྱི་མངོན་འདོད་གྱུར། 7

प्रसन्नपुण्योपवनस्थलीना-
मुद्भिन्नशोभाभरणायमाने।
तस्मिन्नशोके कुशलप्ररोहै-
रशोकतामेव बभार लोकः ॥ ४ ॥

मूर्ध्नि स्थितान्तःपुरसुन्दरीणां
पद्मावती तस्य सुखाय देवी।
सत्त्वोत्सवं पुत्त्रमसूत पुण्यै-
स्त्यागानुगा श्रीरिव साधुवादम् ॥ ५ ॥

नरेन्द्रसूनुः कनकावदातः
श्रीपद्मिनीपद्मपलाशनेत्रः।
हिमाद्रिहंसस्य कुणालनाम्न-
स्तुल्येक्षणोऽभूत्स कुणालनामा ॥ ६ ॥

विद्यावधूनां विमलात्मदर्श-
श्चैत्रोत्सवः सर्वकलालतानाम्।
स सर्व्वलोकाभिमतो बभूव
चन्द्रोदयः कीर्त्तिकुमुद्वतीनाम् ॥ ७ ॥

རྒྱུ་སྐར་བདག་པོའི་ནང་གི་རི་དྭགས་བཞིན།
དེ་ཡི་མིག་ཡངས་མཚོ་སྐྱེས་ཟུང་དག་ནི།
གཡོ་ལྡན་སྨིན་མའི་ཁྱུང་བས་མདོན་དགའ་བ།
བལྟ་བས་མི་དབང་རབ་ཏུ་དྨོངས་མ་གྱུར། 8

སྣ་ཚོགས་ཡོན་ཏན་ཀུན་ལྡན་དེ་ལ་ནི།
མཐའ་དག་ཕྱོགས་དང་གླིང་གི་ས་ཡི་བདག།
སྐལ་བཟང་ཁྱིངས་པས་རང་གི་བུ་མོ་དག།
འདོད་པའི་སྨུ་དྲིག་འཁྲི་ཤིང་ལྟ་བུ་ཕྱིན། 9

སྐྱེ་བོ་རྫེས་ཆགས་སྐྱེད་པ་མཆོག་གི་གཟུགས།
དེ་ཡི་དགའ་མར་མིག་ཡངས་ཟླ་ཞལ་མ།
འདོད་པའི་དགའ་མ་སྐྱེ་བ་གཞན་ཐོབ་བཞིན།
གསེར་གྱི་འཕྲེང་ལྡན་མ་ཞེས་གྲུ་བར་གྱུར། 10

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་པ་ཡི་དབྱུང་གནས་པའི།
གཞོན་ནུ་དེ་མཐོང་དགེ་འདུན་གནས་བརྟན་གྱིས།
རྒྱལ་པོའི་འདོད་པས་རང་གི་གྲགས་པ་ཡི།
དབེན་གནས་གཙུག་ལག་ཁང་དུ་དལ་གྱིས་ཁྲིད། 11

तारधिपोत्सङ्गमृगोपमस्य
तस्यायतं नेत्रसरोजयुग्मम् ।
सविभ्रमं भ्रूभ्रमराभिरामं
पश्यन्नरेन्द्रः प्रययौ न तृप्तिम् ॥ ८ ॥

नानागुणालङ्करणाय तस्मै
कन्दर्पमुक्तालतिकायमानाः ।
समस्तदिग्द्वीपधराधिनाथा
धन्याभिमानेन ददुः स्वकन्याः ॥ ९ ॥

तस्यायताक्षी दयिता बभूव
चन्द्रानना काञ्चनमालिकाख्या ।
जनानुरागोद्भवभव्यमूर्त्ति
र्जन्मान्तरस्येव रतिः स्मरस्य ॥ १० ॥

ततः कदाचित् पितुरन्तिकस्थं
तं वीक्ष्य संघस्थविरः कुमारम् ।
स तेन राज्ञः सुयशोविहारे
विविक्तदेशं शनकैर्निनाय ॥ ११ ॥

གཏན་པོ་མཁན་པོ་མངོན་ཤེས་དྲུག་ལྡན་མཆོག།
སྙིང་རྗེའི་འབྱོར་ལྡན་ནོར་འབྱོར་ལྡན་པ་དེས།
དུས་ཀྱི་དེ་ཡི་མིག་དག་ཉམས་ཤེས་ནས།
མ་འོངས་སྡུག་བསྔལ་གདོན་སྐད་དེ་ལ་སྨྲས། 12

ཁྱོད་ཀྱི་སེམས་ནི་འབྱོར་པས་ཟིལ་མནན་ནས།
ལང་ཚོ་མི་རྟག་མཚོན་དང་ལྡན་པའི་ཚོགས།
རོལ་པས་ཟླ་བའི་དྲེགས་འཇོམས་ལུས་ལ་ནི།
མཚན་མ་བྱུང་བར་གྱུར་འདི་བདག་གིས་མཐོང་། 13

མིག་ནི་རང་བཞིན་གྱིས་གཡོ་གཞན་པ་ཏེ།
འདི་ལ་བདེ་བ་ཉེར་བསྐྱེད་གནས་པ་མེད།
འདི་ཡིས་དྲངས་པས་རང་གནས་རབ་ཉམས་དེ།
འདོད་པ་ཞེས་བརྗོད་ཁུང་བུར་ལྷུང་བ་ཉིད། 14

ངེས་པར་མི་ཉམས་མིག་བཟང་ཡངས་པ་ནི།
ཀྱུད་པལ་སྔོན་པོའི་འདབ་མ་ལྟ་བུ་འདི།
ཆགས་པ་སྤོས་འགྲོའི་ཞུག་པའི་མཚོ་ཉིད་དེ།
གང་གིས་སྐྱུར་དུ་དབང་པོ་ཡོངས་ངལ་བྱེད། 15

स तस्य कालेन विनाशमक्ष्णो-
र्ज्ञात्वा मनीषी षड़भिज्ञचर्य्यः।
आगामिदुःखोद्धरणाय योगी
कारुण्ययोगी तमुवाच वृद्धः॥ १२॥

इदं तवापातनिमित्तभूतं
पश्यामि चित्तं विभवाभिभूतम्।
वयःसहायं कुसुमायुधस्य
वपुश्च लीलादलितेन्दुदर्पम्॥ १३॥

जात्यैव चक्षुश्चपलं किमन्य-
दस्मिन्ननास्थैव सुखोपपत्तिः।
एतेन क्षुष्टा स्वपथप्रनष्टाः
स्पृहाभिधाने कुहरे पतन्ति॥ १४॥

इदं हि नीलोत्पलपल्लवाभं
विलोचनं नाम नृणां विशालम्।
रागोरगच्छिद्रसमुद्रमेव
येनेन्द्रियाण्याशु परिस्रवन्ति॥ १५॥

ཚུལ་ཁྲིམས་མཐུ་ལས་གང་དག་ཉམས་ཀྱི་མིག།
མཛེས་པའི་བདང་བས་ཁྱད་པར་དུ་ངོམས་ཤིང་།
ཉམས་པར་གཡོ་བ་མིན་པ་དེ་དག་ཉིད།
སྙིང་སྟོབས་བརྟན་པ་དང་ལྡན་སྐལ་བ་བཟང་། 16

ཞེས་སོགས་དེ་ཡི་ཚིག་ནི་རབ་ཞི་བ།
ཉེ་བར་རྫོགས་པ་མི་བདག་ཐུས་ཐོས་ནས།
དེ་བཞིན་ཞེས་དེ་རབ་དང་ཡིད་ལ་བྲུས།
ཕྱག་འཚལ་ནས་ནི་རང་གི་གནས་སུ་སོང་། 17

དེ་ནས་བྱུང་བའི་ཚོགས་ནི་གླུ་ལེན་ཅིང་།
ཀིཾ་ཤུ་ཀ་དཔལ་ལི་ཁྲིམས་གྱིས་པ་འདྲ།
ཁྲིངས་ལྡན་མ་ཡི་ཁྲིངས་བ་འཇོམས་ཆས་པས།
*སྟོན་གྱི་དྲིས་སྤྱོས་གླང་པོ་ཅིག་འོངས་གྱུར། 18

སྙིད་ཚལ་འཁྲི་ཤིང་གསར་པའི་ཡལ་འདབ་དང་།
འབྲལ་པའི་གདུང་བ་གསོད་པའི་ཆ་ཤས་དག།
གསར་དུ་ཆགས་པས་རབ་བསྐྱེད་བཟོད་དཀའ་ཉིད།
འཕྲལ་ལ་ལྡན་ཅིག་ཉིད་དུ་གོས་པར་གྱུར། 19

* The translator has wrongly rendered the meaning of the word शरद् which signifies सप्तपेण flower.

धन्यास्त एवासमसत्त्वधीराः
शीलप्रभावान्न भवन्ति येषाम्।
लावण्यपानेन विशेषतृष्णा-
विघूर्णमानानि विलोचनानि॥ १६॥

इत्यादि तस्य प्रशमोपपन्न-
माकर्ण्य वाक्यं नरनाथसूनुः।
तथेति कृत्वा मनसि प्रपन्ने
कृतप्रणामः स्वपदं जगाम॥ १७॥

अथाययौ भृङ्गगणोपगीतः
सिन्दूरपूरायितकिंशुकश्रीः।
मनस्विनीमानवधानुबन्धी
मधुः शरत्सौरभमत्तनागः॥ १८॥

उद्यानवल्लीनवपल्लवानां
वियोगिनीतापविपल्लवानाम्।
बभूव वृद्धिः सहसा सहैव
प्रत्यग्ररागोद्गमदुःसहैव॥ १९॥

ཚམ་པ་ཀ་འདབ་རླུང་གིས་བསྐྱོད་པ་ཡིས།
སྙིང་ཡིག་གིས་ནི་བྱམས་པ་སྐྱེད་བྱེད་ཅིང་།
འདོད་དང་ལྡན་ཅིག་དབྱིད་ཀྱི་དང་པོ་ཡི།
མངོན་འབྱོར་རྒྱལ་བྱེད་བདག་འཛེམས་ཕྱོགས་སུ་གྲགས། 20

མེ་ཏོག་རབ་རྒྱས་དེ་དང་དེ་དག་ལས།
དབྱིད་ཀྱི་གཉེན་ལ་མཆོག་ཏུ་ཕན་པ་ནི།
གྲགས་པའི་རྣམ་པ་བྱུང་བའི་སྒྲ་སྒྲོགས་པའི།
ས་ཧ་ཀཱ་ར་ཉིད་ཀྱིས་བྱས་པར་གྱུར། 21

དབྱིད་ཀྱི་སྒྲོ་བའི་རྣམ་འཕྲུལ་དེ་ལ་ཡང་།
མི་ཡི་དབང་པོའི་བུ་དེ་དབེན་པར་ནི།
གནས་བརྟེན་གྱིས་ནི་མན་ངག་སེམས་པ་དག།
ས་སྐྱོང་བཙུན་མོ་སྐར་རྒྱལ་བསྲུང་བས་མཐོང་། 22

མ་ཉམས་ཟླ་བའི་འོད་ལྡན་ཡངས་པའི་མིག།
ཕྲག་མཐོ་བྲུས་མོར་ལག་པས་སྙིབ་དེ་ལ།
མཛད་པས་བསྟན་པའི་སྒྲོ་ཡི་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ།
མ་ཡི་ཆུན་མ་དེ་ཡིས་རབ་སྨྲས་པ། 23

वातेरितैश्चम्पकपत्त्रलेखैः
मैत्रीं समाह्वयतः स्मरेण ।
स पप्रथे दिक्षु धृतिप्रमाथी
चैत्रस्य जैत्रः प्रथमाभियोगः ॥ २० ॥

लसत्सु पुष्पेष्वपि तेषु तेषु
बभूव भूम्ना मधुबान्धवस्य ।
भृङ्गस्वनैर्गीतयशःप्रकारः
कृतोपकारः सहकार एव ॥ २१ ॥

तस्मिन् वसन्तोत्सवविभ्रमेऽपि
विचिन्तयन्तं स्थविरोपदेशम् ।
नरेन्द्रसूनुः विजने ददर्श
तं तिष्यरक्षा क्षितिपालपत्नी ॥ २२ ॥

अक्लीवचन्द्रद्युतिमायताक्षं
पीनांशमाजानुविलम्बबाहुम् ।
अभ्येत्य तं स्नेहरसार्द्रचित्ता-
यवीयसी सा जननी जगाद ॥ २३ ॥

कुमार पुष्पेषु नवावतारा
संसारसारः तव लोचनश्रीः ।
धृतिं हरत्येव न कस्य लोके
विशेषतः पेशल एष वेशः ॥ २४ ॥

उक्तेति तं सा सहसा भुजाभ्या-
मुत्सृज्य लज्जां दृढमालिलिङ्ग ।
प्रकम्पसिञ्जामुखरै[१] रसक्तं
निवार्यमाणाभरणैरिव स्वैः ॥ २५ ॥

पराप्यसौ मे जननी निजेव
वात्सल्यमाविष्कुरुते सदैव ।
ध्यात्वेति निःशङ्कमतिः स तस्याः
पादप्रणामानतशेखरोऽभूत् ॥ २६ ॥

मदोद्धतानां घनमोहकाले
प्रक्षोभितानां मकराङ्कपातैः ।
तरङ्गिणीनामिव नाङ्गनानां
श्वभ्रावपातेऽस्ति[२] मनाङ्गिरोधः ॥ २७ ॥

---

१ H and W2 सिञ्जा ।   २ W2 स्वभ्रावपाते ।

བབ་ཅོལ་ཅོལ་བ་ཉམས་པར་མ་བསྒོམས་པས།
སྒྲིག་པར་ལྷུང་ཚེ་དྲི་མས་འཛིགས་པ་བཞིན།
ཚུལ་ཁྲིམས་གཙང་མས་ཉམས་པར་བཏང་གྱུར་ཅིང་།
འདོད་པས་ཟིལ་མནན་དེ་ཡིས་དེ་ལ་སྨྲས། 28

བདག་གི་མཛའི་གཞོན་ནུ་ལང་ཚོ་མཚུངས།
ཁྱོད་ཀྱི་མ་ཡི་རྩུན་མ་བདག་མ་ཡིན།
ཁྱོད་ཀྱི་འཁྲུད་པས་འགྲོགས་འོས་བདག་གི་ལུས།
སྐལ་བཟང་ལོངས་སྤྱོད་འོས་འདི་སྟེན་པར་མཛོད། 29

དོན་དུ་གཉེར་བྲ་བྲུད་མེད་རང་ཉིད་ཀྱིས།
དོན་གཉེར་གང་དེ་ངོ་ཚ་མེད་ཉིད་དེ།
ཅི་བགྱིད་བཀའ་དྲིན་མཛོད་ཅིག་ཁྱོད་ལུས་དང་།
འགྲོགས་པ་ཡུན་རིང་བདག་གི་སྙིང་ལ་གཅགས། 30

ནུ་ངོས་དོ་ཤལ་འཁྲི་ཞིང་མདོན་དགའ་ཞིང་།
ཀེད་སྐབས་དཀྱིལ་འཁོར་དྲིལ་ཚུང་ལྡན་པ་ཡི།
བྲུད་མེད་སེན་མོ་འདེབས་པས་དབུལ་བ་ནི།
རབ་མཛེས་སྐལ་བཟང་མ་ཉེར་ཁྱེངས་མི་འགྱུར། 31

सा तं बभाषे मदनाभिभूता
प्रगल्भसंरम्भविशृङ्खलेन।
पापावपाते शुचिना कलङ्क-
भीत्येव शीलेन विमुच्यमाना॥ २८॥

प्रियोऽसि मे तुल्यवयाः कुमार
मातुः सपत्नी तव नास्मि माता।
इयं त्वदालिङ्गनसङ्गयोग्या
सौभाग्यभोग्यं भजतां तनुर्मे॥ २९॥

निर्लज्जतैषा परमर्थनीया
यदर्थयन्ते स्वयमेव नार्य्यः।
प्रसीद किं वा क्रियते त्वदङ्ग-
सङ्गश्चिरं मे हृदयेऽवसन्नः॥ ३०॥

स्तनस्थलं हारलताभिरामं
नितम्बविम्बं रसनासनाथम्।
स्त्रीणां नखोल्लेखदरिद्रमेति
नोन्निद्रशोभासुभगाभिमानम्॥ ३१॥

འཇིག་རྟེན་དག་ན་བུད་མེད་རང་བཞིན་གྱིས།
སེམས་ནི་ནོམ་གཡེངས་དགེ་མཚན་ལྡན་པ་དང་།
གསར་པ་འདོད་ལ་ཞེན་དུ་མངོན་ཕྱོགས་ཤིང་།
མིག་ཀྱང་མཛེས་པ་དག་ལ་སྤྲེད་ལྡན་མིན། 32

ཞེས་སྨྲས་རྒྱང་ལྟར་འདར་བའི་ལུས་ཅན་དེས།
མཆུ་འདབ་དཔལ་ནི་དབྱུགས་ཀྱིས་ཟིལ་མནན་ཅིང་།
རྫུལ་རྒྱུའི་མཆོད་རིས་རྣམས་བྲིས་ནོམ་འགྱུར་ནི།
འདོད་པས་ཉེར་བསྟན་རབ་ཚོགས་ལ་བར་བརྒྱང་། 33

ནོ་བ་ཉམས་བྲེད་གདུང་བའི་ཁབ་བཞིན་དེས།
དེ་ཡི་ཚིག་ནི་འགལ་བ་དེ་དག་ཐོས།
སྨིག་དེ་མིག་ལ་ཆགས་པ་འདོར་བ་བཞིན།
ས་ལ་བལྟ་ཞིང་གདོང་ནི་དུད་པར་གྱུར། 34

རི་དགས་རྟགས་ཅན་ལྟ་བུ་དེ་ཡི་བཞིན།
སྨིག་བའི་དྲི་མ་རབ་གྱིས་དེ་ནི་བལྟར།
གཞོན་ནུས་མ་བཟོད་འཕྲལ་ལ་ཡིད་འབྱུང་དང་།
ངོ་ཚས་བཞིན་གྱི་པདྨ་ཟུམ་པར་གྱུར། 35

नवाभिलाषातिशयोन्मुखानि
चित्तानि वातूलकुतूहलानि।
स्त्रीणां स्वभावेन भवन्ति लोके
लावण्यलुब्धानि च लोचनानि ॥ ३२ ॥

उक्तेति सा कम्पतरङ्गिताङ्गी
श्वासाभिभूताधरपल्लवश्रीः।
स्वेदाम्बुनश्यत्तिलकाधिकारं
स्मरोपदिष्टं प्रकटं बभार ॥ ३३ ॥

वाणीं विरुद्धां स निशम्य तस्या
स्तां तप्तसूचीमिव दीर्णकर्णाम्।
निरीक्षमाणः क्षितिमक्षिलग्नं
मुमोच तत् पापमिवावनम्रः ॥ ३४ ॥

तस्याः शशाङ्कोपममाननं तत्
समुन्मिषत्पापमलं कुमारः।
द्रष्टुं न सेहे सहसा विषाद-
लज्जानिमीलद्वदनारविन्दः ॥ ३५ ॥

དག་པར་བགྲི་སླད་དེ་ཡི་ཇོ་བ་བྱུང་།
མི་ཆུང་སྡིག་གྲོས་འདར་བས་བསྐྱོད་པ་ལས།
རིན་ཅེན་རབ་འབར་ཇོ་གྱིན་ལས་འཕྲུངས་པའི།
མཐུ་ལྡན་མེ་ནི་སྐད་ཅིག་ཞུགས་པ་བཞིན། 36

དེ་ཡི་ལག་པས་ཇོ་བ་བྱུང་བསྒྲིབས་ནས།
སྐད་ཅིག་འཁྲུད་པའི་སྐྱོན་ནི་ཞི་བའི་སླད།
ཡན་ལག་ཡན་ལག་འཁྲུད་པའི་གང་གཱ་བཞིན།
སོ་ཡི་འོད་ཟེར་དཀར་ལྡན་ཚིག་སྨྲོས་པ། 37

མ་མ་ཁྲོད་ཀྱིས་འདི་དག་སྨྲ་མི་འོས།
དམ་པའི་ལམ་ནས་སོང་ལ་ཚིག་དག་སྨོམས།
འཕྲུལ་ལ་ཡོངས་བདང་སྐབས་ཀྱི་ཚུལ་ཁྲིམས་ནི།
ཉམས་ཤིང་ཉམས་བར་གཡོ་བ་དབུགས་དབྱུང་མཛོད། 38

རིགས་དང་དག་མེད་གཞན་ནོར་འདོད་པ་དང་།
སྡིག་པ་རྗེས་འབྲེལ་ཡུལ་ལམ་མདོན་སྲིད་པ།
འདི་དག་སྒྲོག་ཆགས་ཉམས་པར་ལྷུང་དུས་སུ།
བསྐྱམས་པ་མེད་པའི་གནོད་པའི་སྒོ་དག་ཡིན། 39

अनल्पपापश्रवणप्रकम्पा-
द्विलोलरत्नोज्ज्वलकुण्डलोत्थम्।
तस्य क्षणं कर्णयुगं विशुद्ध्यै
प्रभावनं वह्निमिवाविवेश॥ ३६॥

स पाणिना श्रोत्रयुगं पिधाय
ससर्ज वाचं दशनांशुशुभ्राम्।
प्रक्षालयंस्तां क्षणमङ्गसङ्गां
गङ्गामिवालिङ्गनदोषशान्त्यै॥ ३७॥

मातर्न युक्तं तव वक्तुमेतत्
सद्वर्त्मना गच्छ नियच्छ वाचम्।
सद्यः परित्यागदशाविलोलं
शीलं समाश्वासय शीर्य्यमाणम्॥ ३८॥

दर्पः प्रमादः परवित्तवाञ्छा
पापानुबन्धी विषयाभिलाषः।
एतानि जन्तोर्विनिपातकाले
द्वाराण्यपायस्य निरर्गलानि॥ ३९॥

སྨྲིན་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས་ཉམས་ལ་ནོར་གྲིས་ཅི།
སྤྱང་བས་དབང་བྲུས་ཉམས་ལ་ཕྲོས་པས་ཅི།
ཡོན་ཏན་མཆོག་སྤྱངས་ཉམས་ལ་གཟུགས་ཀྱིས་ཅི།
ཚུལ་ཁྲིམས་བདང་བ་ཉམས་ལ་རིགས་ཀྱིས་ཅི། 40

མ་མ་གཡོ་བ་ཉིད་དག་ཐོང་ལ་མ་ཉམས་གྲགས་པའི་ཟླ་བ་མཛེས་པར་སྤྱངས།
ཚུལ་ཁྲིམས་དྲི་མེད་རིགས་ཀྱི་རྒྱུ་དག་སྐྱོངས་ཤིག་སྡིག་ལ་བློ་གྲོས་ཡོངས་མ་བྲིད།
རབ་འབར་དགྱུལ་བའི་མེ་ཡིས་འཚེད་ཅིང་འཁྲུགས་དེ་ཡི་དགས་རབ་ཏུ་གདུ་
བས་ཉེན།
སྡིག་ཅན་འཛིག་རྟེན་པ་རོལ་ལམ་ནི་ངེས་པར་ཉོན་མོངས་དག་གིས་འཁྲུགས་
པའི་ས། 41

ཞེས་པ་ས་བདག་སྨྲས་པོའི་ཚིག་ཐོས་ནས།
མི་བཟད་ཆགས་པའི་གདོན་ནི་དེས་མ་བདང་།
སྨོངས་པའི་སྨུན་ཅན་ཁྲིན་པའི་ཆུ་ནང་དུ།
ཆོས་ཀྱི་ཉིར་བསྟན་ཉི་མའི་འོད་མི་འདུག། 42

རབ་ཏུ་འཛེམས་བྱེད་ཡིད་སྐྱུབས་ས་བདག་གིས།
ཆོམ་ཀུན་མ་བཞིན་འཕྲུལ་ལ་གཟིར་གྱུར་དེ།
ཞུགས་རིངས་དལ་ཞིང་འཁྲུལ་པར་རྫོད་བྱེད་པས།
འབྲེལ་མེད་དོན་གྱི་ཆོ་ཊེ་དེ་དེ་སྨྲས། 43

धनेन किं दानपराङ्मुखाणां
श्रुतेन किं द्वेषवशीकृतानाम्।
रूपेण किं सद्गुणवर्जितानां
कुलेन किं शीलविनाशकानाम् ॥ ४० ॥

मातश्चञ्चलतां विमुञ्च रुचिरं रक्षाक्षयेन्दुं यशः
शीलं पालय पश्य वंशममलं पापे मतिं मा कृथाः।
स्फूर्ज्जन्नारकवह्निपाकविकलप्रेतप्रलापोत्कटाः
पापानां परलोकवर्त्मनि किल क्लेशाकुला भूमयः ॥ ४१ ॥

श्रुत्वेति वाक्यं क्षितिपात्मजस्य
रागग्रहं सा न मुमोच तीव्रम्।
मोहान्धकूपस्य जनस्य नान्त-
र्धर्म्मोपदेशार्ककरा विशन्ति ॥ ४२ ॥

चोरीव सा मन्मथपार्थिवेन
प्रमाथिना प्रव्यथिता प्रसह्य।
श्वासप्रयासस्खलिताभिधान-
मसङ्गतार्थं प्रललाप तत्तत् ॥ ४३ ॥

ཉོལ་གནས་ཉེར་བསྟན་ཁྱོད་ཀྱིས་བྱེད་པ་འདི།
འདོད་པས་གཟིར་བ་བདག་གིས་འགའ་མི་ཐོས།
ལྷག་པར་རབ་འབར་འདོད་པའི་མེ་ཡི་ཚོགས།
གྲིས་པ་ཚིག་གིས་རབ་ཏུ་ཞི་མི་འགྱུར། 44

ཡུལ་ན་བསིལ་བའི་ཆུ་སྤྲིན་འགྲུབ་མོད་ཀྱང་།
སྐྱ་ངམ་ཐང་ཉམས་དག་ནི་གདུང་བར་འགྱུར།
ཉི་མ་ཤར་ཡང་ཆགས་པས་གཟིར་ཉམས་ལ།
ཕྱོགས་མཚམས་ཉམས་ནི་འཇིགས་རུང་མུན་པ་ཡིན། 45

གདུང་བའི་བུད་མེད་བསྐྱངས་ལ་ཆོས་ཅི་ཡང་།
གལ་ཏེ་བརྩེ་ལྡན་ཁྱོད་ལ་མེད་ན་ནི།
དམ་པ་ཉམས་ཀྱིས་གུས་བར་བསྟན་པ་དེ།
མེད་པ་ལ་ཡང་ཆོས་མིན་ཇི་ལྟར་ཡོད། 46

གང་ཕྱོ་ཉོལ་གནས་བསིལ་བ་དེ་དག་ལ།
བདེ་སྐྱད་བརྟེན་པ་ཆོས་འདི་ཚད་མ་སྟེ།
ཞེན་པས་གཟིར་ཅིང་ཡང་དག་གདུངས་ཉམས་ལ།
བཀག་པའི་བྱ་བ་ལ་ཡང་སྤྱོད་པ་ཅི། 47

स्वस्थोपदेशः क्रियते त्वयायं
स्मरार्दिताहं न शृणोमि किञ्चित् ।
नायाति वाग्भिः प्रशमं विशाल-
ज्वालाकलापः प्रबलः स्मराग्निः ॥ ४४ ॥

देशे स्खलन्निर्झरशीतलेऽपि
भवन्ति तप्तानि मरुस्थलानि ।
रागातुराणामुदयेऽपि भानो-
र्घोरान्धकाराणि दिगन्तराणि ॥ ४५ ॥

नास्त्येव तप्तामबलां दयालोः
संरक्षतस्ते यदि कोऽपि धर्म्मः ।
तत्साधुभिर्दर्शितगौरवस्य
तस्याप्यभावे कथमस्त्यधर्म्मः ॥ ४६ ॥

ये शीतलाः स्वस्थधियः सुखाय
तेषां प्रमाणं स्थिर एष धर्म्मः ।
सन्तापितानां व्यसनातुराणां
निषिद्धकार्य्येष्वपि को विचारः ॥ ४७ ॥

དེ་ཉིད་ཀྱིས་ནི་སྡིག་པ་དང་བོར་བླངས།
བདག་ཡོངས་བསྐྱངས་པས་ཁྱོད་ལ་ཆོས་སུ་འགྱུར།
རིག་པ་རི་བོང་ཅན་ལྟར་བསིལ་པ་ཡིས།
རྒྱུན་དུ་གདུང་བས་ཉེན་བདག་བདེ་བར་མཛོད། 48

གདུང་བ་འཕྲོག་བྱེད་ཟླ་བ་དང་ནི་མི་བཟད་སྨན་པ་ཉམས་བྱེད་ཉི་མ་དང་།
ཉིན་དང་མཚན་མོར་གྱང་བའི་ཉོན་མོངས་ཞི་བྱེད་མེ་ལ་སྡིག་པའི་འབྲས་བུ་ཅི།
གདུང་བས་གཟིར་བ་བསྐྱང་བ་དང་མཉམ་ལས་བཟང་ཆོས་ནི་གང་དུ་ཅི་ཞིག་མཐོང་།
བསྟན་བཅོས་མཐའ་དག་ཤེས་པ་ཁྱོད་ཀྱིས་གང་འདི་བདེན་པར་གསལ་བ་ཉིད་དུ་
སྨྲོས། 49

ཡུལ་འདི་སྐྱེ་བོས་སྤངས་ཤིང་ལེགས་པར་བསྐྲིབས།
དབེན་པ་འབྲེད་པ་སུ་ཡང་མེད་པ་འདིར།
རང་འདོད་དུ་འཇུག་མཛའ་བས་དུད་པ་ཡི།
བྲུད་མེད་དར་མ་སྐལ་ལྡན་ཉིད་ལ་འགྱུར། 50

བྲུད་མེད་དགའ་མགུས་ཡོངས་སུ་ཚོམས་ཉམས་ཀྱིས།
བཞིན་གྱི་པདྨ་འགྲམ་པའི་འདབ་དམན་བཞིན།
མཆུ་ཉམས་ལན་བུ་འཁྲུགས་ཤིང་རྩོལ་གྱི་ནི།
ཐིགས་བས་བརླན་ཆགས་སྐལ་ལྡན་ཉམས་ཀྱིས་མཐོང་། 51

मयैव पापं प्रथमं गृहीतं
धर्म्मोऽस्ति ते मत्परिरक्षणेन ।
स्पर्शेन निर्वापय सन्ततां मे
सन्तापजार्त्तिं शशिशीतलेन ॥ ४८ ॥

सन्तापं हरतो विधोः क्षपयतस्तीव्रं तमो भास्वतः
शीतक्लेशमहर्निशं शमयतः पापं किमग्नेः फलम् ।
ब्रूहि ज्ञातसमस्तशास्त्र यदिवा सत्यं त्वमेव स्फुटं
दृष्टः किं व्यसनार्त्तरक्षणसमः सत्कर्म्मधर्म्मः क्वचित् ॥ ४९ ॥

रहस्यभेदोऽत्र न कश्चिदस्ति
जनोज्झितः संवृत एष देशः ।
स्वेच्छाप्रवृत्तप्रणयोपनम्राः
प्रौढाङ्गना भाग्यवतां भवन्ति ॥ ५० ॥

क्लिष्टाधरं क्लान्तकपोलपत्त्रं
स्रस्तालकं स्वेदलवार्द्ररागम् ।
नितम्बिनीनां रतितोषितानां
पश्यन्ति धन्या वदनारविन्दम् ॥ ५१ ॥

བྱད་མེད་ཆེད་དུ་རྒྱ་སྤྲིན་ཁྲིམས་པའི་ཚོགས།
འཛིགས་རྫུང་རྒྱ་སྤྲིན་འབྲུང་གནས་འཛིངས་སྲུ་འགའ།
རལ་གྲིའི་འཁྲི་ཤིང་གཡོ་བའི་ལྷེ་ལྡན་པ།
གཡུལ་ངོ་དུས་ཀྱི་འཁོར་ནི་གཞན་དག་འཇུག།

ཕུན་རིང་ཉོན་མོངས་ཁྲུད་པར་ཆེ་གདུང་བས།
ནོར་ཉམས་ལ་ནི་སྐྱེས་བུ་མཆོག་དུ་འབད།
ནོར་ནི་ཡོངས་འཛིན་ཆོས་ཀྱི་དོན་ཉིད་དེ།
ཆོས་ཀྱི་འབྲས་བུ་མཆོག་ནི་འདོད་པར་བརྗོད།

ཉམ་པ་མང་པོས་དེ་སྐད་སྨྲ་བྱེད་ཅིང་།
འཁྲུགས་པ་དེ་ལ་གཞོན་ནུས་རབ་སྨྲས་པ།
མ་མ་ཚོགས་གསུམ་གཙོ་བོའི་འབྲས་བུ་ནི།
དགེ་བའི་ལྷེ་བ་ཙ་བ་དང་བཅས་ཆོས།

སྐྱེ་བོ་མེད་པར་སྡིག་པ་སྨྲས་མི་འགྲུར།
འདིར་ནི་དཔང་པོ་སྣང་མིན་མགྲོ་རིམས་ཚོགས།
གྲོགས་ཀྱི་དངོས་པོར་གྱུར་པའི་གྲིབ་མས་ཀྱང་།
རྒྱང་མས་བཞིན་དུ་སྐྱེ་བོའི་ཐམས་ཅད་རིག།

विशन्ति केचित् करवालवल्ली-
विलोलजिह्वं रणकालवक्त्रम् ।
योषित्कृते क्रोधननक्रचक्र-
करालमन्ये मकराकरौघम्[१] ॥ ५२ ॥
52

तीव्रैश्चिरक्लेशविशेषशोषै-
रर्थेषु पुंसां परमः प्रयत्नः ।
धर्म्मार्थ एवार्थपरिग्रहोऽयं
धर्म्मस्य कामं फलमग्रमाहुः ॥ ५३ ॥
53

इति ब्रुवाणां बहुभिः प्रकारै-
स्तामब्रवीदाकुलितां कुमारः ।
मातस्त्रिवर्गस्य फलं समूलं
धर्म्मः प्रधानं कुशलस्य नाभिः ॥ ५४ ॥
54

न निर्जने पापमुपैति गुप्ति-
मन्तर्हितः स्वर्गिगणोऽत्र साक्षी ।
छाया प्रयाता हि सहायभावं
जायेव जानाति जनस्य सर्व्वम् ॥ ५५ ॥
55

१ W1 मकरालयोऽयम् ।

དབེན་པར་བྲིས་པའི་ལས་འབྲས་ངེས་པར་སྨིན།
ལས་ཉམས་འབྲས་བུ་རབ་ཉམས་ཡོད་མ་ཡིན།
མྱུན་ནག་དབེན་པར་དུག་ནི་འཐུངས་བ་ན།
སྲོག་ཉམས་མི་བཟད་འགྲོག་པ་མིན་ནམ་ཅི། 56

རིགས་ཀྱི་བུད་མེད་སྲིག་པའི་མཚན་མར་གྱུར།
དེ་ལའང་འཛིགས་རྫུང་གཞན་གྱི་བུད་མེད་འགྲོགས།
འཐབ་མོ་ལ་སྨོངས་མ་ཞེས་མཐོན་སྨྲར་བའི།
རང་གི་ཆུང་མར་སྐྱེ་གཞན་ཡང་མི་རིག། 57

དེ་ལྟར་དོན་གཉེར་ཉམས་པས་ཕྱིར་ཕྱོགས་ཤིང་།
དེ་ཡི་སྐད་པས་ཤིན་དུ་གདུངས་གྱུར་དེ།
ཁྱོད་ཀྱི་མིག་དྲིགས་ངེས་པར་བདག་གིས་འཐོག།
ཅེས་སྨྲས་སྲིག་ཅན་མ་དེ་རང་གནས་སོང་། 58

དེ་ནས་གྲོང་ཁྱེར་རྡོ་འཛོག་ཅེས་པར་ནི།
ས་བདག་གླང་པོའི་ནོ་བ་ཞེས་བྱ་བ།
འདུལ་དུ་གཞོན་ནུ་དཔུང་གི་དུལ་ཆུབ་ཚོགས།
ཉེ་མ་འཕམ་བྱེད་ལྡན་པར་གྱུལ་པོས་བཏང་། 59

रहःकृतं कर्म्म फलत्यवश्यं
न कर्म्मणामस्ति फलप्रणाशः ।
विषं निपीतं विजनान्धकारे
प्राणेषु किं न प्रहरत्यसह्यम् ॥ ५६ ॥

जात्या स्त्रियः पापनिमित्तभूता-
स्तत्रापि घोरः परदारसङ्गः ।
मातेति मोहात्कलहेऽभियुक्तां
नान्तेऽपि जन्तुः स्पृशति स्वकान्ताम् ॥ ५७ ॥

इत्यर्थनाभङ्गपराङ्मुखी सा
तिरस्कृता तेन नितान्ततप्ता ।
हरामयवश्यं तव नेत्रदर्प-
मुक्तेति पापा स्वपदं जगाम ॥ ५८ ॥

ततः पुरं तक्षशिलाभिधानां
महीपतेः कुञ्जरकर्णनाम्नः ।
सेनारजःपुञ्जविनिर्जितार्कं
जेतुं कुमारं विससर्ज राजा ॥ ५९ ॥

གྲོང་དེར་དེས་ཕྱིན་གླང་པོའི་སྲུན་པ་ཡིས།
མ་ལུས་ཕྱོགས་བཟུང་ཡོངས་སུ་བསྐོར་ཏེ་གནས།
གླང་པོ་དཔའ་སྒྲ་ཆུ་གཏེར་བསྒྲོད་པ་ལྟར།
ཟབ་པས་སྒྲིད་པ་ནིམ་གཉིས་བྲིད་པ་བཞིན། 60

དེ་ནས་ཛོ་འཛོག་རྒྱལ་པོས་རྒྱལ་སྲས་ལ།
སྤྱི་བོས་ཕྱག་འཚལ་རབ་ཏུ་དང་བར་བྱས།
གླང་པོ་དེ་དང་རིན་ཆེན་དག་གིས་མཆོད།
བློ་ལྡན་རང་གིས་རང་གི་རྒྱལ་སར་བོས། 61

དེར་ནི་དེ་ཡིས་དགའ་བའི་རིམ་གྲོ་ཡིས།
གུས་པས་ཉེ་བར་བསྟེན་ཅིང་རྒྱལ་སྲས་དེ།
སྤྲིན་ཚོགས་གཞོན་ནུ་གསལ་བ་རབ་རྒྱས་བས།
ཏྲི་མར་བཅས་པའི་ཉིན་ནམས་རབ་ཏུ་གནས། 62

སྐབས་དེར་བྲུ་ཡི་བཞིན་རས་པད་མོ་དག།
བལྟ་བར་ཡིད་ལ་རབ་ཏུ་འདོད་པ་ཡི།
ས་བདག་ལྟོ་བར་ཚ་བ་བཅིངས་པའི་ནང་།
བྱུང་བར་གྱུར་ཏེ་བསམས་པས་བཅིངས་པས་བཞིན། 63

Title	Rs.	As.
Prithiráj Rásau, (Text) Part I, Fasc. I, Part II, Fasc. I—V @ /6/ each	2	4
Ditto (English) Part II, Fasc. I	0	12
Prákrita Lakshaṇam, (Text) Fasc. I ... ... Rs.	1	8
Parásara Smriti, (Text) Vol. I, Fasc. 1—8; Vol. II, Fasc. 1—6; Vol. III, Fasc. 1—4 @ /6/ each	6	12
Paráśara, Institutes of (English)	0	12
S'rauta Sútra of Ápastamba, (Text) Fasc. I—XII @ /6/ each ...	4	8
Ditto Látyáyana, (Text) Fasc. I—IX @ /6/ each	3	6
Ditto S'ánkháyana, (Text) Vol. I, Fasc. 1-7; Vol. II, Fasc. 1—4 @ /6/ each	4	2
*Sáma Veda Saṃhitá, (Text) Vols. I, Fasc. 5—10; II, 1—6; III, 1—7; IV, 1—6; V, 1—8, @ /6/ each Fasc.	12	6
Saṅkhya Sutra Vritti, (Text) Fasc. I—IV @ /6/ each	1	8
Ditto (English) Fasc. I & II	1	8
*Sankara Vijaya, (Text) Fasc. II and III @ /6/ each	0	12
*Sánkhya Pravachana Bháshya, Fasc. III (English preface only) ...	0	6
S'ri Bháshyam, (Text) Fasc. I—III @ /6/ each	1	2
Suśruta Saṃhitá, (Eng.) Fasc. I & II @ /12/ each	1	8
Taittiríya Áraṇya, (Text) Fasc. II—XI @ /6/ each	3	12
* Ditto Saṃhita, (Text) Fasc. IX—XXXVI @ /6/ each	10	8
Táṇḍya Bráhmaṇa, (Text) Fasc. I—XIX @ /6/ each	7	2
Tattva Chintámaṇi, (Text) Vol. I, Fasc. 1—9, Vol. II, Fasc. 1—10 @ /6/ each	7	2
Tul'si Sat'saí, (Text) Fasc. I—IV @ /6/ each	1	8
*Uttara Naishada, (Text) Fasc. III, V—XII @ /6/ each	3	6
Uvásagadasáo, (Sanskrit and English) Fasc. I—VI @ /12/ ...	4	8
Varáha Purána, (Text) Fasc. I—XIII @ /6/ each	4	14
Váyu Puráṇa, (Text) Vol. I, Fasc. 2—6; Vol. II, Fasc. 1—7, @ /6/ each Fasc.	4	8
Vishṇu Smriti, (Text) Fasc. I—II @ /6/ each	0	12
Vivádaratnákara, (Text) Fasc. I—VII @ /6/ each	2	10
Vrihannáradiya Purána, (Text) Fasc. I—VI @ /6/	2	4

Tibetan Series.

Title	Rs.	As.
Pag-Sam Thi S'iṅ, Fasc. 1—2 @ 1/ each	2	0
Sher-Phyin, Vol. I, Fasc. 1—5; Vol. II, Fasc. 1—2 @ 1/ each ...	7	0
Rtogs brjod dpag ḥkhri S'iṅ (Tib. & Sans.) Vol. I, Fasc. I—III; Vol. II, Fasc. I @ 1/ each	4	0

Arabic and Persian Series.

Title	Rs.	As.
'Álamgírnámah, with Index, (Text) Fasc. I—XIII @ /6/ each ...	4	14
Áin-i-Akbari, (Text) Fasc. I—XXII @ 1/ each...	22	0
Ditto (English) Vol. I, Fasc. I—VII, Vol. II, Fasc. 1—5, Vol. III Fasc. I	22	12
Akbarnámah, with Index, (Text) Fasc. I—XXXVII @ 1/ each ...	37	0
Arabic Bibliography, by Dr. A. Sprenger	0	6
Bádshánámah with Index, (Text) Fasc. I—XIX @ /6/ each ...	7	2
Catalogue of the Persian Books and Manuscripts in the Library of the Asiatic Society of Bengal. Fasc. I & II	2	0
Dictionary of Arabic Technical Terms, and Appendix, Fasc. I—XXI @ 1/ each	21	0
Farhang-i-Rashídí (Text), Fasc. I—XIV @ 1/ each	14	0
Fihrish-i-Túsí, or, Túsy's list of Shy'ah Books, (Text) Fasc. I—IV @ /12/ each	3	0
Futúḥ-ul-Shám Waqidí, (Text) Fasc. I—IX @ /6/ each	3	6
Ditto Azádí, (Text) Fasc. I—IV @ /6/ each	1	8
Haft Asmán, History of the Persian Mansawi, (Text) Fasc. I ...	0	12
History of the Caliphs, (English) Fasc. I—VI @ /12/ each ...	4	8
Iqbálnámah-i-Jahángiri, (Text) Fasc. I—III @ /6/ each	1	2
Isabáh, with Supplement, (Text) 51 Fasc. @ /12/ each	38	4
Maásir-ul-Umara, Vol. I, Fasc. 1—9, Vol. II, Fasc. 1—9; Vol. III, 1-10 @ /6/ each	10	8
Magházi of Wáqidí, (Text) Fasc. I—V @ /6/ each	1	14
Muntakhab-ul-Tawáríkh, (Text) Fasc. I—XV @ /6/ each	5	12

* The other Fasciculi of these works are out of stock, and complete copies cannot be upplied.

Muntakhab-ul-Tawárikh, (English) Vol. II, Fasc. 1—5 @ /12/ each ... 3 10
Muntakhab-ul-Lubáb, (Text) Fasc. I—XIX @ /6/ each ... Rs. 7 2
Ma'ásir-i-'Álamgiri, (Text) Fasc. I—VI @ /6/ each 2 4
Nokhbat-ul-Fikr, (Text) Fasc. I 0 6
Nizámi's Khiradnámah-i-Iskandari, (Text) Fasc. I and II @ /12/ each 1 8
Riyázu-s-Salatin, (Text) Fasc. I—IV @ /6/ each ... 1 8
*Suyúty's Itqán, on the Exegetic Sciences of the Koran, with Supplement, (Text) Fasc. II, VII—X @ 1/ each 5 0
Tabaqát-i-Násiri, (Text) Fasc. I—V @ /6/ each 1 14
Ditto (English) Fasc. I—XIV @ /12/ each ... 10 8
Tárikh-i-Firúz Sháhi of Zia-al-din Barni, (Text) Fasc. I—VII @ /6/ each 2 10
Tárikh-i-Baihaqi, (Text) Fasc. I—IX @ /6/ each ... 3 6
Tárikh-i-Firozsháhi, of Shams-i-Siráj Aif, (Text) Fasc. I—V @ /6/ each 1 14
Ten Ancient Arabic Poems, Fasc. I 1 6
Wis o Rámin, (Text) Fasc. I—V @ /6/ each 1 14
Zafarnámah, Vol. I, Fasc. 1—9, Vol. II, Fasc. 1—8 @ /6/ each ... 6 6
Tuzuk-i-Jahángiri, (Eng.) Fasc. I 0 12

ASIATIC SOCIETY'S PUBLICATIONS.

1. Asiatic Researches. Vols. VII, IX to XI; Vols. XIII and XVII, and Vols. XIX and XX @ 10/ each ... Rs. 80 0
   Ditto Index to Vols. I—XVIII 5 0
2. Proceedings of the Asiatic Society from 1865 to 1869 (incl.) @ /6/ per No.; and from 1870 to date @ /8/ per No.
3. Journal of the Asiatic Society for 1843 (12), 1844 (12), 1845 (12), 1846 (5), 1847 (12), 1848 (12), 1850 (7), 1851 (7), 1857 (6), 1858 (5), 1861 (4), 1862 (5), 1864 (5), 1865 (8), 1866 (7), 1867 (6), 1868 (6), 1869 (8), 1870 (8), 1871 (7), 1872 (8), 1873 (8), 1874 (8), 1875 (7), 1876 (7), 1877 (8), 1878 (8), 1879 (7), 1880 (8), 1881 (7), 1882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 1885 (6), 1886 (8), 1887 (7), 1888 (7), 1889 (10), 1890 (11), @ 1/8 per No. to Subscribers and @ 2/ per No. to Non-Subscribers.

N. B. *The figures enclosed in brackets give the number of Nos. in each Volume.*

4. Centenary Review of the Researches of the Society from 1784—1883 ... 3
   General Cunningham's Archæological Survey Report for 1863—64 (Extra No., J. A. S. B., 1864) 2 0
   Theobald's Catalogue of Reptiles in the Museum of the Asiatic Society (Extra No., J. A. S. B., 1868) 2 0
   Catalogue of Mammals and Birds of Burmah, by E. Blyth (Extra No., J. A. S. B., 1875) 4 0
   Introduction to the Maithili Language of North Bihár, by G. A. Grierson, Part II, Chrestomathy and Vocabulary (Extra No., J. A. S. B., 1882) 4 0
5. Anis-ul-Musharrahin 3 0
6. Catalogue of Fossil Vertebrata 3 0
7. Catalogue of the Library of the Asiatic Society, Bengal 3 8
8. Istiláhat-us-Súfiyah, edited by Dr. A. Sprenger, 8vo. 1 0
9. Inayah, a Commentary on the Hidayah, Vols. II and IV, @ 16/ each ... 32 0
10. Jawámi-ul-'ilm ir-riyázi, 168 pages with 17 plates, 4to. Part I ... 2 0
11. Khizanat-ul-'ilm 4 0
12. Mahabharata, Vols. III and IV, @ 20/ each 40 0
13. Modern Vernacular Literature of Hindustani by G. A. Grierson. (Extra No., J. A. S. B., 1888) 4 0
14. Moore and Hewitson's Descriptions of New Indian Lepidoptera, Parts I—III, with 8 coloured Plates, 4to. @ 6/ each 18 0
15. Sharaya-ool-Islám 4 0
16. Tibetan Dictionary by Csoma de Körös 10 0
17. Ditto Grammar ,, ,, ... 8 0
18. Vuttodaya, edited by Lt.-Col. G. E. Fryer 2 0

Notices of Sanskrit Manuscripts, Fasc. I—XXV @ 1/ each ... 25 0
Nepalese Buddhist Sanskrit Literature, by Dr. R. L. Mitra ... 5 0

N.B. All Cheques, Money Orders, &c., must be made payable to the "Treasurer Asiatic Society" only.

BIBLIOTHECA INDICA:

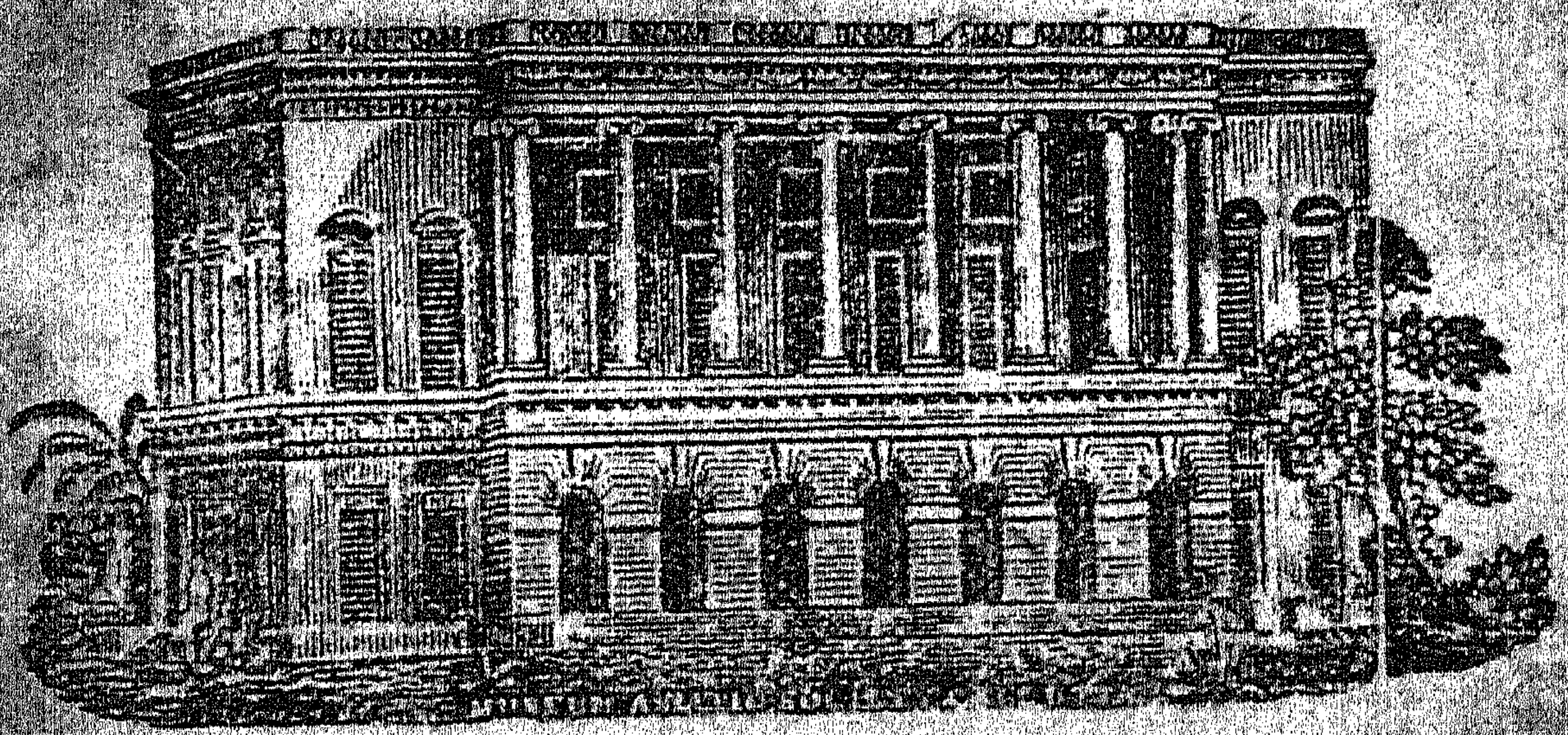
A

COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

NEW SERIES, No. 848.



AVADÁNA KALPALATÁ.

WITH ITS TIBETAN VERSION

NOW FIRST EDITED

BY

ÇARAT CANDRA DÁS, C. I. E.,

ASSOCIATE MEMBER, AS. SOC., BENG.

AND

PANDIT HARI MOHAN VIDYÁBHU'SHANA,

ORIENTAL LIBRARIAN, AS. SOC., BENG.

VOL. II, FASC. III.

CALCUTTA:

PRINTED AT THE BAPTIST MISSION PRESS,

AND PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY, 57, PARK STREET.

1894.

LIST OF BOOKS FOR SALE

AT THE LIBRARY OF THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL,

No. 57, PARK STREET, CALCUTTA,

AND OBTAINABLE FROM

THE SOCIETY'S AGENTS, MESSRS. KEGAN PAUL, TRENCH, TRÜBNER & CO., LD.

PATERNOSTER HOUSE, CHARING CROSS ROAD, LONDON, W. C., AND

MR. OTTO HARRASSOWITZ, BOOKSELLER, LEIPZIG, GERMANY.

*Complete copies of those works marked with an asterisk * cannot be supplied—some of the Fasciculi being out of stock.*

BIBLIOTHECA INDICA.

Sanskrit Series.

Title		Rs.	As.
Advaita Brahma Siddhi, (Text) Fasc. 1–4 @ /6/ each ...	Rs.	1	8
*Agni Purána, (Text) Fasc. 2–14 @ /6/ each	...	4	14
Aitareya Aranyaka of the Rig Veda, (Text) Fasc. 1–5 @ /6/ each	...	1	14
Aitareya Brahmana, Fasc. 1	...	0	6
Anu Bhashyam, (Text) Fasc. 1–2	...	0	12
Aphorisms of Ṣándilya, (English) Fasc. 1	...	0	6
Ashtasáhasriká Prajnapáramitá, (Text) Fasc. 1–6 @ /6/ each	...	2	4
Aśvavaidyaka, (Text) Fasc. 1–5 @ /6/ each	...	1	14
Avadána Kalpalatá, (Sans. and Tibetan) Vol. I, Fasc. 1–4; Vol. II. Fasc. 1–3 @ 1/	...	7	0
*Bhámati, (Text) Fasc. 2–8 @ /6/ each	...	2	10
Brahma Sútra, (English) Fasc. 1	...	0	12
Brihaddevata (Text) Fasc. 1–4 @ /6/ each	...	1	8
Brihadharma Purána, (Text) Fasc. 1–4 @ /6/ each ...	...	1	8
Brihataranyaka Upanishad (English) Fasc. 2–3 @ /6/ each	...	0	12
Chaitandya-Chandrodaya Nátaka, (Text) Fasc. 2–3 @ /6/ each	...	0	12
*Chaturvarga Chintamani (Text) Vols. II, 1–25; III. Part I, Fasc. 1–18. Part II, Fasc. 1–9 @ /6/ each	...	19	8
*Chhándogya Upanishad, (English) Fasc. 2	...	0	6
*Hindu Astronomy, (English) Fasc. 2–3 @ /6/ each ...	...	0	12
Kála Mádhaba, (Text) Fasc. 1–4 @ /6/ each	...	1	8
Kátantra, (Text) Fasc. 1–6 @ /12/ each	...	4	8
Katha Sarit Ságara, (English) Fasc. 1–14 @ /12/ each ...	...	10	8
Kúrma Purana, (Text) Fasc. 1–9 @ /6/ each	...	3	6
*Lalita-Vistara, (Text) Fasc. 3–6 @ /6/ each	...	1	8
Ditto (English) Fasc. 1–3 @ /12/ each ...	...	2	4
Madana Párijáta, (Text) Fasc. 1–11 @ /6/ each... ...	...	4	2
Manutiká Sangraha, (Text) Fasc. 1–3 @ /6/ each ...	...	1	2
*Márkandeya Purána, (Text) Fasc. 4–7 @ /6/ each ...	...	1	8
Márkandeya Purána, (English) Fasc. 1–3 @ /12 each ...	...	2	4
*Mimánsá Darsana, (Text) Fasc. 3–19 @ /6/ each ...	...	6	6
Nárada Smriti, (Text) Fasc. 1–3 @ /6/	...	1	2
Nyayavártika, (Text) Fasc. 1–2	...	0	12
*Nirukta, (Text) Vol. I, Fasc. 4–6; Vol. II, Fasc. 1–6; Vol. III, Fasc. 1–6; Vol. IV, Fasc. 1–8 @ /6/ each	...	8	10
*Nitisára, or The Elements of Polity, By Kámandaki, (Sans.) Fasc. 2–5 @ /6/ each	...	1	8
Nyayabindutika, (Text)	...	0	10
Nyaya Kusumánjali Prakarana (Text) Vol. I, Fasc. 1–6; Vol. II, Fasc. 1–2 @ /6/ each	...	3	0
Parisishta Parvan, (Text) Fasc. 1–5 @ /6/ each	...	1	14

स तां पुरीं प्राप्य गजान्धकार-
ग्रस्ताखिलाशः परिवार्य्य तस्थौ ।
क्षुब्धाब्धिधीरैर्भटकुञ्जराणां
द्विधेव कुर्व्वन् भुवनं निनादैः ॥ ६० ॥

ततः प्रसाद्य प्रणिपत्य मूर्द्ध्ना
नृपात्मजं तक्षशिलाधिनाथः ।
गजाश्वरत्नैरभिपूज्य धीमान्
स्वराजधानीं स्वयमानिनाय ॥ ६१ ॥

प्रियोपचारैरभिपूज्यमान[१]-
स्तेनादरात्तत्र स राजपुत्रः ।
दिनेषु तस्थौ घनयौवनार्द्र-
समुल्लसन्मेघमलीमसेषु ॥ ६२ ॥

अत्रान्तरे पुत्रमुखारविन्द-
सन्दर्शनोत्कण्ठितमानसस्य ।
चिन्तानुबन्धादिव भूमिभर्त्तु-
र्व्याधिर्बभूवोदरबद्धमूत्रः ॥ ६३ ॥

---

१ W_1 and W_2 °रुपसेव्यमानः ।

སྣ་ཚོགས་སྨན་བསམ་བསམ་གཏན་སྒྲུབ་བྱེད་ཅིང་།
ནད་གསོས་མིན་པར་རྟོགས་པའི་ནོལ་འཁྲོར་དང་།
ཐེ་ཚོམ་གྲིས་ནི་བཞིན་ལོག་མཐོང་གྱུར་པའི།
སྨན་པས་ཐོ་བྲང་ཁང་པར་རབ་ཏུ་བསྐོར། 64

སྲུ་ངན་འཛིགས་པས་བཞིན་དུ་དྲིལ་ཆུང་སྟེ།
སྨྲ་བཅད་དུ་གནས་བཙུན་མོའི་ཚོགས་རྣམས་ནི།
རི་མོ་བྲིས་པའི་རྣམ་པ་དང་མཚུངས་ལ།
བརྙེན་པའི་གཡོ་མེད་མིག་གིས་ལྟ་བར་བྱེད། 65

དལ་བུ་དལ་བུར་ངོ་ཡབ་འདབ་མ་ནི།
ཉེར་འཁོད་མཛེས་པའི་ལག་པས་རྣམ་བསྐྱོད་པ།
སྲུ་ངན་གྱིས་འཁྲུགས་ཤུགས་རིངས་བསྐྱེན་པ་ཡིས།
ཡོངས་སྲུ་དཀར་བ་ལྟ་བུས་གཡོབ་པ་དེ། 66

ཆུ་གྲང་ལྡན་པའི་བུམ་པར་མིག་གདད་ཅིང་།
བསྣ་བའི་བདུང་བ་དག་ལ་ཉིན་ཡོག་བསྐྱེད།
གཉིད་ནི་དགག་པའི་ཁྲོ་བ་རབ་རྫོགས་ཤིང་།
ཕན་པའི་ཉེར་བསྟན་དག་ལ་ཆགས་བྲལ་ཞུགས། 67

वैद्यैर्वृतोऽन्तःपुरधाम्नि नाना-
भैषज्यचिन्ताविहितावधानैः।
असाध्यरोगावगमाभियोग-
सन्देहसन्दर्शितखेदवक्त्रैः ॥ ६४ ॥

उद्वेगभीत्येव निषद्यमान-
काञ्चीकलापेन वधूगणेन।
चित्रार्पिताकारतुलाश्रितेन
निष्पन्दनेत्रेण विलोक्यमानः ॥ ६५ ॥

आसन्नकान्ताकरमन्दमन्द-
विस्पन्दिना चामरपल्लवेन।
उच्छ्वासभाजा परिपाण्डुरेण
शोकाकुलेनेव स वीज्यमानः ॥ ६६ ॥

शीताम्बुभृङ्गारनिविष्टदृष्टिः
कषायपाने विहितावमानः।
निद्रानिषेध-प्रतिपन्नकोपः
पथ्योपदेश-प्रविशद्विषादः ॥ ६७ ॥

ཉི་སྣང་བཅས་པའི་སྐབས་ཐོབ་ལུས་ལ་ཡང་།
སྨད་འོས་རང་བཞིན་ཆགས་བྲལ་གྲིས་སྨོད་ཅིང་།
བཙུན་མོའི་ནུ་མའི་བར་དུ་མགོ་བཞག་པའི།
སྐད་གདངས་ཞན་པ་ས་བདག་གིས་སྨྲས་པ། 68

རིག་བྲུ་རྫོགས་པའི་སྨན་པས་དེང་ཡང་ཏི།
གདུང་བ་སྐྲིད་བྱེད་བདེན་མེད་དཔྱད་ཀྱིས་ཏི།
བདེ་མེད་ལས་ཀྱིས་ཡོངས་སུ་གཟིར་བ་རྣམས།
གསོ་བྱེད་ཆོས་ཀྱི་ཉེར་བསྟན་ལ་ཆགས་ཡིན། 69

ལུས་འདི་གཏོད་པའི་སར་སོང་དཔྱད་མི་འོས།
ཡོངས་སྤྱོད་ཚོགས་ཀྱང་ཟུག་ཙུ་ལྟ་བུར་སྤྱོད།
འོང་བའི་ཆུང་མ་མཛེས་སྤུག་ལྡན་པ་བཞིན།
སྤྱོད་སྤངས་དཔལ་ནི་སྨོད་པ་སྟུག་པོ་ཉིད། 70

མི་དག་ཤིན་དུ་དམན་ཡང་རྒྱུན་དུ་ནི།
རབ་འབར་སྦྲུ་ངན་མེ་ཡིས་སྲེག་བྱེད་ཅིང་།
གདུང་བ་གྲུས་ཀྱང་རངས་དང་མི་འབྲལ་བའི།
རིང་པོའི་ནད་ལྡན་མ་ཡིན་སྲོག་སོང་བདེ། 71

निन्द्यामयोद्वेगजुगुप्समानः
कायेऽपि स द्वेषदशामवाप्तः।
पत्नीस्तनोत्सङ्ग निषण्णमूर्द्धा
क्षामस्वरः क्ष्मापतिराचचक्षे ॥ ६८ ॥

वैद्यैः किमद्यापि निवृत्तविद्यै-
र्व्यर्थानिमित्तैः किमतथ्यपथ्यैः।
अशर्मकर्म्मोपनिपीड़ितानां
धर्म्मोपदेशः प्रणयश्चिकित्सा ॥ ६९ ॥

कायः प्रयातोऽयमपायभूमिं
शल्यायते भोगगणोऽप्यभोग्यः।
अन्धस्य लावण्यवतीव कान्ता
भोगोज्झिता श्रीर्घन एव शापः ॥ ७० ॥

अत्यन्तमन्दाग्निरपि प्रसक्त-
प्रदीप्तशोकानलदह्यमानः[१]।
प्रवृद्धतृष्णोऽप्यनपेत-जाड्यः
सुखी गतासुर्नतु दीर्घरोगी ॥ ७१ ॥

---

१ $^{W}_{1}$ शोकाग्निप्रदह्यमानः।

སྡིག་པ་རབ་བསྒྲིབས་ནང་དུ་ཡོངས་གནས་དང་།
དམན་པ་བརྟས་ཤིང་རྩོད་པ་རྫེས་འབྲལ་དང་།
ནད་ཀྱི་བརྟེན་པར་ཟིལ་མནན་སྨད་པ་དང་།
རབ་འབར་མེ་ཡི་གདུང་བ་ཞི་བར་འགྱུར། 72

ལས་ངན་རྩེ་དགའ་ཉོན་མོངས་རང་བཞིན་འདི།
རྣམ་པར་བཀྲ་བའི་གཟུགས་ནི་ཀློག་པ་སྟེ།
ནད་མེད་བསྟེན་གང་དབུལ་བས་སྡུག་བསྔལ་ཞིང་།
ཕུན་ཚོགས་ལྡན་གང་རྟག་ཏུ་ནད་ཅན་ནོ། 73

རྣམ་དཔྱོད་ཀྱིས་པའི་བློ་དང་བྲལ་བའི་ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་སྐྱེ་བ་འབྲས་མེད་དེ།
གང་གིས་བློ་གྲོས་ཐོས་པས་རྒྱན་གྱི་སྒྲུབ་བྱེད་རབ་འབར་བྱས་པ་མིན་པ་སྨད།
གང་གི་དཔལ་གྱིས་དབུལ་བ་ཉིད་མིན་མ་གྱུར་ཐོས་པ་རྒྱ་ཆེ་དེ་ཡིས་ཏེ།
ཤིན་ཏུ་ནད་མེད་ཉིད་ཀྱིས་གང་ཞིག་སྤྱོད་མེད་དཔལ་གྱི་རྣམ་འཕྲུལ་གྱིས་པས་ཏེ། 74

བདག་གི་གཞོན་ནུ་སྐྱེ་གུ་དགའ་བ་ནི།
རྗེ་འཇིག་ཏུ་བསྐོས་གྱུར་ཏུ་དགུས་པར་བགྱི།
མེ་ལོང་ལ་བཞིན་དྲི་མེད་ལེགས་སྤྱོད་བླུས།
དེ་ལ་རང་གི་རྒྱལ་སྲིད་འཕོས་པ་ལྟའི། 75

प्रच्छन्नमन्तःपरिवर्त्तिपापं
नीचावमानः कलहानुबन्धी।
व्याधिः स्थिरारम्भजुगुप्सितश्च
दीप्ताग्नितापेन शमं प्रयाति ॥ ७२ ॥

कुकर्म्मणामेष विचित्ररूप-
विपर्य्ययायासमयो विलासः।
दारिद्र्यकष्टं यदरोगभाजां
लक्ष्मीवतां यच्च सदैव रोगः ॥ ७३ ॥

वन्ध्यं जन्म शरीरिणां विरहितं बुद्ध्या विचारेच्छया
धिग्बुद्धिर्न[1] कृतः प्रसाधनविधिर्यस्याः श्रुतेनोज्ज्वलः।
किं तेन श्रुतविस्तरेण न गतो निर्दैन्यतां यः श्रिया
किं श्रीविभ्रमजृम्भितेन नितरामारोग्यभोग्यं न यत् ॥७४॥

आनीयतां मे त्वरया कुमारः
प्रजाप्रियस्तक्षशिलानियुक्तः।
पश्यामि तस्मिन् विमले सुवृत्ते
संक्रान्तमद्यैव कृतं स्वराज्यं ॥ ७५ ॥

---

[1] धिग्बुद्धिं appears to be in $^{\mathrm{W}}_{2}$.

དེ་ཉིད་གུས་པས་དབུ་རྒྱན་བཅིངས་བྱས་ཤིང་།
གདུགས་དཀར་མཆོག་ནི་ཡང་དག་གདང་པ་དེ།
གྲོང་པས་ང་ཉིད་བསོད་ནམས་བཅུད་ལེན་གྱིས།
གཞོན་ནུ་ཉིད་ཐོབ་བཞིན་དུ་ལྷ་གྱུར་ཅིག། 76

ཅེས་པ་མི་ཡི་དབང་བོས་སྨྲས་པ་དེ།
མཚུངས་པར་རབ་ཞུགས་འཛིགས་དང་ཀྲུ་ངན་དང་།
དམན་དང་ཕྲག་དོག་སྨོངས་པས་ཡོངས་ཁྲིངས་པའི།
བཙུན་མོ་སྐར་གྱིལ་སྐྱུང་བས་ཐོས་ནམ་སྨྲས། 77

ས་སྐྱོང་ཁྱོད་ནི་ནད་མེད་བདག་གིས་བགྱི།
བདགི་རིག་པའི་ཁྱད་པར་བལྟ་བར་མཛོད།
རང་གི་བསླབ་དོན་ནོར་ཉམས་སྐྱེ་བོ་རྣམས།
བརྟག་སླད་ཚེ་བསྟེན་སྨན་པ་ངན་པ་སོང་། 78

ཏོག་ཏུ་བརྟག་བརྩོན་སྨན་པ་རིག་བྱེད་བྲལ།
ཕན་ཚུན་ཆགས་བྲལ་ཐོས་དྲིགས་བསྐྱིམས་པ་དང་།
དེ་ཉིད་ཤེས་སྨྲོད་མི་མཁས་རྗེས་སྨྲ་བས།
ཉིན་ཞག་དང་ནི་ནད་པ་འཕེན་ཕར་བྱེད། 79

समर्पितोदग्रसितातपत्रं
निबद्धमौलिं प्रणयान्मयैव ।
पश्यन्तु तं पुण्यरसायनेन
मामेव पौरास्तरुणत्वमाप्तम् ॥ ७६ ॥

इत्युक्तमाकर्ण्य नरेश्वरेण
तं तिष्यरक्षा निजगाद जाया ।
तुल्यप्रवृत्तैर्भयशोकदैन्य-
मात्सर्य्यमोहैः परिपूर्य्यमाणा ॥ ७७ ॥

अहं महीपाल निरामयं त्वां
करोमि ते पश्य विशेषयुक्तिम् ।
यान्तु स्वशिक्षार्थकदर्थितार्था
जनक्षयावद्यजुषः कुवैद्याः ॥ ७८ ॥

मिथोविवादैः श्रुतगर्व्ववादै-
स्तज्जापवादैरबुधानुवादैः ।
निर्विद्यवैद्याः क्षपयन्ति नित्यं
क्षयोद्यता वासरमातुरञ्च ॥ ७९ ॥

རང་གི་བུ་ལའང་རྒྱལ་སྲིད་མི་གཏང་སྙེ།
རྒྱལ་པོ་གཞན་ལ་ཡོད་ཀུན་དགའ་སྐྱེད་བྱེད།
ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་བཏང་ན་སྐད་ཅིག་གིས།
གོད་པ་སྟོང་ཕྲག་མི་ཡིས་གདུང་བར་བྱེད། 80

འཕྲུལ་ལ་བུ་ལ་ཟུར་ཕུད་བཀོད་གྱུར་ཅིང་།
དེ་དུས་ཟླ་བོའི་གུས་པ་ཉམས་གྱུར་པའི།
རྒྱལ་པོའི་བཀའ་ནི་དུད་པ་མིན་རྣམས་ཀྱིས།
ཆ་ཡི་གཙོད་ཅིང་རྩ་དང་མཚུངས་པར་འགྱུར། 81

ཞེས་པས་ས་དབང་བརྟེན་པ་བསྐྲུབས་ནས་ནི།
ཁང་ནང་དེ་ལས་དེ་ནི་ཕྱིརོལ་སོང་།
བ་ཛྲི་དེ་མཚུངས་ནད་ཀྱིས་གཟིར་བ་ཅིག།
བཙལ་ནས་དབེན་པའི་གནས་སུ་བོས་བྱས་དེ། 82

གདུག་པའི་བསམ་པས་འབང་མོ་གདུག་པའི་བློས།
དེ་བསད་ལྟེ་བའི་མཛོད་ནི་རབ་ཕྱེ་སྟེ།
བརྩེ་བས་སྨན་རིས་དེ་ཡི་རྒྱུ་མར་ནི།
ནམ་འགྱུར་ཚུབ་མོའི་སྦྱིན་བུ་ཆགས་པ་མཐོང་། 83

त्याज्यं न राज्यं स्वसुतेऽपि राजन्
स्पृहां परस्थं विदधाति सर्व्वम् ।
त्यक्ता च लक्ष्मीः कुरुते क्षणेन
विपत्सहस्रज्वलनानुतापम् ॥ ८० ॥

सद्यः सुतारोपितशेखराणां
तत्कालमौलत्रभुगौरवाणाम् ।
राज्ञामनर्ह्रैरवधीरितानि
तृणीभवन्त्येव हि शासनानि ॥ ८१ ॥

इति क्षितीशस्य धृतिं विधाय
निर्गत्य तस्माद्भवनान्तरात् सा ।
अन्विष्य तत्तुल्यगदाभिभूत-
माभीरमेकान्तमथानिनाय ॥ ८२ ॥

क्रूराशया क्रूरधियैव दास्या
हत्वा तमुत्पाटितनाभिकोषम् ।
तस्यान्तलग्नं परुषं ददर्श
घृणाविहीना विकृतं कृमिं सा ॥ ८३ ॥

གྱིན་དུ་རབ་གྱུ་མགྱོགས་པར་ཐུར་དུ་ཡང་།
གཅི་བ་སྐྱོ་ཁྲིད་དེ་མཐོང་གསད་ཕྱིར་དེས།
ཁྲི་དང་ག་སྐྱུར་ཤིང་ཀུན་པི་པི་ལིང་།
ཐོ་བ་རིལ་སོགས་སྐྱེ་ཚན་དེ་ལ་བླུགས། 84

མི་བཟད་འགྱུར་བྱེད་དྲུག་ལྡན་གང་དག་སྟེ།
དེ་དེས་སྨིན་བུ་དེ་ནི་སྦྱོག་མ་གཏང་།
སྒྲོག་སྐྱུའི་ཚ་བ་དག་ནི་གཏུབས་པ་ཡིས།
རེག་པ་ཙམ་ལས་རབ་དུ་ཞིག་པར་གྱུར། 85

ཐབས་མཆོག་རྟེད་ནས་རབ་དུ་དགའ་བ་དེ།
དེ་ནས་མི་ཡི་བདག་པོའི་དྲུང་སོང་སྟེ།
སྒྲོག་སྐྱུ་ལེགས་པར་བཙད་པ་བྱིན་པ་ཡིས།
སྐད་ཅིག་གིས་ནི་དེ་ལུས་བསོས་པར་གྱུར། 86

གང་ལ་དུག་གི་ནུས་པས་ཙང་ཡོད་མིན།
གང་ལ་མཚོན་གྱིས་ཀྱང་ནི་སྨྱུར་མི་ཕུགས།
གང་ལ་མེ་ནི་སྐྱོ་ཉམས་ལེ་ལོ་ཅན།
དེ་ལ་ཡང་ནི་བྱུད་མེད་བདེན་ཉམས་མིན། 87

ऊर्द्धं प्रचारेण जवादधश्च
सकृत् सृजन्तं तमवेक्ष्य हन्त।
सा पिप्पलीहिङ्गुविड़ङ्गयुक्तं
चिक्षेप तस्मै परिवादिवर्गम्॥ ८४॥

तैस्तैः स कीटः सविषैश्च कैश्चित्
क्षारैरसह्यैर्न मुमोच जीवम्।
पलाण्डुना खण्डितकाण्डकेन[१]
संस्पृष्टमात्रः प्रलयं जगाम॥ ८५॥

उपायमासाद्य परप्रहृष्टा
गता ततः सा नृपतेः समीपम्।
पलाण्डुना च्छन्नतरार्पितेन
क्षणेन तं स्वस्थतनुं चकार॥ ८६॥

विषस्य यत्रास्ति न जातु शक्ति-
र्यत्राशु[२] शस्त्राण्यपि कुण्ठितानि।
यत्रालसोत्साहहता हुताश-
स्तत्राप्यभग्नप्रणया युवत्यः॥ ८७॥

---

१ W2 खड। २ W2 शुः।

དེ་ནས་ས་བདག་བྲུས་ཞེས་མཛོད་པ་ཡིས།
འཆིང་བས་བློ་གྲོས་བཅིངས་པས་དེ་ལ་ནི།
འཚོ་བ་ཐོབ་པའི་དགའ་བས་མཆོག་དག་བྱིན།
དེ་ཡིས་ཉིན་ཞག་བདུན་དུ་རྒྱལ་སྲིད་བསྐྱང་། 88

རྒྱལ་སྲིད་ཐོབ་ནས་ས་སྐྱོང་བྲ་བ་ནི།
ཐམས་ཅད་རང་དབང་ཉིད་ཀྱིས་བྱེད་པར་ཞུགས།
ཇོ་འཛོག་དབང་པོ་ལ་ནི་སྐྱིང་ཡིག་དག།
རྒྱ་ལྡན་རིན་ཆེན་མཛེས་པ་དང་བཅས་སྐྱིངས། 89

ད་ནས་མི་བདག་བཀས་མཚན་སྐྱིང་ཡིག་དེ།
དུལ་ཞིང་རབ་ཏུ་དུད་པས་མཆོད་དེ་བླངས།
ཇོ་འཛོག་བདག་པོ་རང་གིས་གསལ་བ་ཡིས།
ཡི་གེས་མཚོན་པའི་དོན་ནི་རབ་ཏུ་གནས། 90

སུཏྟི་གྲོང་ཁྱེར་པྲ་ཏ་ལ་ཡི་སྨྲ་ཏྲ་ལས་མཚུངས་པ་མེད་པའི་གཡུལ་ལ་དཔའ་བས་ཡང་དག་པད་ཐོབ་པ། རྒྱ་མཚོ་མཐའ་དག་གི་མཚམས་སུ་རབ་ཏུ་འགྲོ་ཞིང་མི་ཞན་ལ་དྲི་མ་དང་བྲལ་བའི་གྲགས་པའི་ཚོགས་ལས་བསྒྲུབས་པའི་དུ་ཀུ་ལའི་རས་དཀར་པོས་ནོར་འཛིན་གྱི་བུ་མོ་ལ་ལོངས་སྤྱོད་པར་བྱ་བ་སྐལ་བ་བཟང་པོ་ཉིད་ཀྱིས་བསྐྱེམས་པ་བྱིན་པ། དགྲ་བོའི་གཟི་བྱིན་ཉམས་པར་བྱེད་ཅིང་མི་དགའ་བ་

ततः कृतज्ञः क्षितिवल्लभोऽस्मै
प्रेमानुबन्धप्रतिबद्धबुद्धिः।
वरं ददौ जीवितलाभहर्षात्
तयार्थितं सप्तदिनानि राज्यम्॥ ८८॥

सम्प्राप्तराज्या स्ववशैव सर्व्वं
कर्त्तुं प्रवृत्ता क्षितिपालकार्य्यम्।
सा प्राहिणोत्तक्षशिलेश्वराय
लेखं समुद्रं सह चारुरत्नैः॥ ८९॥

लेखं ततस्तं नृपशासनाङ्क-
मादाय मान्यं विनयावनम्रः।
स्वयं विभक्ताक्षरलक्षितार्थ-
मवाचयत्तक्षशिलाधिनाथः॥ ९०॥

स्वस्ति श्रीपाटलिपुत्रादसमसमरसाहससमासादितस-मस्तसिन्धुसीमासमुच्छलदविरलविमलयशःकलापकलित-धवलदुकूलवसुधावधूदत्तभोगसौभाग्यगर्व्वखर्व्वीकृतविपुल-रिपुप्रतापः श्वापद्वारातिरमणीविलासानां प्रणतिप्रति-विम्बितानन्तसामन्तवक्त्रशतपत्रैकपात्रीकृतविमलमणिपाद-

ཉམས་ཀྱི་དགའ་མའི་རྩེ་དགའི་དམོད་པ་བཞིན་དུ་གྱུར་པ། དྲི་མ་མེད་པའི་ནོར་བུའི་ཀིང་སྟེགས། མཐའ་ཡས་པའི་རྒྱལ་སྲན་གྱིས་རབ་ཏུ་བདུང་པའི་བཞིན་གྱི་པདྨའི་གཟུགས་ཅན་སྣང་གཅིག་ཏུ་བྲུས་པ། ལེགས་བྲུས་དགེ་བའི་པདྨོ་ཉམ་པར་བཀྲུས་པར་བྱེད་པའི་ཉིན་མོའི་དབང་ཕྱུག་རྟུལ་ཕོད་དང་བརྩོན་འགྲུས་དང་སྨྲ་བ་ཆེན་པོ་རབ་ཏུ་གྲུས་པའི་ནགས་ཚལ་གྱི་གཏོང་ལྔ་པ་དཔལ་ལྷ་གྱུ་ངན་མེད་པ་ཡིས། རྡོ་འཛོག་གི་དབང་པོ་དཔལ་གླང་པོའི་ནོ་བ་ལ་ཡང་དག་པར་རྟོགས་པར་བྱེད་པ་འདི་ལྟ་སྟེ། བདག་གི་བུའི་བཞིན་དང་ལྡན་པའི་དགྲ། ཁྲེལ་མེད་ཅིང་ངན་པའི་སྤྱོད་པ་ལ་བྲམས་ལ་ཡོངས་སུ་སྐྲག་པའི་སྤྱོད་པ་ཅན། མི་གཙང་ཞིང་བསྟུན་བཅོས་ལ་སྤྱང་བ་མིག་གི་འདབ་བཀྲ་བའི་རྐང་མ་ལ་མངོན་པར་སྤྲེད་པའི་དུག་གི་སྣོད་དུ་བྱེད་པ་སྡིག་པའི་རྗེས་སུ་མཐུན་པའི་གཟུགས་དང་ལང་ཚོ་དང་སྨྲ་བ་དང་རྟུལ་ཕོད་དང་ལྡན་པ། སྐྱེ་བོ་མིའི་ལག་འགྲོ་འདི་མིག་གི་ནོར་བུ་རབ་ཏུ་ཕྱུང་སྟེ་གོས་དང་བྲལ་བར་བསྐྲད་པར་མཛོད་ཅིག།

ཅེས་པ་བདག་གི་འབད་པས་དོན་དུ་གཉེར་བའོ།
སྤྲིང་ཡིག་དོན་ནི་རབ་བརྟགས་ཉམ་དཔྱད་ནས།
བཙེ་ལྡན་བཙེ་བས་ཉམ་པར་འགེམས་བྱེད་ཅིང་།
གཞོན་ནུ་ལ་མཛའ་མི་བདག་ལ་འཇིགས་པས། 91

མི་བདག་ཡིད་ནི་ཁྲོགས་ལ་བརྟེག་པར་གྱུར།
མཆི་མས་འཁྲུགས་ཤིང་ས་ལ་བལྟ་བ་དེ།
གཞོན་ནུ་དེ་ན་གནས་པས་མཐོང་གྱུར་ནས།
འདི་དག་ཅི་ཞེས་ཕྱི་ཆོས་གྱིས་གཟིར་གྱུར། 92

पीठः सुहृत्कुलकमलविकाशवासरेश्वरः स्फीतसौर्य्यमौर्य्य-महावंशवनपञ्चाननः श्रीमदशोकदेवस्तक्षशिलाधिपं श्रीकुञ्जरकर्णं सम्बोधयति । यथा—

एष मे निरपत्रपः कुचरितमैत्री परित्यक्तचारित्रः पुत्रमुखशत्रुरपवित्रः शास्त्रविद्वेषी पितृकलत्राभिलाषविषपात्रीकृतनेत्रशतपत्रः पापानुरूपरूपयौवनोत्साहसाहसः समुत्पाटितलोचनमणिर्निर्वसनो निर्वास्यतां जननीजनभुजङ्ग इत्यस्मदभ्यर्थनाप्रणयः ॥

लेखार्थमित्युग्रतरं विचार्य्य
निवार्य्यमाणः कृपया कृपालुः ।
प्रीत्या कुमारस्य नृपस्य भीत्या
दोलायमानो नृपतिर्बभूव ॥ ९१ ॥

तत्र स्थितस्तं क्षितिमीक्षमाणं
निरीक्ष्य वाष्पाकुलितं कुमारः ।
किमेतदित्यागतसंशयार्त्तिः
स्वयं समादाय ददर्श लेखम् ॥ ९२ ॥

བརྟན་པའི་སྤྱོད་ཚུལ་གཡོ་མེད་དེ་ཡིས་བསམས།
རེ་ཞིག་ཕ་ཡི་བཞེད་འདི་འགོང་མི་བྱ།
དེ་ཁྲིམས་འཇིགས་ལས་མི་བདག་འདི་ཡང་བསྲུངས།
རྒྱལ་པོ་རྫོན་གྱི་གནོད་པས་ཁྲིམས་མོད་ཀྱང་། 93

དགའ་བ་བརྗོད་པས་རབ་ཏུ་དང་མི་འགྱུར།
མིག་ནི་ཡོངས་བདང་བདེ་སྐྱད་ཡབ་ཀྱི་ནི།
ཁྲོ་བའི་མི་གདུང་རབ་ཞི་བདག་གིས་བྱ།
ས་བདག་འདི་ཡང་དེ་ཡི་བཀའ་བཅག་ལས། 94

སྐྲིས་བའི་གདུང་བ་གྲུས་པར་མི་འགྱུར་རོ།
མི་བརྟན་མི་གཙང་རང་བཞིན་ལུས་དག་ལ།
མིག་ནི་ཆུ་ཡི་ཐིགས་པའི་ཉམ་འགྱུར་གཟུགས།
ཙ་སྔོན་གཟུགས་བརྟན་སྐད་ཅིག་རབ་གསལ་བ། 95

དེ་ལ་ངེས་པར་ཡོན་དན་ཅི་ཞིག་གནས།
གང་ཞིག་བལྟ་ཐོབ་ལ་ཆགས་འཇིག་རྟེན་ན།
ཤིན་ཏུ་རབ་འབད་མིག་ནི་ཡང་དག་བསྲུངས།
དེ་དག་གཟུགས་དེ་རབ་གཡོ་མིག་འཕྲུལ་དང་། 96

आज्ञां गुरोर्दुःसहदुर्ग्रहां तां
निश्चित्य मिथ्योत्थिततीव्रमन्योः ।
तस्मिन्नसह्यव्यसनोदयेऽपि
सोऽचिन्तयन्निश्चलधैर्य्यवृत्तिः ॥ ९३ ॥

इच्छा पितुस्तावदियं न लङ्घ्या
रक्ष्यश्च तत्कोपभयान्नृपोऽयम् ।
मिथ्यापराधात् कुपिते ऽपि राजा
प्रसादमायाति न शुद्धवादैः ॥ ९४ ॥

नेत्रे परित्यज्य पितुः करोमि
कोपाग्नितापप्रशमं सुखाय ।
अस्यापि तच्छासनभङ्गजन्मा
महीपतेर्मा व्यसनोदयोऽभूत्[1] ॥ ९५ ॥

विनश्वरे क्लेदमये शरीरे
चक्षुर्जलस्तोकविकाररूपम् ।
का नाम तस्मिन् क्षणिकप्रकाशे
तृणप्रदीपप्रतिमे गुणास्था ॥ ९६ ॥

---

१ W_2 ०दयोस्तु ।

རྨི་ལམ་འཁྲིང་གྲོགས་རྟེན་མེད་རི་མོའི།
ཡུན་རིང་འདི་སྐྱུད་མི་དབང་སྨྲས་པོ་ཡིས།
རྒྱལ་པོ་དེ་ནི་བཞེད་མིན་ཕྱིན་ཕྱོགས་ཤིང་།
སྐྱེ་བོ་མཆི་མར་བཅས་པས་བརློག་གྱུར་ཀྱང་། 97

དེར་ནི་མིག་དག་ཉམས་པར་བྱེད་དུ་བཅུག།
གདུག་པའི་སྐྱེས་བུ་ནོར་ལ་བཀོམ་པ་ཡིས།
གསེར་སྐྱིན་མིག་ནི་རབ་དུ་ཕྱུང་བ་དེས།
མི་རློག་གླང་པོས་རྒྱ་སྐྱེས་ཚོགས་བཅོམ་པའི། 98

པདྨའི་འབྱུང་གནས་ནམ་པར་མཚུངས་པ་ཐོབ།
དེ་ཡིས་མཛའ་བོས་གསེར་གྱི་འཁྲིང་ལྷན་མ།
རྒྱལ་བར་སྨྱོར་ཆེ་ལྷན་ཅིག་དེར་འོངས་པས།
གནས་དེར་མཐོང་ཕྱོགས་མིག་ནི་ནམ་ཉམས་དེ། 99

མཐོང་བ་ཉིད་ན་སྨོངས་པས་བཅོམ་ནས་འགྲེལ།
འདུ་ཤེས་ཐོབ་ཅིང་རྒྱ་ཆེར་རབ་གདུང་བ།
མིག་མཛེས་རྩེ་དགའ་ལ་ཆགས་དེ་ལ་ནི།
མི་དག་ཉིད་བསམས་བདེན་བ་མཐོང་གྱུར་ཅིང་། 100

लोके यदालोकन-लाभ-लोभात्
संरक्ष्यते चक्षुरिति प्रयत्नात् ।
रूपं तदेतत्तरलेन्द्रजाल-
स्वप्नावलीमित्रमभित्तिचित्रम् ॥ ९७ ॥

चिरं विचार्य्येति नरेन्द्रसूनु-
स्तस्मिन्ननिच्छाविमुखेऽपि राज्ञि ।
निवार्य्यमाणोऽपि जनैः सबाष्पै-
रकारयत्तत्र विघातमक्ष्णोः ॥ ९८ ॥

हेमप्रदः क्रूरतरेण पुंसा
स वित्तलुब्धेन समुद्धृताक्षः ।
दुर्वारमातङ्गहृताब्जपुञ्ज-
पद्माकराकारतुलामवाप ॥ ९९ ॥

जयोद्यमे तत्र सहोपयाता
प्रेमोचिता काञ्चनमालिकास्य ।
तं देशमभ्येत्य विनष्टनेत्रं
दृष्ट्वैव तं मोहहता पपात ॥ १०० ॥

རྒྱུན་ཞུགས་འབྲས་ཐོབ་བརྟེན་པ་ངེས་སྨྲས་པ།
མཛོས་མ་འཁྲུགས་པ་ཉིད་ལས་བརྟེན་པ་བསྟེན།
སྨོངས་དང་དམན་གྱིས་སླག་པར་མ་བྱེད་ཅིག།
སློག་ཆགས་ཉམ་ཀྱིས་རང་ལས་འབྲས་བུ་ནི། 101

འཛིགས་པ་ངེས་པར་སྤྱད་པར་བྱ་བ་ཡིན།
ད་ནི་དབེན་པར་ཡོང་བ་ང་ཉིད་འགྲོ།
ཁྱོད་ཀྱི་ཉོན་མོངས་མི་བཟོད་གཉེན་ཁབ་སྟེན།
སྐལ་བཟང་ཡོངས་སྤྱོད་འབྲལ་བའི་སྙིང་པོ་ནི། 102

འཁོར་བའི་རང་བཞིན་སྲུ་ངན་ཡོངས་མི་བྲ།
ཞེས་སྨྲ་དེ་ལ་འབྲལ་བའི་འཛིགས་པ་ཡིས།
ཡོངས་འདར་ལུས་ཅན་བརྩུན་མོས་རབ་སྨྲས་པ།
རང་སེམས་སྡུག་བསྔལ་ལ་བཙོངས་ནུ་མ་ལ། 103

མིག་སྨན་གྱིས་སྦོ་མཆི་མས་འབྲི་བ་བཞིན།
བདག་ནི་ཛེ་ཡི་སྲས་ཁྱོད་ཡོངས་མི་གཏོང་།
གང་ཞིག་སྒོད་ཚོ་རང་བདག་གཟུགས་གཞན་གྱུར།
རྒྱན་དང་ཚུལ་ཁྲིམས་བཞིན་དུ་གཏོང་བ་འདི། 104

अवाप्तसञ्ज्ञां विपुलप्रलापां
तां नेत्रलावण्यविलासलुब्धां ।
अनित्यताचिन्तनदृष्टसत्यः
स्रोतःफलाख्या स जगाद धीरः ॥ १०१ ॥

मुग्धे धृतिं संश्रय विक्लवत्वा-
न्मामोहदैन्योदयकातरा भूः ।
अवश्यभोग्यानि भवन्ति भीरु
स्वकर्म्मणामेव फलानि जन्तोः ॥ १०२ ॥

अन्धोऽधुनाहं विजनं व्रजामि
क्लेशासहा त्वं श्रय बन्धुगेहम् ।
कार्य्यो न शोकः सुभगोपभोग-
वियोगसारो हि भवस्वभावः ॥ १०३ ॥

इति ब्रुवाणं तमुवाच जाया
वियोगभीता परिकम्पिताङ्गी ।
लीनाञ्जनास्रैः कुचयोर्लिखन्ती-
दुःखस्य विक्रीतमिव स्वचित्तम् ॥ १०४ ॥

བུད་མེད་ཉམས་ཀྱི་རིགས་འདོས་བརྟུལ་ཞུགས་མིན།
དག་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་མཛད་སྨད་ནོར་ལྷན་ལ།
སྨད་འཚོང་ཉམས་ཀྱང་འབད་ནས་སྤྱིན་པར་བྱེར།
བདག་པོ་ཀོད་གྱུར་དག་ཉམས་ལྷག་པར་མཛད། 105

སྐྱེ་བོ་ཆེ་ཉམས་སྐྱོང་བ་དག་ལ་བཞིན།
མིག་ནི་ལོང་བའི་རབ་མཆོག་འབར་བ་སྟེ།
ཀོད་པའི་གདུང་བས་ངལ་ལ་གྲིབ་བསིལ་བཞིན།
གནས་ཅམས་སྐྱིས་བུ་ཉམས་ཀྱི་མི་བཟད་ལ། 106

གྲོགས་ནི་ཆུང་མ་དང་མཚུངས་ཡོད་མ་ཡིན།
དེ་ལྟར་འབད་པས་དོན་གཉེར་རྒྱལ་པོའི་བུ།
སྟོད་གཡོགས་རྒྱལ་པོ་ཙམ་ལྷག་བརྟེན་པ་དང་།
ཞབས་ཟུང་ལ་གདུགས་ཆུང་མ་དེ་དང་ཡང་། 107

ཀྲན་ཅིག་ཉིད་དུ་དལ་གྱིས་སོང་བར་གྱུར།
རྒྱུད་མང་སྒྲོང་མཁས་སྒྲ་སྙན་ལེན་མཁས་དེས།
དང་པོར་དེ་ཆེ་ལམ་དུ་འཚོ་བ་ཐོབ།
ཀོད་ན་བསོད་ནམས་འབྱོར་ན་རྒྱུ་འཇེ་ཡིས། 108

त्यजामि न त्वामहमार्य्यपुत्र
नैतत् कुलार्हं व्रतमङ्गनानाम् ।
यदापदि स्वं पतिमन्यरूपं
विभूषणं शीलमिव त्यजन्ति ॥ १०५ ॥

सतीव्रतं वित्तवतां प्रियाय
यत्नेन वेश्या अपि दर्शयन्ति ।
पतिः सतीनामधिकं प्रियस्तु
विपन्नतोऽर्थीव महाजनानाम् ॥ १०६ ॥

यष्टिः प्रकृष्टा नयनान्धकारे
छाया विपत्तापपरिश्रमेषु ।
पदच्युतानां विषमेषु पुंसां
नास्त्येव जायासदृशः सहायः ॥ १०७ ॥

इत्यर्थितः पादयुगे निपत्य
पत्न्या प्रयत्नादथ राजपुत्रः ।
सहैव जीर्णांशुकमात्रशेष-
स्तया च धृत्या च शनैर्जगाम ॥ १०८ ॥

སྒྲུ་ཙོལ་མཚུངས་པའི་ནོར་ནི་མི་ལ་མེད།
བྱུང་བའི་འཕྲེང་བ་མོས་པའི་སྒྲ་ལྡེ་བུ།
རྒྱུད་མང་སྒྲ་བརྙན་ནོ་བའི་བདུད་རྩི་ཡིས།
བྲན་བཞིན་བསོད་སྒོམས་སྐྱོང་དེ་ཆུང་མ་དང་། 109

*　　*　　*　　*

*　　*　　*　　*

*　　*　　*　　*

ལྷན་ཅིག་ཁྲིམ་ནམས་སུ་ཞུགས་གླུ་བླངས་པ། 110

སྐྱེ་བོ་བླ་མ་ཁྲིམས་པས་རབ་བསྐྱུན་སྒྲ་གཅན་གྱི་ནི་མཐུ་ཡིས་ཉི་མ་ནམ་པར་ཉམས་བྱས་ཞིང་། བདེན་མེད་ཡོངས་སུ་སྨྲ་བའི་ནམ་པར་བསྒྲད་པ་ནག་ཕྱོགས་ཉིད་ཀྱིས་སྤྱོད་པས་ཟླ་བ་ཟད་པར་བྱས། ཡོན་དན་ལྡན་པའི་ཚོགས་ལ་སྲུན་འཕྲིན་ལྷུང་བས་ཡོན་དན་མཆོག་གི་རིན་ཅེན་འོད་ཀྱིས་དབུལ་བར་འགྱུར། རབ་མང་ཉིས་བྱས་ཡོངས་སུ་སྨིན་པའི་རླུང་གིས་བསྐྱུན་པས་མིག་གི་སྒྲོན་མ་དག་དང་བྲལ་གྱུར་པ། སྲིད་པའི་ཆུ་འཛིན་ཆེ་ལ་གློག་བཞིན་ཞིན་དུ་གཡོ་བའི་དཔལ་གྱི་ནམ་པ་དག་དང་བྲལ་ནམས་ལ། བསོད་ནམས་དག་གིས་སྐྱར་ཡང་དམ་ཆོས་ངན་པར་གྱུར་པའི་སྣང་བ་གསར་པ་རབ་ཏུ་སྤྲོ་བར་བྱེད། 113

वीणाप्रवीणः स सुगीतगीतः
पूर्व्वं तदा वर्त्मसु वृत्तिमाप ।
विपत्सु पण्यं विभवे विलासः
कलासमं नास्ति धनं नराणाम् ॥ १०९ ॥

मत्तालिमालाक्वणितोपमेन
वीणास्वनेन श्रवणामृतेन ।
सिक्तः स भिक्षाप्रणयी प्रविश्य
गेहेष्वगायद्दयितासहायः ॥ ११० ॥

गुरुजनकोपसमुद्गमराहुनिगीर्णप्रभावलक्ष्म्याणाम् ।
वितथपरिवादविक्लवकृष्णादिनक्षपितचरितचन्द्राणाम् ॥ १११ ॥
गुणिगणदूषणनिपतितगुणवररत्नप्रभादरिद्राणाम् ।
बहुतरदुष्कृतपरिणतिपवनाहतिविगलितनेत्रदीपानाम् ॥११२॥
भवविपुलजलदविद्युत्तरलतरश्रीप्रकाशरहितानाम् ।
पुण्यैः प्रसरति पुनरपि धर्म्मस्मरणनवालोकः ॥ ११३ ॥

སྒྱུ་རྩལ་དང་ལྡན་མིག་གིས་དབེན་པ་དེ།
སླུ་ལེན་སློང་ཞིང་འཚོ་བས་དུས་འདས་ནས།
ཡབ་ཀྱི་གྲོང་ཁྱེར་པཱ་ཏ་ལི་པུ་ཏ་ར།
འཁར་བ་ལ་བཞིན་རྒྱུང་མར་བརྟེན་ཏེ་སོང་། 114

རིང་པོའི་སྡུག་བསྔལ་ལམ་གྱིས་ལུས་དམན་ཞིང་།
བཞིན་པད་དག་གིས་གྲང་དང་ཚ་བ་འཕྲངས།
གཞོན་ནུ་མཛེས་མ་དང་འགྲོགས་དེ་མཐོང་ནས།
སྐྱེ་བོས་ཡིད་བསྐྱབས་དམོད་པས་ཉམས་པར་ཤེས། 115

དལ་གྲིས་གྱུལ་པོའི་ནགས་ཚལ་འཁྲིང་ཉེ་བར།
ཁྱིན་ཅིང་སྐད་ཅིག་ངལ་གསོ་དོན་གཉེར་དེ།
རྩུབ་མོར་སྨྲ་བྱེད་སྐྱེད་ཚལ་སྐྱོང་རྣམས་ཀྱིས།
བཀྲ་མི་ཤིས་ཕྱིར་རབ་ཏུ་བཀག་གྱུར་པ། 116

གནས་མེད་གནས་ནི་འཚོལ་བར་བྱེད་པ་དེས།
མི་ཡི་བདག་གི་གླང་པོའི་གནས་སུ་ཞུགས།
རྒྱུད་མང་རྩེད་མོ་ལ་གུས་དགེ་མཚན་གྱིས།
གླང་པོ་སྐྱོང་བ་དག་གི་གོ་སྐབས་བྱིན། 117

कालं कलावानतिवाह्य गायन्
पैण्डिन्यवृत्तिः स विवेकचक्षुः ।
ययौ प्रियां यष्टिमिवावलम्ब्य
पितुः पुरं पाटलिपुत्रमेव ॥ ११४ ॥

तं दीर्घदुःखाध्वदरिद्रदेहं
शीतातपापीतमुखाब्जवर्णम् ।
कान्तासखं वीक्ष्य जनः कुमारं
शापक्षतं मन्मथमेव मेने ॥ ११५ ॥

शनैः स राजोपवनावलीनां
समीपमाप्तः क्षणविश्रमार्थी ।
उद्यानपालैः परुषप्रलापै-
रमङ्गलत्वात् प्रतिषिध्यमानः ॥ ११६ ॥

निःसंश्रयः संश्रयमीहमानः
स हस्तिशालां नृपतेर्विवेश ।
वीणाविनोदादरकौतुकेन
दत्तावकाशः परिपालकेन ॥ ११७ ॥

དེར་ནི་ལོང་བ་དེ་མཐོང་ཞེས་གྱུར་པའི།
གླང་པོའི་དབང་པོས་གདོང་ནི་ཡོངས་བསྐོར་ཅིང་།
དེ་ལ་ལེགས་འོངས་འདྲི་བཞིན་སྒྲ་ཆེན་བསྒྲགས།
གཙུག་ལྷན་རྩེ་བའི་ཚོགས་ཀྱི་གར་དག་ཕྱུལ། 118

དེ་ནི་གླང་པོའི་སྒྲ་ཡི་མི་གཡོ་ཞིང་།
འཁྲུལ་པ་མེད་མཐོང་ལག་ལྡན་བདག་པོ་ཡིས།
ཀྱི་མ་སྙིང་སྟོབས་ཀྱི་མཚོ་རབ་མི་འདར།
རྒྱལ་རིགས་བཟང་པོ་འདི་ནི་སུས་ཞེས་སྨྲས། 119

གླང་པོར་མངོན་ཕྱོགས་གསེར་གྱི་ཕྲེང་ལྡན་མ།
དཔལ་འབྱོར་མངོན་པར་ཁེངས་པ་དྲན་གྱུར་ཏེ།
འཕྲལ་ལ་མཆི་མ་འཛག་ཅིང་ཤུགས་རིངས་འཕྲིན།
ཁྱོ་ཡི་ཞབས་དག་ཉེད་ཅིང་རབ་སྨྲས་པ། 120

གླང་པོའི་སྒྲ་ཡིས་ལག་ལྡན་བདག་པོ་ཁྱོད་ཀྱི་མདུན་ན་གང་།
སྤྲིན་གྱི་བསམ་པས་གཡོ་ལྡན་གཙུག་ཕུད་ཅན་ནི་གར་རབ་བྱེད།
རྨ་བྱ་འདི་དག་གཞོན་ནུའི་རྨ་བྱའི་རིགས་ལས་འཁྲུངས་པ་སྟེ།
ཚོགས་ཀྱི་བདག་པོས་སྒྲ་བསྒྲགས་ཚེ་ཡང་ཉམས་པར་འགྱུར་བ་མེད། 121

तत्रान्धमालोक्य निबद्धसंज्ञ-
स्तं कुञ्जरेन्द्रः परिवृत्तवक्त्रः ।
तत् स्वागतायेव घनं जगर्ज्ज
क्रीड़ाशिखण्डिव्रजदत्तनृत्यः ॥ ११८ ॥

तं निश्चलं कुञ्जरगर्जितेन
निःसम्भ्रमं हस्तिपका विलोक्य ।
अहोनु सत्त्वोदधिरप्रकम्प्यः
सुक्षत्रियः कोऽप्ययमित्यवोचन् ॥ ११९ ॥

गजोन्मुखी काञ्चनमालिकापि
निश्वस्य दीर्घं सहसोदितास्रा ।
ऊचे स्मृतश्रीविभवाभिमाना
संवाहयन्ती चरणौ प्रियस्य ॥ १२० ॥

नृत्यन्ति ये तव पुरः शिखिनो घनाशा-
लोलाः परं करिपतिव्रजगर्जितेन ।
कौमारबर्हिकुलसम्भव एष बर्ही
गर्जत्क्षणे गणपतेरपि निर्विकारः ॥ १२१ ॥

དེ་ནས་ཆགས་ལྡན་གཡོ་བའི་ཁྲུན་མཚམས་ནི།
སྐྱོན་ལ་མངོན་ཕྱོགས་ཞེ་སྡང་ལྡན་བཞིན་འོངས།
མིག་ལྡན་འཚོ་བར་གྱུར་པའི་ཉི་མ་བཅོམ།
སྐྱེ་བོ་མུན་པ་རྣམ་པར་གྱིས་པར་བསྒྲུབས། 122

པདྨའི་འབྱུང་གནས་ཆུ་སྐྱེས་བཞིན་ཟུམ་པ།
ཕུན་ཚོགས་བྲལ་ཞིང་དམན་པ་མཐོང་གྱུར་ནས།
བྱུང་བའི་འཕྲེང་བ་མྱ་ངན་གྱིས་ཟིལ་མནན།
ངེས་པར་སྒྲོང་བྲུའི་རང་བཞིན་སླུ་ཡིན་བཞིན། 123

ཀུན་གསལ་ནོར་བུའི་སྒྲོན་མ་གཅིག་བུ་ཉིད།
ཉི་མ་འདས་ཚེ་མར་མེ་སྟོང་འབུམ་གྱིས།
ཉིན་མོའི་སྣང་བ་ཆ་ལ་མཚུངས་མ་གྱུར།
གང་ཕྱིར་ཆེན་པོའི་གཟི་བྱིན་ཀུན་ལས་ལྷག། 124

རྒྱལ་ཁང་ནོར་བུ་གསེར་གྱི་བ་གམ་ཅན།
རབ་གསལ་དེ་ནི་མུན་ལ་རབ་མཛེས་ཏེ།
བདག་པོ་རྒྱུད་ཚེ་ཀུས་བས་ཕན་པ་ཉིད།
སྒྲུབ་བྱེད་ཚུལ་ཁྲིམས་རྒྱན་ལྡན་དགའ་པ་བཞིན། 125

རབ་རིབ་རབ་ཀྱིས་གཙོ་བོ་ཉིད་ཐོབ་རིས།
མ་ལུས་འཇིག་རྟེན་སྣང་བ་མེད་གྱུར་ནས།
ཟླ་བ་འཆར་སྟོམ་འཇིགས་བས་ཟིལ་མཐུན་ཏེ།
དལ་བུ་ཡིས་ནི་ཡིབ་པ་བཞིན་དུ་གྱུར། 126

དེ་ནས་ནག་པོའི་མཚན་མའི་རི་མོ་ནི།
འཕྲིན་གྱི་དང་ཚུལ་ཡིག་འཕྲེང་རིབ་བཀོད་པ།
ཀུ་མུད་ཅན་དགའི་ལེགས་བྲིས་བསིལ་ཟེར་ཅན།
པདྨོའི་འབྱུང་གནས་དཔལ་འཕྲོག་སྤྲིང་ཡིག་བྱུང་། 127

བདུད་རྩིའི་ཟེར་དཀར་ཡིད་འོང་པད་ཙ་ཡི།
འཁྲི་ཤིང་སྨྱུ་གུ་གསར་དབྱིབས་འོད་རིས་ཀྱི།
འོ་མའི་འོད་ལྡན་མཛེས་པའི་གོས་དཀར་གྱིས།
གྲགས་པས་བཞིན་དུ་ཐམས་ཅད་ཁྱབ་པར་བྱེད། 128

དེ་ནས་མཚན་མོའི་ལང་ཚོ་ཉམས་གྱུར་ཅིང་།
ཟླ་བ་མཁའ་ལ་དལ་གྱིས་བབས་པའི་ཚེ།
སྐྱོངས་ཉམས་པས་ཉམ་པར་གཅིག་སད་པའི།
གཞོན་ནུ་ལ་ནི་སླང་བོ་འཛིན་པས་སྨས། 129

लब्धाधिकारा तिमिरोन्नतिः सा
कृत्वा निरालोकमशेषलोकम्।
इन्दूदयारम्भभयाभिभूता
निलीयमानेव शनैर्बभूव[१] ॥ १२६ ॥

अथाययौ श्यामललक्ष्मलेखा-
सन्देश[२]लीलालिपिसन्निवेशः।
कुमुद्वतीहर्षसुहृत्सितांशुः
पद्माकरश्रीपरिहारलेखः ॥ १२७ ॥

अपूरयत्कान्तिसितांशुकेन
शुचिः सुधांशुर्यशसेव विश्वम्।
दुग्धत्विषा मुग्धमृणालवल्ली-
नवाङ्कुराकारमयूखलेखः ॥ १२८ ॥

ततः क्षपायां श्लथयौवनायां
शनैः शशाङ्के दिवि लम्बमाने।
क्लैव्यक्षयान्नागमतो विनिद्रा
निद्रायमानं जगदुः कुमारम् ॥ १२९ ॥

---

१ W_1 omits this verse. २ H has सन्देह०।

དྲི་ཟ་ཅན་ལོངས་མི་འདམ་ཅི་ནོམས་ཀྱི།
མཛེས་མ་བཞིན་ནི་ཕང་དུ་རབ་བཀོད་ནས།
སེན་མོ་བདབ་བསྐྱོད་ཡིད་འོང་སྙན་སྒྲོག་ཤིང་།
གླུ་དང་རྒྱུད་མང་འགའ་ཞིག་མི་ལེན་ནམ།

ཞེས་སྨྲ་གྱུགས་ཤིང་འཕྱུར་བ་དེ་དག་གིས།
རྗེས་བསྐུལ་དཔལ་ཞིང་གཉིད་ཀྱིས་གཟིར་གྱུར་པ།
དམན་པའི་ཚིག་གིས་རབ་གདུངས་ཡིད་བྱུང་བས།
རྒྱུད་མང་གླངས་ནས་ཡུད་ཙམ་རབ་བསམས་པ།

ཀྱེ་མ་སྡུག་གི་ཚོགས་ནི་བཟི་མེད་དག།
ཁྲག་ལ་སྨོམ་ཞིང་ཉི་བར་ལྷགས་པ་དང་།
རྒྱལ་པོའི་འབང་ནི་སྲོས་པའི་ཚོགས་བཅས་དེ།
སྐྱོད་ཙུབ་བརྫོད་པས་བརླང་བ་འཚོམ་ཡིན།

ང་རྒྱལ་ཉམས་སྐྱོང་ངོ་ཚ་སྐྱུབ་པར་བྱེད།
བདེ་བ་འཛོམས་བྱེད་གདུང་བ་གྲོས་པར་བྱེད།
མི་བཟོད་སྡུག་བསྔལ་གོད་པ་སྐྱེད་བྱེད་པ།
དམན་པའི་བསྟན་པ་དང་མཚུངས་སྲུ་ངན་མེད།

उत्तिष्ठ गान्धर्विक किन्न वीणा-
मङ्कं समारोप्य कलं क्वणन्तीम् ।
कान्तामिवैतां नखघातलोलां
गीतिं नवीनां वितनोषि काञ्चित् ॥ १३० ॥

130

इति प्रलापैः श्रमनिद्रयार्त्तः
स तैर्मदोद्धैरनुबध्यमानः ।
आदाय वीणां विमलां मुहूर्त्त-
मचिन्तयन्नीचवचःप्रतप्तः ॥ १३१ ॥

131

जीवत्यहो व्याघ्रगणैर्निषक्तै-
राघ्रातरक्तैरघृणैर्गृहीतः ।
क्लीवैरधिक्षेपकटुप्रलापै-[1]
रावद्धपेटैर्न तु राजचेटैः ॥ १३२ ॥

132

निहन्ति मानं विदधाति लज्जां
छिनत्ति शर्म्माणि तनोति तापम् ।
असह्यनिर्व्वेदविपद्विधायी
न नीचसेवासदृशोऽस्ति शोकः ॥ १३३ ॥

133

१ H and W_2 °द्वेपकटुःप्रलापैः ।

དམན་པའི་ཚིག་དེ་ཡང་ཡང་དེས་བསམས་ནས།
སྨད་པའི་གདུང་བ་ཚ་བའི་མེས་རིག་པས།
ཤུགས་ཕྲུང་དུས་ནི་འཕང་བར་མདོན་འདོད་པས།
དཔལ་གྱི་རྒྱུད་མང་དག་ནི་སྦྲིད་ཞིང་གླངས། 134

ཁྲངས་པ་རབ་འཛོམས་དྲེགས་དང་ནོར་ཉམས་བདེ་རླག་དུ་ནི་ཉེ་བར་སོད།
ཚུལ་ལུགས་མིན་དང་ཆུ་བའི་སྤྱོད་དང་འཕྲེད་པར་བྱེད་དང་སྐྱོན་ཅན་དོང་།
གཞན་དུ་རིག་པའི་གདུང་བ་མི་བཟོད་ཉོན་མོངས་ཐུག་ཆུ་ལྟར་སྤྱོད་པས།
ཀྱེ་མ་འཁོར་བ་དག་ནི་མི་བསྲུན་ཚུལ་གྱིས་སྤྲུར་བའི་རྩེ་དགའ་བྱེད། 135

རླུང་གིས་རབ་བསྐྱོད་འཁྲི་ཤིང་རབ་དུ་གཡོ་བའི་འདབ་རྩེ་ལྟར་མི་བརྟན།
སྲིད་པ་འཁོར་བས་ཀྱེ་མ་སྐྱེས་བུ་རྣམས་ལ་སྨོངས་པ་རབ་བརྟེན་བྱེད།
ཆུས་གང་སྐྱེ་བའི་སྤྲིན་ཚོགས་ཡང་དག་འདུས་པས་རབ་བཅོམས་གློག་གི་ནི།
རྩེ་དགའི་ཉམས་ལྡན་དཔལ་འགྱུར་འདི་དག་དེ་ལ་ཡང་ནི་ལྷག་པར་གཡོ། 136

སྐྱེས་བུ་རྣམས་ཀྱི་རྒྱུད་པ་མཐའ་དག་བསྲུང་བའི་རིན་ཆེན་ཚུལ་ཁྲིམས་ནི།
རབ་གསལ་བདུད་རྩིའི་རང་བཞིན་དྲི་མེད་གལ་དེ་ཆ་ཡང་མ་ཉམས་ན།
འཁྱེར་པ་དང་བྲལ་ཉོན་མོངས་ཀྱིས་ཉེན་འདྲེན་བྱེད་མ་ཚངས་འཕྱོ་བོ་དང་།
ལྷག་པར་བདེ་བའི་མཛུག་དུ་ཡང་ས་ཆེན་པོར་ལྷུང་ཡང་ཉམ་པར་མཛེས། 137

मुहुर्विचिन्त्येति स नीचवाक्यं
लीनावमानव्यसनाग्नितप्तः ।
निश्वस्य कालक्षपणाभिकाङ्क्षी
शनैरगायत् कलयन् विपञ्चीम् ॥ १३४ ॥

मानोन्माथैः प्रथितविभवभ्रंशहेलोपहासै-
र्निर्मर्य्यादैरुचितचरितोत्पाटनैः सापवादैः ।
मर्म्मस्पर्शव्यसनविषयक्लेशशल्यायमानै-
र्हा संसारः खलकलनया नर्मलीलाः करोति ॥ १३५ ॥

विचलदनिलोद्वेल्लद्वल्लीदलाञ्चलचञ्चलः
स्थिरतरमहामोहं पुंसां करोति भवभ्रमः ।
अधिकतरलास्तत्राप्येता जलाविलसम्मिल-
ज्जनघनवनप्रोद्यद्विद्युद्विलासरसाः श्रियः ॥ १३६ ॥

विभवविरहक्लेशक्रान्तः सुखान्तमहावटे
नयनविकलः पङ्गुर्मूकश्च्युतोऽपि विराजते ।
सकलविपदां रक्षारत्नं प्रकाशसुधामयं
यदि न विमलं शीलं पुंसां मनागपि खण्डितम् ॥ १३७ ॥

ཆུ་དང་ཐང་ཡང་དབྱུག་པས་རིག་ཅིང་མཐའ་དག་རིག་པའམ་ཏྲི་དག་གྱིས་རྟོགས་ལ།
བློ་གྲོས་ཀྱིས་ནི་བགྲོད་དགའི་ལམ་ཀུན་རིག་ཅིང་ཐོས་ནས་གཞན་དུ་བདག་འགྲོ་སྟེ།
སྨོངས་པས་ལོང་ཞིང་ཚོམ་པའི་སྐྱེ་བོ་འདི་དག་ཡིད་བརྟན་དབུས་སུ་ཆགས་གྱུར་པའི།
འཇིགས་རུང་དགྲུལ་བའི་ཉོན་མོངས་མི་ཤེས་སོ་ཞེས་ལོང་བས་རབ་མང་ཅོ་འདྲི་བཞིན། 138

དེ་ལྟར་བདག་ཉིད་སྤྱོད་པའི་རྗེས་མཐུན་འཇུག།
ཡིད་འོང་ཉམས་ལྡན་དེ་ཡི་གླུ་བླངས་ཆེ།
མཚན་མོའི་མ་རྟག་ཏུ་ས་བདག་ཁང་བཟང་ན།
གཟིམས་པ་འཕྲད་ལསད་ནས་རབ་ཏུ་བསམས། 149

རྟག་ཏུ་སྨི་ལམ་ངན་པ་མཐོང་ཉིད་ཀྱིས།
དོགས་པའི་རྒྱུ་བོས་བདག་ནི་རབ་ཏུ་འཁྲུགས།
གཞོན་ནུ་རྗེ་འཇོག་མ་གནས་ད་ལྟ་ཡང་།
བདག་ལ་སྤྲིང་ཡིག་ཅི་ཕྱིར་ཡོངས་མི་སྤྲིང་། 140

རྟག་ཏུ་མི་བརྗེད་ཉེ་བའི་བཞིན་རས་ལ།
མངོན་ཕྱོགས་དེ་ནི་ང་ཉིད་བརྗེད་དམ་ཅི།
ངས་པར་ཡུན་རིང་བྲལ་བས་སྐྱེ་བོ་ནི།
མཛད་པའི་རྗེས་སུ་འཆི་རབ་ལྟོད་བར་འགྱུར། 141

यष्ट्या वेद्मि जलं स्थलं सशकलं स्पर्शेन गन्धेन वा
बुद्ध्या सर्व्वमवैमि दुर्गमपथं श्रुत्वा व्रजाम्यन्यतः।
निश्वासान्तरसक्तघोरनरकक्लेशं न जानात्यसा-
वन्धेनेति विडम्ब्यते बहुतरं मोहान्धमुग्धो जनः ॥ १३८ ॥

इत्यात्मवृत्तानुकृतिप्रवृत्तं
गायत्युदारं सरसेन तस्मिन्।
हर्म्म्याग्रसुप्तः सहसा प्रबुद्धः
क्षपावसाने क्षितिपः प्रदध्यौ ॥ १३९ ॥

सदैव दुःस्वप्ननिरीक्षणेन
शङ्काकलङ्कैर्भ्रमाकुलोऽहम्।
अद्यापि मे तक्षशिलानिवासी
न किं कुमारः प्रहिणोति लेखम् ॥ १४० ॥

किं विस्मृतो नित्यमविस्मृतस्य
तस्याहमासन्नसुखोन्मुखस्य।
चिरप्रवासेन जनस्य नूनं
स्नेहानुबन्धाः शिथिलीभवन्ति ॥ १४१ ॥

གཡས་པས་བཅིངས་གླུ་ཡི་སྒྲ་འདི་ཡང་།
རྒྱུད་མང་དབྱངས་སྙན་གྱིས་མཚན་རབ་གསལ་བ།
དེ་ཡི་ཉིད་མཚུངས་སྙན་པའི་རྗེས་མཐུན་པ།
དྲི་ཟའི་འཇིག་རྟེན་ལས་བཞིན་བདག་གིས་པས། 142

རེ་ཞིག་གླུ་སྐད་འདི་ནི་དེ་ཉིད་ཀྱི།
ཅི་སླད་དེ་ཡིབ་འདི་ཅི་ཡོངས་མི་ཤེས།
སྐད་ཅིག་ཉིད་ལྟར་ནོམ་བསམས་རྒྱལ་པོ་ཡི།
ཉུག་རུམ་བ་བདང་བུ་ནི་དེ་ནས་བོས། 143

རིང་ནས་མིག་བྲལ་དེ་ནི་འོང་བ་དག།
མཚོ་སྐྱེས་དཔལ་དང་བྲལ་བ་བཞིན་མཐོང་ནས།
ཆུང་མར་བཅས་པའི་བུ་ནི་ཡོངས་ཤེས་ཏེ།
ས་ཡི་བདག་པོ་སྨོངས་པས་བཅོམ་ནས་འགྲོལ། 144

ཁ་བའི་ཟེར་མའི་ཕྱོགས་འདྲ་རྒྱས་རིག་པས།
དལ་གྱི་འདུ་ཤེས་ཐོབ་པའི་མི་བདག་དེ།
གཞོན་ནུ་བར་འོངས་བ་ཕད་པར་ནི།
ཡང་དག་བཀད་ནས་ཕུན་རིང་སྤུ་ངན་བྲུས། 145

शृणोमि चेमं गमकानुबन्धं
मूर्च्छद्विपञ्च्या मधुरस्वराङ्कम् ।
तत्तुल्यमेव श्रवणानुकूलं
गन्धर्वलोकादिव गीतशब्दम् ॥ १४२ ॥

तस्यैव तावन्मृदुगीतमेत-
न्मूढः स कस्मात् किमिदं न जाने ।
क्षणं विचिन्त्येति विसृज्य राजा
महत्तरं पुत्रमथानिनाय ॥ १४३ ॥

दूरात्तमायान्तमुदस्तनेत्र-
सरोरुहं श्रीरहितं विलोक्य ।
पुत्रं परिज्ञाय वधूसहायं
महीपतिर्मोहहतः पपात ॥ १४४ ॥

स लब्धसंज्ञः शनकैर्जलेन
हिमच्छटाशीकरदन्तुरेण ।
समीपमाप्तं नृपतिः कुमार-
मुत्सङ्गमारोप्य चिरं शुशोच ॥ १४५ ॥

འཚོ་བའི་འཇིག་རྟེན་མིག་སྒྲོ་ཀྱི་ཀུད་བུ།
སྡུག་བསྔལ་སྐབས་འདི་ཁྱོད་ཀྱིས་ཅི་སྐད་བསྟེན།
ལྷ་ཡི་མཛེས་མ་སྨོངས་བྱེད་ཁྱོད་ཀྱི་ནི།
མིག་གི་ཆུ་སྐྱེས་ཟུང་དེ་གང་དུ་སོང་། 146

ཟབ་མོའི་ས་གཞི་ཡོན་ཏན་རིན་ཅན་མཛོད།
སྙིང་སྟོབས་ཕུང་པོ་དབྱངས་ཅན་གྲོགས་ཁྱོད་ལས།
ཁ་བས་བཅོམ་པའི་ཆུ་སྐྱེས་ཚལ་ལས་བཞིན།
ཉམ་འཕྲུལ་ས་གཞི་དཔལ་དེ་གང་དུ་སོང་། 147

གང་དུ་གཟུགས་དེ་མི་བཟོད་ཡོང་འདི་གར།
འགྱུར་དེ་གང་དུ་གང་དུ་སྐབས་ངན་འདི།
བདག་སྙིང་མི་འགས་འདི་ལ་སུ་ཞིག་གིས།
རྡོ་རྗེའི་མན་ངག་བྱིན་པ་ཡོངས་མི་ཤེས། 148

ཁྱོད་འགྱུར་རྗེས་འབྲང་སྐྱེ་བོ་དེ་གང་དུ།
ཁྱོད་ཀྱི་ཆུང་མ་གཡོ་མེད་གཅིག་པུ་འདི།
སྡུག་ཀྱང་དམ་པའི་བདེན་པའི་སྤྱོད་ཚུལ་བཞིན།
རིགས་ཀྱི་རྗེས་མཐུན་འཁོར་གྱི་ལྷག་མར་གྱུར། 149

हा पुत्र नेत्रोत्सव जीवलोके
कस्मादिमां दुःखदशां श्रितोऽसि ।
विलोभनं तत् सुरसुन्दरीणां
क्व लोचनाम्भोजयुगं गतं ते ॥ १४६ ॥

गाम्भीर्य्यभूमे गुणरत्नकोष
सरस्वतीवल्लभ सत्वराशे ।
त्वत्तः क्व सा विभ्रमभूः प्रयाता
हिमाहताम्भोजवनादिव श्रीः ॥ १४७ ॥

रूपं क्व तत् क्वेदमसह्यमान्ध्यं
क्व सा विभूतिः क्व च दुर्दशेयम् ।
न दीर्य्यते मे हृदयं न जाने
केनास्य दत्तः कुलिशोपदेशः ॥ १४८ ॥

क्वासौ जनस्त्वद्विभवानुसारी
कुलानुरूपा तव निश्चलेयम् ।
एकैव पत्नी परिवारशेषः
कष्टेऽपि साधोरिव धैर्य्यवृत्तिः ॥ १४९ ॥

ཞེས་པ་མཆི་མའི་རྒྱུན་གྱི་ཡི་གེ་ཉམས།
ཚོ་ངེ་སྨྲ་བ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས།
དེ་ཡི་ཕང་ལས་སྤུར་དུ་སར་བབས་ཏེ།
གཞོན་ནུ་བརྟན་པས་དེ་ལ་བཏུད་ནས་སྨྲས། 150

ས་ཡི་བསྒྲུ་བྱིན་སྐྱ་ངན་ཉོམ་པར་ཐོང་།
སྐྱ་ངན་དག་གིས་ཞིལ་མཐའ་བརྟན་པ་མིན།
མཐོ་དང་དམའ་ཉོམས་བརྒྱག་སྨད་ངེས་པར་ཉི།
སྐྱོང་བྱའི་རང་བཞིན་འདི་ནི་སེལ་ཆེ་བྱེད། 151

མི་ཉམས་དབང་ཕྱུག་ངོ་མཚར་བདེ་བ་ཡི།
ཉ་གྲོན་ཅན་དང་དཔལ་མཛེས་ཐིག་ལེ་ཅན།
ལུས་ཀྱང་མཐར་བྱེད་རྩེ་བའི་ལས་རྣམས་ཀྱིས།
སྐྱེལ་པས་སྒྲོགས་པ་སྐད་ཅིག་ཉིད་ཀྱིས་འགྲོ། 152

གལ་ཏེ་དངོས་མེད་ཉམས་སྐྱོང་སྲིད་པ་འདིར།
དངོས་ཚོགས་རང་བཞིན་བདེན་པར་གྱུར་པ་ན།
ཐུབ་པ་འདི་དག་ཡོངས་སྤྱོད་ཡོངས་བཏང་ནས།
ངེས་པར་དབེན་པ་དག་ཏུ་གནས་མི་བྱེད། 153

इत्यश्रुसंवेगविशीर्णवर्णं
प्रलापिनस्तस्य वचो निशम्य ।
नत्वा कुमारस्तमुवाच धीर-
स्तूर्णं तदङ्कादवतीर्य्य भूमिम् ॥ १५० ॥

विमुञ्च पृथ्वीपुरुहूत शोकं
शुचाभिभूता न भवन्ति धीराः ।
क्षयाय जागर्त्ति नतोन्नताना-
मेष स्वभावो भवितव्यतायाः ॥ १५१ ॥

ऐश्वर्य्यमाश्चर्य्यसुखावतंसं
लावण्यलक्ष्मीतिलकं वपुश्च ।
क्षणेन यात्येव कृतान्तनर्म-
कर्म्मोर्म्मिनिर्म्माणहृतं नराणाम् ॥ १५२ ॥

भवेदभावानुभवे भवेऽस्मिन्
सत्यस्वभावो यदि भाववर्गः ।
ध्रुवं न कुर्य्युर्मुनयस्तदैते
संत्यक्तभोगा विजने निवासम् ॥ १५३ ॥

ཅེས་སྨྲས་དེ་ལ་ཕྱུད་པའི་རྒྱུ་མཚན་ནི།
རྒྱལ་པོ་སྒྲ་ངན་ལྡན་བས་ཡང་ཡང་དྲིས།
དེ་ལ་དལ་གྲིས་སྤྲིང་ཡིག་དང་འབྲེལ་བའི།
རང་གི་མིག་ནི་རྣམ་པར་ཉམས་ཚུལ་བཤད། 154

སྤྱོད་ངན་སྤྱོད་པ་རྣམས་ལ་འདང་མ་སྤྱད་པའི།
གཏུམ་པའི་སྤྱོད་ཚུལ་མི་བཟང་དེ་ཐོས་ནས།
སྤྲ་རེ་རྗོན་པོས་རྩ་བ་ཡོངས་བཅད་པའི།
ཡལ་འདབ་ཅན་བཞིན་འཇོན་བྱེད་ཡུ་བ་འགྲེལ། 155

འདུ་ཤེས་ཐོབ་དེས་སྐར་རྒྱལ་སྐྱུང་བ་ཡིས།
བཀོད་པའི་སྦྱོར་བ་གྲ་གྲུ་དེ་བསམས་ནས།
དེ་ཡི་ཚད་པ་བྱུང་མེད་གསོད་པ་ཡི།
སྡིག་ལྡང་ཆོས་ལ་གུས་པ་བཞིན་བསྟེན་གྱུར། 156

གདུག་པའི་རྣམ་པ་གནོད་པ་ཀྱི་ཆེ་བ།
དེ་ལ་ལེན་སྦྱོར་རབ་ཏུ་བརྩོན་པ་དེ།
རང་ལས་སྨིན་པས་བཟོད་དཀའི་སྡུག་བསྔལ་དང་།
ལྡན་པར་སྨྲ་བའི་གཞོན་ནུས་རབ་ཏུ་བསྒྲིག། 157

इति ब्रुवाणः स विषन्निमित्तं
पृष्टः पुनः शोकमयेन राज्ञा ।
न्यवेदयल्लेखनिबद्धमस्मै
निजं शनैर्नेत्रविनाशवृत्तम् ॥ १५४ ॥

श्रुत्वैव तत्तीव्रनृशंसवृत्तं
निवृत्तवृत्तेष्वपि न प्रवृत्तम् ।
कुठारधारापरिभूतमूलः
पपात शाखीव धरावमूलः ॥ १५५ ॥

स लब्धसंज्ञः कुटिलं विचिन्त्य
तं तिष्यरक्षाचरितप्रयोगम् ।
समुद्ययौ स्त्रीवधपातकेऽपि
धर्म्मादरेणैव विनिग्रहेऽस्याः ॥ १५६ ॥

क्रौर्य्यप्रकारे विपुलापकारे
तस्मिन् प्रतीकारसमुद्यतं तम् ।
अवारयद्दुःसहदुःखयोगं
स्वकर्म्मपाकेन वदन् कुमारः ॥ १५७ ॥

ས་བདག་གདུང་བས་གཟིར་ཅིང་སྐྱུ་ངན་དང་།
ཁྲོ་བས་ཚིག་པས་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ།
གདུག་པ་ལ་ཆགས་འཕགས་མིན་གཏུམ་མོ་འདི།
ཁྱོད་ནི་སྨོངས་པས་ཡོངས་སུ་སྐྱུང་ངམ་ཅི། 158

སྤང་བར་སྦྱོར་དང་མཛའ་བས་བཅིངས་པ་ལ།
མཚུངས་པའི་ཡིད་ཅན་གང་དེ་མི་འཚམ་ཅི།
གང་ལ་གནོད་ལ་ཁྲོ་བའི་ཆ་མེད་པ།
དེ་ལ་ཕན་ལ་དྲིན་ཡང་ཇི་ལྟར་ཡོད། 159

ཅེས་པ་རབ་སྨྲ་ཤུགས་འཁྲིན་གཟིར་བ་ཡི།
ཡབ་ལ་གཞོན་ནུ་བརྟེན་པས་རབ་སྨྲས་པ།
རྒྱལ་པོ་བདག་ལ་སྡུག་བསྔལ་ཆ་འགའ་མེད།
མི་བཟད་གནོད་ལའང་ཁྲོ་བའི་གདུང་བ་མིན། 160

མི་བདག་རང་གི་ལག་གིས་ཕྱུང་བ་བཞིན།
གལ་ཏེ་མ་ལ་བདག་ཡིད་རབ་དང་ན།
བདེན་པ་དེ་ཡིས་རེ་ཞིག་མིག་གཉིས་ནི།
སྔོན་བཞིན་འཕྲུལ་ལ་ཡང་དག་འབྱུང་བར་ཤོག། 161

तमब्रवीद्भूमिपतिर्व्यथार्त्तः
शोकेन कोपेन च दह्यमानः ।
मोहात् किमेतां निश्चितामनार्यां
क्रौर्य्यप्रसक्तां परिरक्षसि त्वम् ॥ १५८ ॥

द्वेषोद्यते स्नेहनिबन्धने वा
तुल्यं मनो यस्य स किंमनुष्यः ।
यस्यापकारेऽस्ति न रोषलेशः
तस्योपकारेऽपि कथं प्रसादः ॥ १५९ ॥

इति श्वसन्तं प्रलपन्तमार्त्तं
धीरः कुमारः पितरं जगाद ।
राजन् न मे दुःखलवोऽस्ति कश्चित्
तीव्रापकारेऽपि न मन्युतापः ॥ १६० ॥

मनः प्रसन्नं यदि मे जनन्यां
येनोद्धृते च स्वकरेण नेत्रे ।
तत्तेन सत्येन ममास्तु ताव-
न्नेत्रद्वयं प्राक्तनमेव सद्यः ॥ १६१ ॥

ཅེས་བརྗོད་ཚམ་ལ་དེ་ཡི་དུས་ཉིད་ན།
མི་བདག་བུ་ཡི་སྨྱུན་གྱི་མཆོ་སྐྱེས་རྒྱང་།
འཇིག་རྟེན་བདན་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་ཡིད་ཆེས་བྱེད།
དཔལ་མོ་ནོམ་པར་ཆགས་བྱེད་རབ་དུ་བྱུང་། 162

འདྲེན་བྱེད་རྒྱང་གིས་ནོམ་པར་མཛེས་གྱུད་ཅིང་།
སྐྱེ་ཀུ་ནམས་ནི་བདེ་དང་སྦྲོ་བྱེད་བའི།
བྱུ་དེ་རྒྱལ་ཚབ་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས་ཞེས་ནས།
མི་བདག་དེ་ཡིས་ཟུན་ཚོགས་ནམས་ལ་བསྐོས། 163

དེ་ནས་ས་བདག་གིས་ནི་བཙུན་མོ་ལ།
དྲག་པོའི་གནོད་ལ་མཚུངས་པའི་ལན་བསྒྲུབས་བཞིན།
རྗོ་འཇིག་དབང་པོ་ལ་ཡང་བྲོ་བའི་མི།
བཟོད་དཀའ་དེ་ཡིས་བཟོད་པས་རབ་དུ་བཏང་། 164

དགེ་མཚན་དེ་ལས་དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་དྲིས།
དགེ་འདུན་གནས་བརྟེན་མཁས་པ་རིས་སླྲས་པ།
ས་སྐྱོང་བུ་འདི་སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་ནི།
ཀ་ཤིའི་གྲོང་ཁྱེར་དག་དུ་ཇོན་པར་གྱུར། 165

इत्युक्तमात्रे नृपनन्दनस्य
प्रादुर्बभूवाक्षिसरोजयुग्मम् ।
सत्यव्रतप्रत्ययकारि लोके
विलोभनं तत्क्षणमेव लक्ष्म्याः ॥ १६२ ॥

नृपः सुखोत्साहकरं प्रजानां
विराजमानं नयनद्वयेन ।
तं यौवराज्ये विमुखं विदित्वा
तमात्मजं तत्प्रतिमं न्ययुङ्क्त ॥ १६३ ॥

घोरापचारे सदृशं विधाय
पत्न्याः प्रतीकारमथ क्षितीशः ।
क्रोधानलं तक्षशिलाधिपेऽपि
तन्मर्षणाद्दुःसहमुत्ससर्ज ॥ १६४ ॥

ततः कौतुकाङ्क्षिक्षुगणेन पृष्टः
प्रोवाच सङ्घस्थविरः स विद्वान् ।
जन्मान्तरे लुब्धक एष काशी-
पुरे बभूव क्षितिपालपुत्रः ॥ १६५ ॥

དེ་ཡིས་གངས་ལྗོན་ངོས་ཀྱི་ཕྱུག་ཉུགས་པའི།
རི་དགས་ལྔ་བརྒྱ་དག་ནི་ཐོབ་གྱུར་ནས།
མིག་དག་ཕྱུང་ནས་ལོང་བར་རབ་བསྒྲུབས་ཏེ།
ཛེ་ཏཱར་ཉེ་བར་འཁོར་བ་རིམ་གྱིས་བཤད། 166

དེ་ནས་སྐྱེ་གཞན་ལ་ཡང་ཚོང་དཔོན་བུ།
སྤུག་ཧྲ་ཞེས་ནི་བྲིས་པ་རབ་སྨོངས་ལས།
མཆོད་རྟེན་གྱིས་ནི་རྒྱལ་བའི་སྐུ་གཟུགས་ཀྱི།
བཞིན་རས་པདྨ་མཚོན་གྱིས་མིག་མེད་བྱས། 167

འདུ་ཤེས་བསྐྱུང་ངེས་དེ་ཡི་སྤྱན་ཟུང་དག།
ཨིནྡྲ་ནཱི་ལའི་རང་བཞིན་གསར་དུ་བསྒྲུབས།
དེ་ནས་སྐྱེ་གཞན་ལ་ཡང་མཆོད་རྟེན་ནི།
ཞིག་པ་གསོ་དང་མཆོད་པ་དག་ཀྱང་བྱས། 168

ནགས་སྤྲུ་རི་དགས་རྣམས་ཀྱི་མིག་ཕྲོགས་ཤིང་།
བྲིས་པས་མཆོད་རྟེན་སྐུ་གཟུགས་སྤྱན་ཕྱིས་པས།
རྒྱལ་པོའི་བུ་འདས་སྐྱེ་བ་གཞན་རྣམས་དང་།
ད་ལྟ་མིག་དག་རྣམ་པར་ཉམས་པ་ཐོབ། 169

गुहाप्रविष्टं हिमवत्तटान्ते
लब्ध्वा मृगाणां शतपञ्चकं सः।
अन्धं विधायाक्षिविपाटनेन
यथोपयुक्तं न्यवधीत् क्रमेण ॥ १६६ ॥

अथान्यजन्मन्यपि बालकोऽसौ
मुग्धाभिधः श्रेष्ठिसुतः प्रमोहात्।
चकार चैत्यप्रतिमा-जिनस्य
शस्त्रेण निर्लोचनमाननाब्जम् ॥ १६७ ॥

संजातसंज्ञश्च नवेन्द्रनील-
मयं व्यधादक्षियुगं स तस्य।
ततोऽन्यजन्मन्यपि शीर्णचैत्य-
संस्कारपूजां स पुनश्चकार ॥ १६८ ॥

नेत्रापहारेण वने मृगाणां
बाल्ये च चैत्यप्रतिमाक्षिलोपात्
अवाप्तवानेष विनाशमक्ष्णो-
र्जन्मान्तरेष्वद्य च राजपुत्रः ॥ १६९ ॥

རིན་ཙེན་སིག་ལྡན་སྐུ་གཟུགས་བྱས་པ་ཡིས།
ནོམ་པར་ཉམས་པའི་སིག་ནི་སྐྱར་ཡང་ཐོབ།
མཆོད་རྟེན་ཞིག་པ་རབ་ཏུ་གསོས་བྱས་པས།
རབ་ཏུ་དད་ལྡན་མཛེས་པའི་རང་བཞིན་གྱུར། 170

ཀྱུན་ཞུགས་འབྲས་བུར་རབ་འཇུག་ཏྲི་མ་དང་བྲལ་སྣང་བའི་རིམ་བ་འདི་ཡིས་ནི།
ཆགས་བྲལ་རབ་འབར་བདེན་པ་མཐོང་བའི་སྐྱབ་བྱེད་དག་ལ་གནས་པའི་
དབང་གྱུར་ཐོབ།
དུས་ཀྱི་ཡང་དག་བསོད་ནམས་དབང་ལས་དལ་ཀྱི་རྫོགས་པའི་སངས་
ཀྱུས་ཉིད་དུ་འགྱུར།
ཞེས་པ་གནས་བརྟན་ཀྱིས་གསུང་དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་ཐོས་ནས་ཡ་མཚན་
ལྡན་པར་གྱུར། 171

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་ཀྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཀུ་ཧླ་ལའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་དགུ་པའོ།།

स रत्ननेत्रां प्रतिमाञ्च कृत्वा
दृष्टिं विनष्टां पुनराससाद ।
विशीर्णचैत्यप्रतिपूरणेन
प्रासादिकः कान्तिमयश्च जातः ॥ १७० ॥

स्रोतःप्राप्तिफलप्रवृत्तविमलालोकक्रमेणामुना
वैराग्योज्ज्वलसत्यदर्शनविधौ लब्धाधिकारस्थितिः ।
सम्यक् पुण्यवशादुपैष्यति शनैः कालेन संबुद्धता-
मित्युक्तः स्थविरेण भिक्षुनिवहः श्रुत्वाभवद्विस्मितः ॥ १७१ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां कुणालावदानं नाम एकोनषष्टितमः पल्लवः ॥

CHAPTER LX.

ཀླུ་གཞོན་ནུ་འི་རྟོག་བརྗོད་ནི།

ཡལ་འདབ་དྲུག་ཅུ་པའོ།

འདི་ནི་མི་རྣམས་ལུས་དག་ཉོན་མོངས་ཕུང་པོས་རབ་ཏུ་གདུངས།
འཇིག་རྟེན་ཕ་རོལ་ཏུ་ཡང་མི་བཟད་དམྱལ་བའི་མེ་ཡིས་བསྲེགས།
སྐྱབས་འགྲོའི་བསོད་ནམས་དང་ནི་བསླབ་པའི་གནས་དག་ཐོབ་རྣམས་ཀྱི།
ལུས་ལ་ནམ་ཡང་སྡུག་བསྔལ་དག་གིས་སྡིག་པའི་མཐུ་ཡོད་མིན། 1

ཀྱི་མཚོའི་མཐར་ནི་ནོར་ཞེས་པའི། ཀླུ་ནི་གཅིན་མང་ལྡན་པ་བྱུང་།
གདེངས་ཀའི་རིན་ཅེན་རབ་འབར་གྱིས། སྣང་བས་སྒྲོན་མེད་ཉིན་མོར་བྱས། 2

དེ་ཡི་ཁང་པར་ཉིན་མཚན་དུ། བྱེ་ཚན་དག་ནི་བབས་གྱུར་ཏེ།
གང་གིས་ལག་འགྲོ་རྣམས་ཀྱི་ལུས། གདུང་བ་དྲག་པོས་ཉེན་པར་གྱུར། 3

ནོར་བཟང་ཞེས་བྱ་གཅེས་པའི་བུ། རང་བཞིན་ཉིད་ཀྱིས་རབ་གཞོན་པ།
བྱེ་མས་ཡོངས་སུ་གཟིར་གྱུར་པས། ནམ་ཞིག་དེ་ལ་རབ་ཏུ་དྲིས། 4

ལྷ་ཅིག་བྱེ་མ་ཚ་བ་འདིས། བདག་ཅག་ཅི་སླད་གདུང་བར་བྱེད།
སྡུགས་དང་ཚ་བའི་སྦྱོར་བ་དག། ཅི་ཡི་ཉེ་བར་ཞི་བར་འགྱུར། 5

षष्टितमः पल्लवः ।

नागकुमारावदानम् ।

इह कषति शरीरं क्लेशराशिर्नराणां
दहति च परलोके नारकः क्रूरवह्निः ।
शरणगमनपुण्यप्राप्तशिक्षापदानां
प्रभवति ननु देहे दुःखदाहः कदाचित् ॥ १ ॥

धननामा समुद्रान्ते नागोऽभूद्बहुबान्धवः ।
फणारत्नोज्ज्वलालोककलितापूर्ववासरः ॥ २ ॥

पपाताहर्निशं तस्य भवने तप्तवालुका ।
ययाङ्गेषु भुजङ्गानां तीव्रतापव्यथाभवत् ॥ ३ ॥

कदाचित् सुधनो नाम पुत्रः पप्रच्छ तं प्रियः ।
सुकुमारः प्रकृत्यैव वालुकापरिपीड़ितः ॥ ४ ॥

कस्मादस्मानियं तात बाधते तप्तवालुका ।
मन्त्रमूलप्रयोगेन केनेयमुपशाम्यति ॥ ५ ॥

འགའ་ཞིག་བདག་ལས་ལྷག་པ་དང་། གཞན་ནི་བདག་ལས་དམན་པ་ཡི།
ཀླུ་ནི་རྒྱ་མཚོ་འདི་ན་གནས། ཕྱུ་ཉིད་སྡུག་བསྔལ་གྱིས་གཟིར་ཏེ། 6

ཞེས་པ་བྲུ་ཡིས་བྲིས་དེ་ལ། བློ་གྲོས་ཆེན་པོ་དེས་སླས་བྲུ།
ཇི་ལྟར་གདེངས་ཅན་གཞན་གྱི་ཆོས། ཤེས་པ་དེ་ལྟར་ཕྱུ་ཅག་མིན། 7

ཆོས་ཀྱི་ཉེར་བསྟན་གྱིས་དགག་པ། ཞི་ཞིང་བདེན་པར་སྨྲ་རྣམས་ལ།
དེས་པར་ཉེ་བར་གདུང་གྱུར་པ། ལུས་ལ་མ་ཡིན་ཡིད་ལ་འདང་མིན། 8

སངས་རྒྱས་ཆོས་དང་ཚོགས་ཞེས་པ། སྐྱབས་འདོས་བསོད་ནམས་དཀོན་ཆོག་ནི།
གསུམ་ལ་སྐྱབས་སོང་མཁས་པ་གང་། དེ་ལ་ཡོངས་གདུང་རེག་མི་བྱེད། 9

གང་གིས་ཉོན་མོངས་རབ་ཞི་པའི། བསླབ་པའི་གནས་རྣམས་ཐོབ་གྱུར་ཅིང་།
བདུད་རྩིས་བྲན་པ་དེ་དག་ལ། སྡིག་དང་འཇིགས་པ་གང་ལ་སྤྱོད། 10

ཤཱཀྱ་ཐུབ་པ་འཇིག་རྟེན་གྱི། ཉོན་མོངས་ཐམས་ཅད་རབ་ཞིའི་གཉེན།
རྒྱལ་བ་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་གནས་པ། མཉན་ཡོད་ན་ནི་བཅོམ་ལྡན་ཡོད། 11

སྙིང་རྗེ་ཟླ་བའི་འོད་བསྐྱེད་དེ། སེམས་དཔའ་ལྟར་དཀར་མན་ངག་གིས།
འོད་ཟེར་ཚོགས་ཀྱི་འགྲོ་གསུམ་དུ། བདུད་རྩིའི་ཆར་པ་མངོན་པར་འབེབས། 12

གང་ཞིག་ཉམ་པར་མ་ཐུལ་བས། བསླབ་པའི་གནས་ཐོབ་མི་སྲུང་བ།
དེ་དག་དམྱལ་བ་མི་བཟད་པས། གདུང་བ་དྲག་པོས་བརྒྱག་པར་འགྱུར། 13

अस्मदभ्यधिकाः केचिदस्मत्प्रत्यवराः परे ।
नागाः सन्ति समुद्रेऽस्मिन् दुःखार्त्ता वयमेव किम् ॥ ६ ॥

इति पृष्टः स पुत्रेण तमुवाच महामतिः ।
यथान्ये फणिनः पुत्र धर्म्मज्ञा न तथा वयम् ॥ ७ ॥

धर्म्मोपदेशशुद्धानां शान्तानां सत्यवादिनाम् ।
उपतापो भवत्येव न शारीरो न मानसः ॥ ८ ॥

न तान् स्पृशति सन्तापः पुण्यं रत्नत्रयं बुधाः ।
ये बुद्धधर्म्मसंघाख्यं शरण्यं शरणं गताः ॥ ९ ॥

शिक्षापदान्यवाप्तानि क्लेशप्रशमनानि यैः ।
तेषाममृतसिक्तानां पापतापभयं कुतः ॥ १० ॥

श्रावस्त्यामस्ति भगवान् जिनो जेतवनाश्रयः ।
लोके शाक्यमुनिः सर्व्वक्लेशप्रशमबान्धवः ॥ ११ ॥

उपदेशांशुनिवहैः सत्वशुभ्रैर्जगत्त्रये ।
करुणाकौमुदीस्फूतिरमृतं सोऽभिवर्षति ॥ १२ ॥

दुर्विनीता न रक्षन्ति प्राप्य शिक्षापदानि ये ।
तीव्रतापमयस्तेषां नरकेष्वक्षयः क्षयः ॥ १३ ॥

ཞེས་པ་ཕ་དང་མ་ཡི་ཡང་། ཚིག་དག་ཐོས་ནས་ལག་འགྲོ་ནི།
མི་རྟོག་མཆོག་དག་ཡོངས་བཟུང་ནས། དགའ་བའི་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་དུ་སོང་། 14

ཚིག་ཞེས་སྒྲོར་ནི་མངོན་ཕྱོགས་རེས། བདེ་བར་གཤེགས་པའི་གནས་ཕྱིན་ཏེ།
དེར་ནི་ཆོས་དག་ཅན་པ་ལ། ཚོགས་པའི་འཁོར་དག་མཐོང་བར་གྱུར། 15

བཞིན་རས་མཛེས་ཤིང་སྤྱན་ཡངས་པ། ཟླ་བ་ཉ་དང་པད་ཚལ་དག།
འགྲོགས་པ་བཞིན་དུ་ཐབ་རི་སྟེར་བའི། རྒྱལ་བ་དེར་ནི་མཐོང་བར་གྱུར། 16

ཉེ་བར་སྟོན་བྱེད་མཚུ་ཡིས་ནི། ཆགས་ལྡན་རྣམས་ཀྱི་དམར་བ་ཉིད།
རབ་གྱིས་དམན་པ་ཉིད་བྱས་ཤིང་། གསལ་བར་ཟིལ་གྱིས་གནོན་པ་བཞིན། 17

རྒྱན་དང་བྲལ་བའི་མཛེས་སྡུག་གིས། ནོ་བའི་ཞགས་པ་རབ་བརྒྱན་ཅིང་།
སྒྲིབ་པ་དང་བྲལ་སྟོང་པ་ཉིད། རབ་ཏུ་གྲུས་པ་སྟོན་པ་བཞིན། 18

དཔུང་པ་ཆོས་ཀྱི་གཉིས་འཕུང་ལག། ཕྱིན་པས་མཛེས་པ་རྣམ་པར་འཛིན།
ནུས་མཐུའི་ཁང་པ་དག་གི་ནི། ཀ་བ་གསེར་གྱི་རང་བཞིན་བཞིན། 19

ཆོས་གོས་རྒྱན་གང་ལྡན་པ་ཡིས། ཞབས་ཀྱི་གྲིབ་མ་སྒྲོ་བྱེད་པ།
ས་གཞི་རྟོགས་པ་ཐོབ་པ་ལ། པདྨའི་གྲོགས་རྣམས་ཀྱིས་བསྐྱབས་བཞིན། 20

ལུས་ཀྱི་མཛེས་པ་སྐྲུན་པ་ནི། སྤྱན་གྱི་བདུད་རྩིའི་ཆར་འབེབས་པས།
དམ་པ་རྣམས་ཀྱི་འཁོར་བ་ཡིས། མྱ་ངན་ཡོངས་གདུང་བཟློག་པ་བཞིན། 21

इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं जनन्याश्च भुजङ्गमः ।
आदाय दिव्यपुष्पाणि पुण्यं जेतवनं ययौ ॥ १४ ॥

सुगताश्रममासाद्य धर्म्मश्रवणसङ्गताम् ।
ददर्श पर्षदं तत्र स सन्तोषसुखोन्मुखीम् ॥ १५ ॥

तत्रापश्यज्जिनं कान्तवदनं दीर्घलोचनम् ।
पूर्णेन्दुपद्मवनयोरिव मैत्रीसुखप्रदम् ॥ १६ ॥

उपदेशकृता व्यक्तमधरेणाधरीकृताम् ।
तर्ज्जयन्तमिवोत्सिक्तां रागिवर्गस्य रक्तताम् ॥ १७ ॥

निराभरणलावण्यकर्णपाशविभूषितम् ।
दर्शयन्तमिवासक्तां[1] निरावरणशून्यताम्[2] ॥ १८ ॥

धर्म्मद्विपकरौ बाहू बिभ्राणं दानशोभितौ ।
प्रभावभवनस्तम्भौ शातकुम्भमयाविव ॥ १९ ॥

दिशन्तं चरणच्छायां चीरैरावरणं भुवः ।
लब्धप्रबोधैर्विहितामिव राजीवजीवितैः ॥ २० ॥

देहकान्तिवितानेन नयनामृतवर्षिणा ।
संसारमरुसन्तापं वारयन्तं सतामिव ॥ २१ ॥

१ H ०मिवोत्सिक्तां । २ means निष्कलङ्कवैराग्यम् ।

དེ་མཐོང་ཉིད་ན་ཀླུ་ཡི་སྲུ། ཡོངས་སུ་གདུང་བ་བདང་བར་གྱུར།
བདག་ཉིད་ཆེ་རྣམས་མཐོང་བ་ཉིད། གདུང་བའི་སྐྱོན་ཀུན་ཞི་བར་བྱེད། 22

སྨིམ་པ་མེ་ཏོག་གིས་གང་བ། དེ་ལ་གཏོར་ནས་དེས་ཕྱག་གསལ།
དེ་ཡི་ཞབས་པད་རེག་པ་ཡིས། འཕྲུལ་ལ་བསིལ་བ་ཉིད་དུ་གྱུར། 23

ད་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ནི། བསླབ་པའི་གནས་ཐོབ་མཁས་པ་དེས།
ཐལ་མོ་སྦྱར་ནས་དེ་ལ་ནི། ཇི་སྲིད་འཚོ་བར་ལྷག་གནས་བྱས། 24

དེ་ལ་བཅོམ་ལྡན་གྱིས་གསུངས་པ། ཐམས་ཅད་རྗེས་སུ་གཟུང་བྱ་ལ།
གཅིག་ཉིད་ཁོ་ནའི་ལྷག་གནས་ནི། ཇི་སྲིད་འཚོ་བ་ཇི་ལྟར་འོས། 25

གུས་ལ་དགྱེས་པས་དེ་བརྗོད་ནས། དེ་ལ་བསྟོན་པས་བཅོམ་ལྡན་དེ།
གདེངས་ཅན་རྣམ་པར་བརྟག་པ་ནི། ཡོངས་རྫོགས་མཛད་ཅིང་དལ་གྱིས་ཆས། 26

དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་སྣ་དྲངས་ནས། རིམ་གྱིས་བྱོན་པ་དེ་ལ་ནི།
ཀླུ་ཡི་མཐུ་ལས་གནས་དང་གནས། མཐོ་རིས་ལྷ་བུར་མཛེས་པ་བསྐྲུབས། 27

རིན་ཆེན་གསེར་འོད་བཀྲ་བ་ཡི། མཆོག་གི་སྐྱེད་ཚལ་མཛེས་པ་དང་།
ལོངས་སྤྱོད་འཛིན་པས་བྲེལ་བ་ཡིས། འབབ་དང་འབབ་མོའི་ཚོགས་གྱིས་དང་། 28

ག་བུར་ཙན་དན་ཀྱི་ཆེ་ཡི། རྡོ་ཤལ་འཕྲེང་བས་བརྒྱན་པ་ཡིས།
གནས་དང་གནས་སུ་གཙུག་ལག་ཁང་། བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་དེ་ཡིས་བྱས། 29

तं विलोक्यैव तत्याज सन्तापं नागनन्दनः।
सर्व्वार्त्तिदोषशमनं दर्शनं हि महात्मनाम्॥ २२॥

प्रणनाम स तं कीर्णसम्पूर्णकुसुमाञ्जलिः।
तत्पादपद्मस्पर्शेन सद्यः शीतलतां गतः॥ २३॥

कृती भगवतः प्राप्य ततः शिक्षापदानि सः।
चक्रे कृताञ्जलिस्तस्य यावज्जीवाधिवासनाम्॥ २४॥

तमावभाषे भगवानेकस्यैवाधिवासना।
अनुग्राह्येषु सर्व्वेषु यावज्जीवं न युज्यते॥ २५॥

इत्युक्त्वा प्रणयिप्रीत्यै भगवान् सततोद्यतः।
शनैः प्रतस्थे सङ्कल्पं भोगिनः परिपूरयन्॥ २६॥

क्रमेणागच्छतस्तस्य भिक्षुसंघाग्रयायिनः।
प्रभावाद्विदधे नागः स्वर्गशोभां पदे पदे॥ २७॥

हेमरत्नांशुशवलान् दिव्योद्यानमनोहरान्।
भोगोपसंग्रहव्यग्रदासदासीगणाकुलान्॥ २८॥

कर्पूरचन्दनोदारहारप्रालम्बभूषितान्।
स्थाने स्थाने भगवतः स विहारानकारयत्॥ २९॥

དེ་ནས་ཀ་ལན་ད་ཀའི་གནས། ཞེས་པ་འོད་མའི་ཚལ་དུ་ཕྱིན།
དེ་ཡི་ལོངས་སྤྱོད་ཚོགས་ཀུན་གྱིས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་མཆོད་པ་བྱས། 30

དེར་ནི་དེ་ཡིས་ཟླ་གསུམ་དུ། དགེ་འདུན་དང་བཅས་བདེ་གཤེགས་མཆོད།
དོ་ཤལ་རིན་ཅན་འོད་ཀྱིས་བསྐོར། ཡ་མཚན་ཀུན་དགའ་ལྡན་ལ་གསུངས། 31

གདེངས་ཅན་འདི་ནི་བསྐལ་པ་བགྲོར་མི་གཡོ།
བདེ་བའི་ལོངས་སྤྱོད་ཀུན་གྱི་སྣོད་དུ་གྱུར།
འོད་ཀྱང་སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་བྱང་ཆུབ་ཀྱང་།
རབ་ཏུ་འབད་པས་གསལ་བར་བྱེད་པར་འགྱུར། 32

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཀླུ་གཞོན་ནུའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་པའོ།།

करन्दकनिवासाख्यं प्राप्य वेणुवनं ततः ।
स सर्व्वभोगसम्भारैर्भगवन्तमपूजयत् ॥ ३० ॥

तेन मासत्रयीं तत्र ससंघः सुगतोऽर्च्चितः ।
ऊचे विस्मितमानन्दं हाररत्नांशुकैर्वृतः ॥ ३१ ॥

एष कल्पशतमच्युतः फणी
सर्व्वभोगसुखभाग्भविष्यति ।
बोधिमप्यपरजन्मनि स्फुटां
किञ्च सुप्रणिहितः करिष्यति ॥ ३२ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां नागकुमारावदानं नाम षष्टितमः पल्लवः ॥

CHAPTER LXI.

ཞིང་པའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

རྒྱན་པོའི་རབ་ཏུ་གཏེར་དག་ལྷུང་ཡང་རབ་ཏུ་འགྲོ་བར་འགྱུར།
རྣམ་དག་བློ་ལྡན་ཁྱིམ་དུ་དཔལ་ནི་རང་ཉིད་འོང་བར་འགྱུར།
སྐྱེས་བུ་དམ་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཡིད་ནི་རབ་ཏུ་དང་བ་དག།
དབུལ་བའི་རབ་རིབ་མི་བཟད་འཕྲོག་པའི་གྱིན་གྱི་ནོར་བུ་ཡིན། 1

མཉན་ཡོད་དུ་སྔོན་བྲམ་ཟེ་ནི། ནོར་མེད་བཀྲ་ཤིས་ཞེས་བྱ་བ།
འཚོ་བ་བྲལ་བས་འཚོ་བའི་ཐབས། འབྲས་བུ་ཆུང་བའི་ཞིང་ལས་བརྟེན། 2

ཞིང་ལས་ལ་ཆགས་གྱང་བ་དང་། རླུང་དང་ཚ་བས་ཉེན་པ་དེས།
སྡོང་པ་དང་ནི་རྟོག་ཙིའི་ཁུར། ཁྱེར་ཞིང་འོང་དང་འགྲོ་བ་བྱས། 3

ནམ་ཞིག་ཆུང་མ་དང་བཅས་དེའི། ལམ་དུ་སྦྲུལ་བ་ཅན་ཐོས་དང་།
ལྷན་ཅིག་བྱོན་པ་མཐོང་གྱུར་ནས། འཕྲལ་ལ་རབ་ཏུ་དང་བར་གྱུར། 4

སྦྱིན་བའི་བསོད་ནམས་ཡོངས་ཟད་ལས། དབུལ་བའི་སྡུག་བསྔལ་མི་བཟད་པ།
སེམས་ཤིང་དེ་ཡིས་ཆུང་མ་ནི། རབ་དང་བཞིན་ལྡན་ལ་སྨྲས་པ། 5

एकषष्टितमः पल्लवः ।

कर्षकावदानम् ।

मूढस्य हस्तपतितोऽपि निधिः प्रयाति
लक्ष्मीः स्वयं भवनमेति विशुद्धबुद्धेः ।
दारिद्र्यतीव्रतिमिरापहरः प्रकामं
पुंसां विभूषणमणिर्मनसः प्रसादः ॥ १ ॥

श्रावस्त्यां स्वस्तिको नाम ब्राह्मणो निर्धनः पुरा ।
अशिश्रियत् क्लेशफलामगत्या कृषिजीविकाम् ॥ २ ॥

स क्षेत्रकर्म्मनिरतः शीतवातातपक्षतः ।
चकार हलकुद्दालभारवाही गतागतम् ॥ ३ ॥

स कदाचित् समायान्तं श्रावकैः सहितं पथि ।
जिनं जायासखो दृष्ट्वा प्रसादं सहसा ययौ ॥ ४ ॥

प्रसन्नवदनां पत्नीं स जगाद विचिन्तयन् ।
दारिद्र्याद्दुःखमसमं दानपुण्यपरिक्षयात् ॥ ५ ॥

བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་ཡུ་ཙག་གིས། རྟོག་གཅིག་གིས་ཀྱང་མ་མཆོད་ལས།
བསོད་ནམས་ཟོང་གིས་ཐོབ་པའི་ནོར། ཕུན་ཚོགས་ཡུ་ལ་ག་ལ་འོང་། 6

ཞི་བ་གསོན་ཉིད་འཇིག་རྟེན་ན། གྲགས་པ་ཉམས་པ་ཞི་བ་ཉིད།
ནོར་མེད་སྐྱེ་བོ་མཛེས་པ་ནི། གསོན་ལ་མ་ཡིན་གཤིན་ལ་མིན། 7

ནོར་རིགས་ནོར་ནི་རིག་པ་སྟེ། ནོར་ཆོས་ནོར་ནི་གྲགས་པ་ཡིན།
ནོར་གྱིས་དམན་ཞིང་བསྐྱངས་པ་ཡིས། འཚོ་བའི་ཡོན་ཏན་རྣམས་ཀྱིས་ཏི། 8

གཞན་གྱི་ཉེ་འཁོར་གྱུར་པ་ཡིས། དབུལ་པོའི་ཡོན་ཏན་དམ་པས་ཏི།
ཁུར་དུབ་པ་ལ་ནོར་བྲུ་ཡིས། གསེར་གྱུན་ངལ་དུབ་དོན་གྱིས་བཞིན། 9

དབུལ་པོ་སྤྲིན་པ་དག་དང་བྲལ་བས་སྐྱར་ཡང་དབུལ་པོར་རབ་ཏུ་འཇུད།
དབུལ་པོ་ནོར་ལ་ཆགས་པས་གཞན་དབང་ཕྱིག་པའི་བདག་ཉིད་དག་ཏུ་འགྱུར།
དབུལ་པོ་དབུགས་དང་བཅས་ཀྱང་ཤི་ཞེས་འདི་ལ་ཁྱད་པར་བློ་གྲོས་མེད།
དབུལ་པོ་ཕྱོགས་བཅུ་འདི་དག་རང་གི་སྐྱེ་བོ་དག་གིས་དམན་པ་བཞིན། 10

དེ་སྐད་དམན་ལ་མཉེས་གཤིན་པའི། བདེ་བར་གཤེགས་པ་མཆོད་པར་བྱ།
སངས་རྒྱས་མཉེས་པར་མ་བྱས་པའི། སྨོངས་ལ་དགེ་བ་ག་ལ་ཡོད། 11

པདྨ་འི་འདབ་མ་ལྟ་བུའི་སྤྱན། འོངས་བའི་གཉེན་འདིས་གང་གང་དུ།
སྤྱན་ནི་འཕངས་པ་དེ་དང་དེར། དཔལ་ནི་གནས་པ་དག་གིས་ཞེས། 12

आवाभ्यामेष भगवान् पिण्डकेनापि नार्च्चितः ।
कुतः पुण्यपण्यप्राप्या धनसम्पत्तिरावयोः ॥ ६ ॥

जीवत्यवमतो लोके नष्टकीर्त्तिर्विपद्यते ।
न स जीवो न निर्जीवः शोभते निर्धनो जनः ॥ ७ ॥

धनं जातिर्धनं विद्या धनं धर्म्मो धनं यशः ।
किं धनेन विहीनानां याच्ञानिर्जीवितैर्गुणैः ॥ ८ ॥

परोपकरणीभूतैः किं दरिद्रस्य सद्गुणैः ।
क्लेशार्थैर्भारिकस्येव मणिकाञ्चनभूषणैः ॥ ९ ॥

दरिद्रो दारिद्र्यं प्रविशति पुनर्दानविरहा-
द्दरिद्रः पापात्मा भवति धनलिप्सापरवशः ।
दरिद्रः सोच्छ्वासो मृत इति न चात्रास्ति विमति-
र्दरिद्रस्यैवैता निजजनविहीना दश दिशः ॥ १० ॥

अभ्यर्च्चयावः सुगतं तस्मात् कृपणवत्सलम् ।
अनाराधितबुद्धानां मुग्धानां कुशलं कुतः ॥ ११ ॥

एष पद्मपलाशाक्षः क्षिपत्यापन्नबान्धवः ।
यत्र यत्र दृशं जाने तत्र तत्राश्रयः श्रियः ॥ १२ ॥

དེ་སྐད་བདག་པོའི་ཚིག་ཐོས་ནས། ཁྱིམ་དུ་གུས་བྱས་བྲམ་ཟེ་མོས།
ཟས་ནི་གཙང་མར་སྦྱར་བ་དག ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་སླད་དུ་བསྐུབས། 13

བཅོམ་ལྡན་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་ཀྱང་། དེ་དག་བསམ་པ་ཡོངས་མཁྱེན་ནས།
གུས་པས་གསོལ་བ་འདེབས་པ་དེའི། མཆོད་པ་དག་ནི་བླང་བར་མཛད། 14

དབུལ་བའི་སྡུག་བསྔལ་རབ་བསལ་བ། བདག་ལ་འབྱོར་པ་འབྱུང་གྱུར་ཅིག།
ཅེས་པའི་སྨོན་ལམ་གཉིས་སྐྱེས་ཀྱིས། རྒྱལ་བ་མཆོད་པའི་མཇུག་ཏུ་བྱས། 15

དེ་ནས་བྲམ་ཟེ་རང་ཞིང་དུ། སོང་བས་འབྲུ་ནས་སྒྱུ་གུ་ནི།
ཐམས་ཅད་གསེར་དུ་མཐོང་གྱུར་ནས། འཕྲལ་ལ་ཉིད་དུ་དབུལ་བ་གཏང་། 16

ས་ཡི་བདག་པོ་གསལ་རྒྱལ་གྱིས། དེ་ཡི་བསོད་ནམས་ལས་འཁྲུངས་པའི།
གསེར་དག་མཐོང་ནས་ཡ་མཚན་ཏེ། དགའ་བས་རྒྱལ་པོའི་ཆ་ཤས་བཏང་། 17

ཤིན་ཏུ་མང་པོའི་གསེར་དེ་ཡིས། དབང་ཕྱུག་གཏེར་ཐོབ་གཉིས་སྐྱེས་ཀྱིས།
རྫོགས་སངས་རྒྱས་སོགས་དགེ་འདུན་ནི། ཡོངས་སྤྱོད་ཀུན་གྱིས་རབ་ཏུ་མཆོད། 18

སྟོན་པས་ཆོས་ནི་བསྟན་པ་ཡིས། རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པའི་འབྲས་ཐོབ་ནས།
བདེན་མཐོང་དེ་ཡིས་དུས་ཀྱིས་ནི། རབ་ཏུ་བྱུང་བ་ཡང་དག་བླངས། 19

ཉོན་མོངས་ཐམས་ཅད་རབ་བཅོམ་སྟེ། དེ་ཡིས་དགྲ་བཅོམ་ཉིད་ཐོབ་ཚེ།
ལས་དེ་དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་དྲིས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་མདོན་པར་གསུངས། 20

इति पत्युर्वचः श्रुत्वा ब्राह्मणी सादरा गृहे ।
शुचिप्रणीतं विदधे भोज्यं भगवतः कृते ॥ १३ ॥

भगवानपि सर्व्वज्ञस्तयोर्ज्ञात्वा समीहितम् ।
प्रणयार्थनया चक्रे तस्य पूजाप्रतिग्रहम् ॥ १४ ॥

व्यक्तदारिद्र्यदुःखस्य भूयान्मे विभवोद्भवः ।
चकार जिनपूजान्ते प्रणिधानमिति द्विजः ॥ १५ ॥

अथ गत्वा निजं क्षेत्रं विप्रः शस्ययवाङ्कुरान् ।
सर्व्वानपश्यत् सौवर्णान् सहसा त्यक्तदुर्गतिः ॥ १६ ॥

तस्य पुण्यसमुद्भूतं दृष्ट्वा हेम महीपतिः ।
तत्याज विस्मितः प्रीत्या राजभागं प्रसेनजित् ॥ १७ ॥

तेन हेम्ना सुमहता लब्धैश्वर्य्यनिधिर्द्विजः ।
स बुद्धप्रमुखं सङ्घं सर्व्वभोगैरपूजयत् ॥ १८ ॥

धर्म्मदेशनया शास्तुः श्रोतःप्राप्तिफलोदयात् ।
दृष्टसत्यः स कालेन प्रव्रज्यां समुपाददे ॥ १९ ॥

सर्व्वक्लेशप्रहाणेन तस्मिन्नर्हत्त्वमागते ।
तत्कर्म्म भिक्षुभिः पृष्टो भगवानभ्यभाषत ॥ २० ॥

སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་བྲམ་ཟེ་འདྲིས། བདག་ཉིད་ཆེན་པོ་བཅོམ་ལྡན་འདས།
འོད་སྲུངས་ཀྱིས་ནི་བསྟན་པ་ལ། ཚངས་པར་སྤྱོད་པ་སྔོན་ཆེ་སྤྱད། 21

ཉེ་དབང་དབང་བཅས་ལྷས་མཆོད་པ། ཤིན་ཏུ་ཆེ་བའི་གྲུབ་པ་འདི།
བདག་གི་སྔོན་དུ་སྐྱེ་བ་འདིར། འདི་ལ་དེ་ཡིས་ཡང་དག་བསྟན། 22

དེ་སྐད་དེ་ཡི་ལེགས་བྱས་རྒྱལ་བས་གསུངས་པ་ཐོས་གྱུར་ནས།
དེ་ཡི་ཡོན་ཏན་རང་བཞིན་ནང་དུ་འཛོམས་བཞིན་དགེ་སློང་ནི།
དེ་དག་ཐམས་ཅད་ལ་མཚན་བློ་ལྡན་དགའ་བས་འཁྲུགས་གྱུར་ཅིང་།
དགེ་ལ་གུས་པས་བཟང་པོའི་སྤྱོད་པ་རབ་ཏུ་བསྔགས་པ་མཛད། 23

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཞིང་པའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་ཙ་གཅིག་པའོ།།

अन्यजन्मनि विप्रोऽयं काश्यपस्य महात्मनः ।
ब्रह्मचर्य्यं भगवतः शासनेन पुराचरत् ॥ २१ ॥

समादिष्टास्य तेनैव जन्मन्यस्मिन्महीयसी ।
मत्सकाशादियं सिद्धिः सेन्द्रोपेन्द्रसुरार्च्चिता ॥ २२ ॥

श्रुत्वेति तस्य सुकृतं कथितं जिनेन
सर्व्वे सविस्मयधियः कुशलादरेण ।
हर्षाकुलाः सुचरितं प्रशशंसुरन्तः-
संक्रान्ततद्गुणमया इव भिक्षवस्ते ॥ २३ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां कर्षकावदानं नाम एकषष्टितमः पल्लवः ॥

Chapter LXII.

ཡལ་འདབ་དྲུག་ཅུ་རྩ་གཉིས་པ།

གླགས་ཕྱིན་གྱི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

ཕྱུག་གིས་གང་པར་གྱུར་པའི་སྐྱེ་བོའི་ནགས་ཚལ་གནས་དག་ཏུ།
ཡང་ཆོས་ལོང་ཞིང་བདེ་བ་ལ་འདོས་མཛེས་པའི་ཚས་ལྡན་ཚོ།
དབེན་པས་ཆགས་བྲལ་ཞི་ཞིང་དག་པ་གང་ལ་རབ་ཕྱིན་པ།
སྐྱེས་བུ་དེ་ཉིད་གཅིག་པུ་ཡ་མཚན་རང་བཞིན་རབ་ཏུ་སྐྱེས། 1

རྒྱལ་བ་སྟོན་ཆོ་ནྱ་གྲོ་དྷའི། ཀུན་དགའ་ར་བ་མཛེས་བར་བཞུགས།
བ་རླ་ཧ་སེར་ཁྱིམ་བདག་ནི། ལེགས་པར་རབ་སད་ཅེས་པ་བྱུང་། 2

ནོར་ནི་རྒྱས་པ་གཏོང་བ་དང་། ལོངས་སྤྱོད་ཚོགས་ཀྱིས་རྣམ་པར་བརྒྱན།
གང་གི་དབང་ཕྱུག་ཕྱུས་ངན་བུ། མཛོད་ན་གནས་པའང་ཟུམ་པར་བྱེད། 3

བདེ་བ་ཐམས་ཅད་ཕུན་ཚོགས་ཏེ། བུ་མེད་བུ་ཡི་བསམ་པ་ཡིས།
མཆོག་ཏུ་ཡང་དག་གདུང་བ་ཐོབ། ཕུན་ཚོགས་སུ་ཡི་ཟུག་རྔུ་མིན། 4

དེ་ཡི་བསམ་པ་འཕོས་པ་ཡིས། ཡུན་རིང་ཡིད་འཕྲུགས་གཉེན་རྣམས་ཀྱིས།
གཉེན་ལ་གཉེན་ནི་མྱ་ངན་གྱི། མེ་ཡིས་རབ་གདུངས་དེ་ལ་སྨྲས། 5

द्विषष्टितमः पल्लवः ।

यशोदावदानम् ।

ऊर्णायुपूर्णजनकाननसन्निवेशे
जातश्चमत्कृतिमयः पुरुषः स एकः ।
यस्यार्थयौवनसुखोचितचारुवेशे
वैराग्यमादिशति शान्तिसितं विवेकः ॥ १ ॥

न्यग्रोधरुचिरारामविहारिणि जिने पुरा ।
वाराणस्यां गृहपतिः सुप्रबुद्धाभिधोऽभवत् ॥ २ ॥

त्यागोपभोगसम्भारविभूषितधनोदयः ।
ऐश्वर्य्यं यः कुबेरस्य कोशलीनं न्यवेदयत् ॥ ३ ॥

स सर्व्वसुखसम्पत्तौ निष्प्रुत्रः पुत्रचिन्तया ।
परं सन्तापमापेदे निःशल्याः कस्य सम्पदः ॥ ४ ॥

तं शोकशिखिसन्तप्तं बान्धवा बन्धुवत्सलम् ।
ऊचिरे चिरसंक्रान्तचिन्ताक्रान्तमानसाः ॥ ५ ॥

ཁྲིམས་བདག་མ་ཉིད་ལ་འོས་པའི། བསམ་པ་བྲ་བར་མི་རིགས་སོ།
བརྟན་ལྡན་སྙིང་སྟོབས་ཆེ་ཉམས་ལ། འཇིག་རྟེན་ན་ནི་རྟེད་དཀའ་མེད། 6

གང་འདི་ཕྱོགས་སུ་གྲགས་གྱུར་ཅིང་། ཡུལ་འདིར་གྲོང་ཁྱེར་པས་མཆོད་པ།
ནྱ་གྲོ་དྷ་ཡི་ཤིང་དེ་ལ། མཆོད་པས་ཐམས་ཅད་ཐོབ་བར་འགྱུར། 7

དེ་ལ་ཞུས་པས་འགའ་ཞིག་ནི། བུ་མེད་བུ་དང་ལྡན་པ་དང་།
གཞན་ནི་ནོར་མེད་ནོར་དང་ལྡན། གཞན་ཡང་ནད་ཅན་ནད་མེད་མཐོང་། 8

ནྱ་གྲོ་དྷ་ཡི་ཀང་འཕྲང་ནི། མཆོད་རྟེན་སྙིང་བ་བདེན་ཞེས་བྱ།
འོས་པར་མཆོད་ན་ཁྱོད་ལ་ནི། བུ་ཞེས་བརྗོད་པའི་འབྲས་སྨིར་འགྱུར། 9

ཞེས་པ་དེ་དག་ཚིག་ཐོས་ནས། འཛུམ་བཅས་དེ་དག་ལ་སྨྲས་པ།
ཀྱེ་མ་རྨོངས་པའི་མཛའ་བ་ལས། ཁྱེད་ཉམས་རྨོངས་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 10

རང་ལས་གཞན་དབང་འཇིག་རྟེན་འདི། ངེས་པར་གཡོ་བ་མེད་པ་ལ།
སུ་ཡིང་སུ་ཡི་བརྟན་པ་དང་། གྱུས་དང་འཁྲོག་དང་འཇོམས་པར་བྱེད། 11

རང་ལས་ཉེ་བ་ཉིད་ཐོབ་ནས། བློ་གྲོས་ལྡན་པོ་གཞན་ལ་ཚིམ།
རང་གི་ཁ་ཆུའི་ཆ་སྲུང་ནས། ཁྱི་ནི་པགས་པ་སྐམ་ལ་བཞིན། 12

ཤིང་གི་བུ་ནོར་སྐྱེས་ཐུ་ལ། སྟེར་ཞེས་འདི་ནི་རྨོངས་པའི་གཏམ།
འདབ་མ་ཙམ་ཡང་དུས་མིན་དུ། དེ་ཉིད་རང་ལ་སྨིན་ནུས་མེད། 13

क्लीवोचितां गृहपते न चिन्तां कर्त्तुमर्हसि।
धीराणां पृथुसत्वानां नास्ति लोकेषु दुर्लभम्॥ ६॥

य एष विश्रुतो दिक्षु देशेऽस्मिन् पौरपूजितः।
न्यग्रोधपादपस्तस्य पूजया सर्व्वमाप्यते॥ ७॥

अपुत्राः पुत्रिणः केचित् निर्द्धना धनिनः परे।
रोगिणोप्यरुजश्चान्ये दृष्टास्तदुपयाचितैः॥ ८॥

सत्ययाचनचैत्याख्यः सोऽयं न्यग्रोधपादपः।
फलं पुत्राभिधं तुभ्यं दास्यत्युचितमर्थितः॥ ९॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा तानुवाच स सस्मितः।
अहो नु मोहात् स्नेहाद्वा यूयं मूर्खत्वमागताः॥ १०॥

स्वकर्म्मपरतन्त्रेऽस्मिन् लोके नियतिनिश्चले।
स्थितिं करोति पुष्णाति हरते हन्ति कस्य कः॥ ११॥

स्वकर्म्मोपनतं प्राप्य तुष्यत्यन्यस्य मुग्धधीः।
स्वलालालवमास्वाद्य श्वेव शुष्कस्य चर्म्मणः॥ १२॥

वृक्षः पुत्रार्थदः पुंसामित्येतन्मूर्खभाषितम्।
दातुं शक्तः स नाकाले पत्रमात्रमपि स्वयम्॥ १३॥

གལ་དེ་དེ་ནི་ཕྱིན་རྫིབ་ལྟས། མཆོད་པ་ལ་ཆགས་བྱེད་པ་ན།
བདག་ཉིད་རང་གིས་མཆོད་པ་ནི། ཡོ་བྱད་རྫོགས་པ་ཅིས་མི་སྦྱོ། 14

སྤྲིན་བུའི་རྗེས་ནི་ཡི་གེ་བཞིན། གང་ཡང་ཐོབ་བྱ་ཐོབ་པ་ན།
བྱ་རོག་དུ་ལ་ལྟར་བརྗོད་པས། སྐྱེ་བོ་དེ་ཡིས་བྱིན་པར་སེམས། 15

གང་ཞིག་ཐོབ་བྱ་དེ་ནི་ལས་ནམས་འབྲས་བུ་ཡོངས་སུ་གྱུར་ཚེ་ཐོབ།
སྣ་ཚོགས་འབད་ཅིང་གུས་པས་བསྐྱབས་ཀྱང་ཐོབ་བྱ་མིན་པ་འཐོབ་མ་ཡིན།
གང་ཞིག་གང་གིས་རང་ཉིད་ཀྱིས་བསགས་ལོངས་སྤྱོད་སྐལ་ལྡན་དེ་ལ་ནི།
འདི་དག་འདི་ཡིས་བྱས་ཞེས་སྨོངས་པའི་བློ་ཅན་འབྲས་མེད་དེ་དག་སེམས། 16

ཞེས་པ་སྨྲ་དེ་མཛའ་གཙུགས་དང་། ལྡན་པའི་གཉེན་གྱིས་རབ་འབད་དེ།
བསྐུལ་ནས་གཅིག་པུ་གསང་བ་ཡིས། ཀོང་འཕྲུང་གི་ནི་དྲུང་དུ་སོང་། 17

སྤུ་རེ་བཟུང་ནས་དེ་ཡིས་ནི། ཉ་གྲོ་དྷ་ཡི་ཤིང་ལ་སྦས།
མཆོད་པའམ་ཅི་བ་གཅོད་པ་ལ། ངས་ནི་ཆས་ནས་ཁྱོད་ཅན་འོངས། 18

བུ་དག་སྦྱིན་ན་ཁྱོད་ལ་བདག། གཞན་གྱིས་མ་བྱས་མཆོད་པ་བྱེད།
ནམ་པ་གཞན་དུ་ཁྱོད་བདག་གིས། བཙད་བསྒྲིགས་བདགས་ལ་རྒྱ་བོར་འཕངས། 19

ཞེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། ལྷ་ནི་ཤིང་ལ་གནས་པ་དག།
འཕྲལ་ལ་འཇིགས་པས་འཁྲུགས་གྱུར་ཏེ། འདར་བར་བྱེད་ཅིང་རབ་བསམས་བ། 20

तदधिष्ठातृदेवश्चेत् पूजालुब्धः करोति तत् ।
पूर्णोपहारपूजां किं स्वयं सृजति नात्मनः ॥ १४ ॥

प्राप्तव्यं प्राप्य यदि वा घुणाक्षरपदोपमम् ।
काकतालीयसंवादात्तद्दत्तं मन्यते जनः ॥ १५ ॥

प्राप्तव्यं यत् फलपरिणतौ कर्म्मणां प्राप्यते तत्
नानायत्नप्रणयपतनैर्लभ्यते न त्वलभ्यम् ।
यद्येनैव स्वयमुपचितं भोगभागी स तस्मिन्
एतेनैतत् कृतमिति मुधा मन्यते मुग्धबुद्धिः ॥ १६ ॥

इति ब्रुवाणः सस्नेहैरनुबन्धेन बान्धवैः ।
प्रेरितः स ययौ मूढ एकाकी पादपान्तिकम् ॥ १७ ॥

स कुठारं समादाय न्यग्रोधतरुमभ्यधात् ।
पूजायां मूलघाते वा सज्जोऽहं त्वामुपागतः ॥ १८ ॥

पुत्रप्रदातुः पूजां ते करिष्याम्यकृतां परैः ।
नद्यां त्वामन्यथा छित्वा दग्ध्वा पिष्ट्वा क्षिपाम्यहम् ॥ १९ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा देवता वृक्षवासिनी ।
सहसैव भयोद्विग्ना कम्पमाना व्यचिन्तयत् ॥ २० ॥

འདོད་པའི་བུ་འམ་ནོར་དག་ནི། བདག་གིས་སུ་ལའང་སྦྱིན་པ་མེད།
རང་གི་ལས་ཀྱིས་ཐོབ་པ་ལ། སྐྱེ་བོ་བདག་གིས་སྦྱིན་པར་སེམས། 21

གང་འདི་སྨོབས་ཀྱིས་བུ་སློང་ཞིང་། ལས་ཀྱི་སྦྱོར་བས་མ་ཐོབ་ན།
ལྷ་ཉིད་གཙོད་དུ་འོངས་གྱུར་པ། འདི་ནི་ཕྱོན་ཚད་མེད་པ་འོངས། 22

འབྲས་དོན་གཉེར་བས་མཆོད་བྱ་ནི། མཆོད་པ་གང་འདི་ལུགས་ཙམ་སྟེ།
ལས་ཀྱི་བཅིངས་པའི་འབྲས་ཐོབ་པ། སུ་ཡིས་སྦྱིན་ཅིང་གང་དུ་ལྷ། 23

སྐྱེས་བུ་རང་གི་ལས་ཀྱིས་ནད། བསོས་པ་གྲུབ་པ་མིན་པ་ལ།
རྩིས་མཁན་འཛིན་པ་ཉིད་མ་ཡིན། སྨན་པ་མ་ཡིན་སྔགས་པའང་མིན། 24

བྱ་མིན་བྱེད་པ་འདི་ལ་ནི། ཞིང་ནི་བཅད་པར་རྣམ་བརྟགས་ཡོད།
ཚུལ་མིན་དག་ལ་མངོན་ཞེན་པའི། བག་མེད་རྣམས་པ་བྱ་མིན་ཅི། 25

ཞིང་ནི་བཅད་ན་གཞན་དུ་བདག། གནས་པར་མི་ནུས་བདེ་བ་མེད།
འགྲོགས་པས་གོམས་ཅན་དགའ་བ་ནི། ཐུབ་པ་རྣམས་ལའང་སྡུག་བསྔལ་སྐྱེད། 26

དེ་དག་བསམས་ནས་བགྱི་ཕྱིན་གྱི། ཁང་པར་བྱུར་བར་དེ་སོང་ནས།
དོན་ནི་དེ་ལ་བརྗོད་ནས་ནི། ཡོངས་སུ་སྐྲག་བས་སྐྲར་སྐྲས་བ། 27

དག་ཏུ་བདག་ནི་ལྡོན་པ་དེར། སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཀྱི་མཆོད་གྱུར་ཀྱང་།
སྣ་ཚོགས་དོན་གཉེར་ཉེར་གནས་པས། བདག་ནི་ཤིན་ཏུ་གཟིར་བར་གྱུར། 28

न मया कस्यचित् स्वनुर्वित्तं वा दत्तमिच्छया ।
जनः स्वकर्म्मसम्प्राप्तं मद्दत्तमिति मन्यते ॥ २१ ॥

इदन्त्वपूर्व्वमायातं पुत्रार्थी यदयं बलात् ।
कर्म्मयोगादसम्प्राप्तौ दैवतं छेत्तुमागतः ॥ २२ ॥

स्थितिमात्रमिदं पूज्यः पूज्यते यत् फलार्थिभिः ।
कर्म्मबद्धफलालाभे क्व देवः केन दापितः ॥ २३ ॥

चिकित्सायामसिद्धायां व्याधौ पुंसः स्वकर्म्मणा ।
गृह्यन्ते नैव गणका न वैद्या न च मन्त्रिणः ॥ २४ ॥

वृक्षच्छेदविकल्पोऽस्ति नचास्याकार्य्यकारिणः ।
अन्यायाभिनिविष्टानां किमकार्य्यं प्रमादिनाम् ॥ २५ ॥

वृक्षच्छेदे न शक्नोमि स्थातुमन्यत्र निःसुखा ।
सङ्गादाभ्यासिकी प्रीतिर्मुनीनामपि दुस्त्यजा ॥ २६ ॥

इति सञ्चिन्त्य तूर्णं सा गत्वा शक्रस्य मन्दिरम् ।
तमर्थं विनिवेद्यास्मै परित्रस्तावदत् पुरः ॥ २७ ॥

जनेन पूज्यमानापि वृक्षे तस्मिन्नहं सदा ।
नानार्थार्थिभिरत्यर्थं सोपवासैः कदर्थिता ॥ २८ ॥

འགའ་ཡིས་ལེགས་བྱས་བདག་ལ་ཐོབ། འགའ་ཞིག་ཁ་ནི་འོག་ཕྱོགས་གྱུར།
གཡོ་སྒྲོངས་མི་བསྒྱུན་བརྟུལ་ཞུགས་ཀྱིས། གཞན་ནི་དེ་ཉིད་ན་རབ་ཆགས། 29

སོང་བའི་རྗེས་སུ་འགྲོ་ཉིད་ཀྱིས། སྐྱེ་བོ་གྲགས་པ་ལ་སྟོན་ཉམས།
གདུང་བ་ཐམས་ཅད་གཞོམ་པའི་སྐད། སྒྲོངས་པ་བདག་ཅག་ཉིད་དུ་ཕྱུག། 30

སྐྱེ་བོ་བློ་གྲོས་མི་གཟོ་བས། མི་བཟད་གཅེས་པར་གྱུར་ཀྱང་བདག།
བསམ་བ་དེ་ཡི་ཡོན་དན་ལ། ཆགས་པས་ཤིང་ནི་གཏོང་མི་ནུས། 31

ཀྲི་ལ་ཆགས་པའི་བྱུང་བ་འདམ་གིས་འཆིང་བའི་ཉོན་མོངས་ལྷན་པར་འཛུག།
བད་ཙའི་རོ་སྤྱང་དང་པ་ཉིད་ནི་འདམ་གྱི་འཛིགས་པ་སྐྱེ་མི་བྱེད།
གྲང་བས་གཟིར་བའི་སྐྱེ་བོ་དུ་བས་འཁྲུགས་པའི་མེ་ནི་ཡོངས་མི་འདོད།
གང་ལ་གང་ཞིག་ཉེར་མཁོ་དེ་ལ་དེ་ཡི་སྐྱོན་ནི་ངེས་པར་བཟོད། 32

དེ་སྐད་ཤིང་བྲལ་གདུང་བ་ལས། ཁྲབ་བདག་བདག་ནི་བསྐྱབ་པར་འོས།
གང་ཕྱིར་ལུས་ཅན་ནམས་ཀྱི་གནས། གཏོང་བ་ལུས་ནི་གཏོང་དང་མཚུངས། 33

ཞེས་པ་དེ་ཡི་འབད་པ་ཡིས། གསོལ་གདབ་པོ་ལོ་སྣ་དགའ་བས།
ཁྲིམ་བདག་གིས་ནི་བྱ་ཐོབ་བའི། ལས་ཀྱི་དབང་ནི་ཡང་དག་བསམས། 34

སྐབས་དེར་ལྷ་མིན་དགྲ་བོ་ཡིས། སྐབས་གསུམ་པ་ཡི་ལྷ་ཡི་བུ།
བློ་བཟང་ཞེས་པ་ལྷུང་བ་ཡི། དུས་ལ་བབ་པ་མཐོང་གྱུར་ཏེ། 35

लभन्ते सुक्षतात् केचित् केचित् गच्छन्त्यधोमुखाः।
तत्रैवान्ये प्रलीयन्ते हठमूर्खाः खलव्रतैः॥ २९॥

गतानुगतिकत्वेन प्रसिद्धिशरणो जनः।
सर्व्वार्त्तिपरिहाराय मौर्ख्यान्मामेव धावति॥ ३०॥

उद्वेजिताप्यहं तीव्रं जनेनाक्षतबुद्धिना।
तरुं त्यक्तुं न शक्नोमि तद्गुणावर्ज्जिताशया॥ ३१॥

बन्धक्लेशं विशति[1] मधुपः पङ्कजं गन्धलुब्धः
पङ्कातङ्कं गणयति विशास्वादने नैव हंसः।
शीतार्त्तश्च त्यजति न जनः पावकं धूमधूम्र
तस्मिन् दोषं स किल सहते यस्य येनोपयोगः॥ ३२॥

तस्माद्वृक्षवियोगार्त्तां त्रातुमर्हसि मां विभो।
शरीरत्यागसदृशः स्थानत्यागो हि देहिनाम्॥ ३३॥

अर्थितः प्रणयेनेति पौलोमीरमणस्तया।
पुत्रलाभं गृहपतेः कर्म्मायत्तमचिन्तयत्॥ ३४॥

अत्रान्तरे वृत्रशत्रुर्देवपुत्रं त्रिपिष्टपे।
सुमतिं नाम सम्प्राप्तच्युतिकालं व्यलोकयत्[2]॥ ३५॥

---

१ H व्रजति। २ H व्यचिन्तयत्।

མི་བསྐྱུན་ལ་བདུད་གྲགས་པ་ཉམས་པ་བཞིན་དུ་འཕྲེང་བ་ཁྲིམ་ཅན་གྱུར་ཅིང་།
དམན་གྱུར་སྐྱོང་བ་བཞིན་དུ་མཛེས་པ་རྒྱུན་པ་དག་དང་ཡོངས་འདྲིས་བྱུང་བར་གྱུར།
བསོད་ནམས་ཡོངས་སུ་ཟད་ལས་གནོད་པས་བཞིན་དུ་དུལ་གྱིས་ཀྱང་ནི་གནས་དག་བྲིས།
ཞི་སྣང་སྐྱོན་བཅས་བློ་བཞིན་དེ་ནི་སླུང་བ་གསལ་བྱེད་དགའ་བ་མིན་པར་གྱུར། 36

ལེགས་པ་རབ་སད་ཡོན་ཏན་ཅན། ས་ལ་དཔལ་ལྡན་གྲགས་པ་ཡིས།
བློ་བཟང་བུ་ཉིད་དུ་སོང་ཞེས། དེ་ལ་ལྷ་ཡི་བདག་པོས་སྨྲས། 37

དེས་སྨྲས་སྟོན་པ་ཤཱཀྱ་ཐུབ། ཐ་མིད་གྱི་ཆེ་ཆོས་གྱི་ནི།
འཁོར་ལོ་རབ་ཏུ་བསྐོར་མཛད་པའི། མདུན་དུ་དུས་དེར་གལ་ཏེ་བདག། 38

རབ་ཏུ་བྱུང་བ་འཛིན་པ་ལ། ཁྱོད་ཀྱིས་ཡང་དག་རྟོགས་བྱེད་ན།
ས་ལ་ལེགས་པར་རབ་སད་ཀྱི། བུ་ཉིད་དུ་ནི་བདག་གིས་འགྲོ། 39

ལྷ་ཡི་བུ་ཡིས་འདི་བརྗོད་པས། བགྱི་ཕྲིན་དེ་བཞིན་ཞེས་སྨྲས་ཆོ།
རྗེས་གནང་དེ་ནི་དེ་ནས་འགྲོས། དེ་ཡི་ཚང་མའི་དཀྱུ་རུ་ཞུགས། 40

ལྷ་ནི་རང་གི་གནས་སོང་སྟེ། ལེགས་པར་རབ་སད་དེ་ལ་སྨྲས།
རབ་ཏུ་འབྱུང་ལ་མངོན་དགའི་བུ། དགེ་བ་ཁྱོད་ལ་འབྱུང་བར་འགྱུར། 41

ཞེས་པ་ཐོས་ནས་ཁྱིམ་བདག་ནི། རབ་ཏུ་མགུ་ནས་ཁྱིམ་སོང་སྟེ།
བུ་ནི་རབ་ཏུ་འབྱུང་བ་དག། བདག་གིས་བཟློག་པར་བྱ་ཞེས་བསམས། 42

माला म्लानिमुपाययौ स्खलनतिक्लिष्टेव कीर्त्तिस्तदा
छाया प्रादुरभूत्तमःपरिचिता याच्ञेव दैन्योदये।
स्वेदः पुण्यपरिक्षये नव इवापायश्चकारास्पदं
तस्याभूदरतिर्निपातपिशुना सद्वेषदोषेव धीः ॥ ३६ ॥

गुणिनः सुप्रबुद्धस्य पृथिव्यां प्रथितश्रियः।
सुमते पुत्रतामेहि तमित्याह सुरेश्वरः ॥ ३७ ॥

सोऽब्रवीत्तत्र मां काले शास्तुः शाक्यमुनेः पुरः।
शक्रस्यानुत्तरोदार[1]धर्म्मचक्रप्रवर्त्तने ॥ ३८ ॥

प्रव्रज्यासादनाय त्वं यदि संबोधयिष्यसि।
तदहं सुप्रबुद्धस्य व्रजामि भुवि पुत्रताम् ॥ ३९ ॥

इत्युक्ते देवपुत्रेण शक्रेणोक्ते तथेति च।
च्युतः स तस्मादाश्वस्तत्पत्न्याः कुक्षिमाविशत् ॥ ४० ॥

देवता स्वपदं गत्वा सुप्रबुद्धमभाषत।
प्रव्रज्याभिरतः साधो भविष्यति सुतस्तव ॥ ४१ ॥

इति श्रुत्वा गृहपतिः प्रहृष्टः प्रययौ गृहम्।
प्रव्रज्यां वारयिष्यामि पुत्रस्येति विचिन्तयन्[2] ॥ ४२ ॥

१ H and W_2 read ॰दान॰। २ All the MSS. read विचिन्तयत्।

དེ་ནས་དུས་ཀྱི་དེ་ཡིས་ནི། ཆུང་མ་རོལ་བ་མ་ཞེས་ལ།
ཡན་ལག་ཐམས་ཅད་མཚན་ཉིད་ལྡན། ཁྲིས་པ་གསེར་འོད་ཅན་དེ་བཅས། 43

དེ་སྐྱེས་ཉིད་ན་རིན་ཅེན་ནི། ཀུན་གྱི་རང་བཞིན་གདུགས་འཁྲུངས་ཏེ།
ལེགས་བྱས་དཔལ་ནི་ཟླ་མེད་དང་། ངོ་མཚར་གཟུགས་དང་ལྡན་པ་བཞིན། 44

མཆོག་ཏུ་ཕ་ཡིས་གྲགས་འཕེལ་པས། རིག་པ་སྒྲུ་ཚོལ་འབྱོར་པ་རྣམས།
ཚོགས་པའི་ཁང་པ་ལྟ་བུ་སྟེ། གྲགས་སྤྲིན་ཞེས་ནི་བྱ་བར་གྱུར། 45

ལྷ་ཡི་ཚིག་ནི་དྲན་གྱུར་ནས། དེ་ནི་རབ་ཏུ་བྱུང་རོགས་ཏེ།
གྲོང་དང་ཁང་པ་གྲོང་ཁྱེར་གྱི། སྐྱོ་ནམས་ཕ་ཡིས་བསྐྱུང་པར་བྱས། 46

དེ་ནས་བགྲོ་ཁྲིན་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ། སྔོན་གྱི་བགྲོ་བ་བརྟེན་པར་བྱས།
ཞི་བས་དྲན་པ་རབ་བྱུང་ལ། མངོན་པར་ཕྱོགས་ཤིང་གུས་པར་གྱུར། 47

ནམ་ཞིག་རང་གི་སྐྱིད་ཚལ་དུ། དལ་གྱིས་ཤིང་རྟ་ཞོན་འགྲོ་དེས།
བཅོམ་ལྡན་གྱིལ་བ་ཛེ་ཞིག་ལྟར། ཁྱོན་པ་དག་ནི་མཐོང་བར་གྱུར། 48

སྙིང་ལ་བདེ་བས་ཡང་དག་རེག། རབ་ཞི་བདུད་རྩིའི་ཆར་འབབས་པ།
དེ་མཐོང་ཉིད་ནི་ན་འཕྲུལ་ནི། ཤིང་རྟ་དག་ལས་དེ་ཡིས་བབས། 49

དེ་ལ་བསྐོར་བ་གསུམ་བྱས་ཏེ། དེ་ཡིས་ཞབས་པད་ཟུང་དག་ལ།
དང་བས་བཏུན་པ་དེ་ཡིས་ནི། སྤྱན་གྱིས་གཟིགས་པ་དེས་ཕྱག་བཙལ། 50

ततः कालेन तत्पत्नी ललिता नाम बालकम्।
सर्व्वाङ्गलक्षणोपेतमसूत कनकद्युतिम्॥ ४३॥

सर्व्वं रत्नमयं तस्य जातस्यैव व्यजायत।
छत्रं मूर्त्तमिवाश्चर्य्यमुत्तंसं सुकृतश्रियः॥ ४४॥

स यशोदाभिधानोऽभूत् यशोवृद्ध्या पितुः परम्।
विद्याकलाविभूतीनां समागमगृहोपमः॥ ४५॥

देवतावचनं स्मृत्वा प्रव्रज्याशङ्कितः पिता।
तस्य चक्रे गृहपुरद्वारगोपुररक्षणम्॥ ४६॥

अथाभ्येत्य स शक्रेण स्मारितः पूर्व्वसंविदा।
बभूव शमसंसिक्तः प्रव्रज्याभिमुखादरः॥ ४७॥

स कदाचिन्निजोद्याने रथारूढः शनैर्व्रजन्।
ददर्श जिनमायान्तं भगवन्तं यदृच्छया॥ ४८॥

हृदये सुखसंस्पर्शं वर्षन्तं प्रशमामृतम्।
तं विलोक्यैव सहसा रथादवततार सः॥ ४९॥

तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य तत्पादनलिनद्वयम्।
स ववन्दे प्रसादार्द्रदृशा तेनावलोकितः॥ ५०॥

དེ་ནས་རབ་དང་བཅོམ་ལྡན་ལ། རབ་བཏུད་དེ་ཡི་རྗེས་གནང་གིས།
དེ་ཉིད་ནོར་པར་སེམས་ཤིང་དེ། རང་གི་སྐྱིད་སོས་ཚལ་དུ་སོང་། 51

དེ་ནས་བཅོམ་ལྡན་འཛུམ་ལྡན་པས། དགེ་སློང་དེ་ཐུལ་ལ་གསུངས་པ།
བདག་གི་དྲུང་དུ་གཞོན་ནུ་འདི། མཚན་མོ་རབ་ཏུ་འབྱུང་བར་འགྱུར། 52

ཞེས་གསུངས་བདེ་གཤེགས་རང་གནས་སུ། དགེ་སློང་རྣམས་དང་ལྷན་ཅིག་གཤེགས།
བརྒྱ་བྱིན་གྱིས་སྤྲུལ་བྱད་མེད་ལུས། གཞོན་ནུ་ཡིས་ནི་མཐོང་གྱུར་ཏེ། 53

བསྔོགས་ཤིང་རྡུལ་ལ་མི་གཙང་བ། སྲིན་བུའི་ཚོགས་ཀྱིས་འཁྲུགས་ཤིང་གནས།
སྐྱིད་སོས་ཚལ་གྱི་རོ་མཐོང་ནས། ཆགས་བྲལ་ལྡན་པ་ངེས་བསམ་པ། 54

དར་བབ་གཟུགས་ནི་མཛེས་པ་དང་། སྡུག་པ་རྣམ་པར་འགྱུར་བ་ཉིད།
བགས་པ་ཤ་ཚོགས་མི་རྣམས་ཀྱིས། རང་བཞིན་དེ་ནི་འདི་ཉིད་དོ། 55

མིག་དག་གཡོ་ཞིང་ནུ་མ་རྒྱང་ནི་རབ་གྱིས་རི་བོང་ཅན་གྱི་འོད་ཀྱི་མཛོད།
ལུས་ད་ལང་ཚོགསར་པ་དར་བབ་མཛེས་སྡུག་འགྲོ་བར་བགྲང་བ་འདི་དག་ནི།
རྡུལ་བའི་བརྙན་གྱིས་ངེས་བྲན་འཁྲུགས་ཤིང་དམན་པའི་སྲིན་བུ་རྣམས་ཀྱིས་དཀྲིགས།
ངན་ཞིང་རབ་མང་བཤང་བས་བསྐོར་ཤིང་མཐའ་དག་རྒྱུ་མཆིན་འཁྲུལ་འཁོར་མེད་ཉིད་གྱུར། 56

ཡན་ལག་ཐམས་ཅད་འགྲོགས་པར་སྤྲོ་བ་འདི་ལ་ཆགས་ཤིང་རྨོངས་པས་མིག་བྲོགས་ཤིང་།
ནུ་མའི་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་ཆགས་བློ་གྲོས་ཉམས་པས་མཆོག་ཏུ་བདེ་བ་ཐོབ་གྱུར་པ།
གང་ལས་ཡ་སྐྱེས་འདི་ནི་ཆགས་བྲལ་བཟའ་བ་དག་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས་བཞིན་འཁྱོག་ཅིང་།
མི་གཙང་དྲི་ང་དག་གིས་ཡིད་བྱུང་བློ་གྲོས་རྟུས་ཕྱིན་རིང་དུ་འགྲོ་བར་འགྱུར། 57

भगवन्तं प्रणम्याथ प्रसन्नं तदनुज्ञया।
जगाम निजमुद्यानं स तमेव विचिन्तयन्॥ ५१॥

भिक्षुमश्वजितं प्राह भगवानथ सस्मितः।
एषोऽन्तिकेऽद्य मे रात्रौ कुमारः प्रव्रजिष्यति॥ ५२॥

इत्युक्त्वा स्वपदं याते सुगते सह भिक्षुभिः।
शक्रनिर्म्मितमद्राक्षीत् कुमारः स्त्रीकलेवरम्॥ ५३॥

पूयपर्य्युषितक्लेदसीदत्क्रिमिकुलाकुलम्।
स दृष्ट्वा शवमुद्याने सोद्वेगः समचिन्तयत्॥ ५४॥

विकारा एव तारुण्यरूपलावण्यकान्तयः।
चर्म्ममांससमूहानामियं सा प्रकृतिर्नृणाम्॥ ५५॥

लोलल्लोचनमुन्मिषत्कुचयुगं कोऽपं शशाङ्कत्विषा
मेतत्तन्नवयौवनोदयलसल्लावण्यगण्यं वपुः।
यातं पूतिवसावसेकविकलं ताम्यत्क्रिमिव्याकुलं
क्लिन्नक्लोमयकृत्विकीर्णसकलक्लीहान्त्रनिर्यन्त्रताम्॥ ५६॥

अस्मिन् रागविमोहहारितदृशः सर्व्वाङ्गसङ्गोत्सवे
संलीनाः स्तनमण्डले हतधियः प्रापुः परां निर्वृतिम्।
यस्मादेष गतस्पृहः कवलने वैमुख्यवक्राननः
क्लेदोत्सादविषादकुणितमतिर्दूरङ्गतो जम्बुकः॥ ५७॥

ཞིས་བསམས་ཆགས་བྲལ་བག་ཆགས་ནི། སྤྲས་པ་ཡང་དག་གྱིས་གྱུར་ཏེ།
དེ་ནི་སྐྱིད་ཚལ་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས། རང་གི་ཁང་པར་དལ་གྱིས་སོང་། 58

སྐབས་དེར་ཉིན་བྱེད་འཛིག་རྟེན་གྱི། སྤྱོད་ཚུལ་རོ་བྲལ་མཐོང་བས་བཞིན།
སྐྱོ་ཞིང་རབ་ཞིར་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ། ཉིན་པར་དག་ནི་ཉམས་པར་གྱུར། 59

ངལ་དུབ་མ་ལུས་ཡོངས་གཏོང་བར། འོས་པ་རབ་ཞིར་འགྲོ་འདོད་ཅིང་།
ཕྲན་མཚམས་མཁའ་ཡི་གོས་དམར་བསྟེན། ཉིན་མོ་རབ་ཏུ་ཕྱུང་བཞིན་གྱུར། 60

ཉི་མ་སྲིད་པའི་མིག་དག་ནི། འཛིག་རྟེན་ཕ་རོལ་གནས་སོང་ཚེ།
འཛིག་རྟེན་ཡོངས་བདང་ཉིན་མོ་ཡང་། དེ་ཡི་རྗེས་འབྲང་ཉིད་དུ་གྱུར། 61

དེ་ནས་འགྲོ་བསྟེན་གསར་བ་ཡི། རབ་རིབ་སྨུ་ངན་སྦྱོར་བ་དག།
སྔོན་མའི་དཀྱིལ་འཁོར་སྣང་བ་ཡིས། བརྩེ་བས་བཞིན་དུ་རབ་ཏུ་བསྙོག། 62

སྐབས་དེར་སྟོན་པ་རང་ཉིད་ནི། གྲགས་སྦྱིན་དག་ལ་བརྩེ་བ་ཡིས།
གྲོང་ཁྱེར་སྐྱུང་འགྲམས་པ་རོལ་དུ། དེ་འཕྲོབ་སྐད་དུ་ཡང་དག་གཤེགས། 63

གྲགས་སྦྱིན་གྱིས་ཀྱང་ཉིན་པར་གྱིས། ཉོན་མོངས་མཚུངས་པ་ཡང་ཡང་དུ།
འཁོར་བ་སྙིང་པོ་མེད་པ་ཉིད། སེམས་ཤིང་ཉལ་བའི་ཁང་པར་ཞུགས། 64

གླིང་བུ་རྒྱུད་མང་རྫ་རྔ་སོགས། རྩེ་དགའ་ལ་ཞིང་གཅེར་ལོག་པ།
མིག་ཟུམ་གཟུགས་པས་འཕྲུགས་པ་ཡི། བུ་མེད་ཉམས་ཉེར་དེ་ཡིས་མཐོང་། 65

इति सञ्चिन्त्य सञ्जातगाढ़वैराग्यवासनः ।
जगामोद्यानविमुखः स शनैर्निजमन्दिरम् ॥ ५८ ॥

अत्रान्तरे दिनम्लानिखिन्नोऽभूत् प्रशमोन्मुखः ।
विरसं लोकवृत्तान्तं विलोक्येव दिवाकरः ॥ ५९ ॥

अशेषाशापरित्यागयोग्यं प्रशममीयुषः ।
सन्ध्यारक्ताम्बरजुषः प्रव्रज्येव रवेरभूत् ॥ ६० ॥

लोकोत्तरपदं याते भानो भुवनचक्षुषि ।
वासरोऽपि परित्यज्य लोकं तदनुगोऽभवत् ॥ ६१ ॥

ततः प्रत्यग्रतिमिरोद्वेगयोग जगज्जुषाम् ।
प्रदीपमण्डलालोकः कृपयेव न्यवारयत् ॥ ६२ ॥

अस्मिन्नवसरे शास्ता यशोददयया स्वयम् ।
पुरनद्याः परं पारं तत्प्राप्त्यै समुपाययो ॥ ६३ ॥

यशोदोऽपि दिनापायतुलया कलयन्मुहुः ।
संसारासारतामेव शय्याभवनमाविशत् ॥ ६४ ॥

वेणुवीणामृदङ्गादिविनोदैर्मदनिर्भराः ।
तत्रापश्यत् स्वललनाः श्रमनिद्रानिमीलिताः ॥ ६५ ॥

ཁ་ནི་རྒྱུད་མང་ལ་བགོད་ཅིང་། ལག་པའི་འཁྲི་ཤིང་ཛ་རིར་གཏང་།
བདེ་བ་སྐད་ཅིག་པ་ཉིད་ཀྱིས། སྡུག་བསྔལ་བསམ་གཏན་ལ་ཞུགས་བཞིན། 66

གོས་རལ་ཤི་བ་བཞིན་དུ་ནི། གཡོ་མེད་དེ་དག་མཐོང་གྱུར་ནས།
ལྷག་པར་ཆགས་བྲལ་ཡང་དག་སྐྱེས། ཡུན་རིང་དེ་ཡིས་ཡང་དག་བསམས། 67

ཀྱེ་མ་ཡུལ་ནི་འདི་དག་ནམས། མཐུག་ཏུ་མཆོག་ཏུ་རོ་དང་བྲལ།
བྱུད་མེད་ཅེས་པ་འདི་ལྟ་ལ། སྨོངས་པ་ནམས་ནི་མཆོག་ཏུ་གུས། 68

མཆོག་མིན་བདེ་བའི་སྒྲིན་གྲུས་ལ། གློག་གི་རྩེ་དགའ་འདི་དག་ནམས།
གཉིད་ལོག་ཤི་བ་དག་ལ་ཡང་། ནམ་འཕྲུལ་གང་ན་འཛུམ་གང་ན། 69

འགའ་ཞིག་འོག་ཏུ་ཁ་བལྟས་ཉལ་ཞིང་དེ་ཡི་རྒྱབ་ནི་གཞན་དུ་བསློག་སྟེ་ལྡིང་།
གཞན་ཡང་གན་ཀྱལ་ཡན་ལག་ཀུན་བཀྱངས་ཁ་ཡི་ཐུ་བ་ནམ་པར་ཕྱེ་བར་གྱུར།
གཞན་དག་སྐྲ་ནི་གྲོལ་ཞིང་དྲ་བས་ཐྲག་པ་ལ་ཆགས་བྱ་རོག་བབས་པ་བཞིན།
བདག་གི་ཁྲིམ་ནི་མིག་རྫུམ་བྱུད་མེད་ཚོགས་ནམས་ནམ་འཛིན་དུར་ཁྲོད་ལྟ་བུར་སྣང་། 70

དེང་ཉིད་རབ་བྱུང་དོན་གཉེར་བདག། གྲོང་ཁྱེར་ནང་ལས་ཕྱིར་འཐོན་ཏེ།
སྨོངས་པ་བསློག་སྐད་བཅོམ་ལྡན་འདས། ངེས་པར་བལྟ་རུ་འགྲོ་བར་བྱ། 71

ཞེས་བསམས་རིན་ཐང་ཆེ་བ་ཡི། རིན་ཅན་མཆིལ་ལྷམ་རྫང་ནས་དེ།
གྲོང་སྐྱོང་ནམས་ཀྱིས་མ་ཤེས་པར། བརྒྱ་བྱིན་གྱི་ནི་མཐུ་ཡིས་སོང་། 72

वीणाविन्यस्तवदना मृदङ्गार्पितदोर्लताः ।
क्षणिकत्वात् सुखस्येव दुःखध्यानमुपागताः ॥ ६६ ॥

विलोक्य स्रस्तवसनास्ता मृता इव निश्चलाः ।
सञ्जाताधिकवैराग्यः स चिरं समचिन्तयत् ॥ ६७ ॥

अहो बतास्मिन् विषये पर्य्यन्तविरसे परम् ।
एवम्विधे बधूनाम्नि मुग्धानां मृशमादरः ॥ ६८ ॥

विद्युद्विलसितान्यासामसत्सुखघनोदये ।
सुप्तानाञ्च मृतानाञ्च क्व स्मितं क्व च विभ्रमाः ॥ ६९ ॥

शेते काचिदधोमुखी विवलिता पृष्ठे च्युतास्यापरा
याताऽन्यापि विकाशितास्यविवरा सर्व्वाङ्गमुत्तानताम् ।
अंशासक्तविभक्तमुक्तकवरीकाकैर्वृतेवापरा
चित्रं मे भवनं विलीननयनस्त्रैणं श्मशानायते ॥ ७० ॥

अहमद्यैव निष्क्रम्य प्रव्रज्यार्थी पुरान्तरात् ।
भगवन्तं व्रजाम्येव द्रष्टुं मोहनिवृत्तये ॥ ७१ ॥

विचिन्त्येति समादाय महार्हे रत्नपादुके ।
शक्रप्रभावात् स ययावज्ञातः पुररक्षिभिः ॥ ७२ ॥

གྲོང་ཁྱེར་སྐྱོ་ལས་མངོན་པར་ནི། བྱུང་སྟེ་རྒྱ་སྐྱུང་མཆོག་ཐོབ་ནས།
འཁོར་བའི་སྤྱི་དགྲ་འཇོམས་པ་ཡིས། གདུང་བ་གཏོང་བར་བརྩོན་པ་བཞིན། 73

བཅོམ་ལྡན་འབྱུང་པོ་དགོངས་པ་ཡིས། དེ་ནི་འོང་བ་གཟིགས་གྱུར་ནས།
དགྱེས་པས་དེ་ནི་བསྐལ་བ་ལ། བཞེད་དང་ལྡན་པ་བཞིན་དུ་གྱུར། 74

དེ་ཡིས་རྗེས་མཐུན་གསེར་གྱི་མདོག། ཕྱག་ནི་གཡས་པ་བཀྲུངས་མཛད་ནས།
སྐུ་ཡི་གཟི་བརྗིད་སྣང་བ་ཡས། ཕྱོགས་ཀྱི་མུན་པ་ཡོངས་ཁྱོགས་ཤིང་། 75

ཚུར་ཤོག་ཚུར་ཤོག་གནོད་མེད་ལ། ནད་མེད་གནས་ནི་ཁྱོད་ཀྱིས་ཐོབ།
ཅེས་པ་འབྲུག་དབྱངས་ལྟར་སྒྲུག་སྒྲས། རིང་པོ་ནས་ནི་དེ་ལ་གསུངས། 76

བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་གསུང་ཐོས་ནས། བདུད་རྩི་ཡིས་ནི་གང་བ་བཞིན།
ཡོངས་གདུང་བདང་ནས་གྲགས་སྤྲིན་ནི། འཕྲལ་ལ་བསིལ་བ་ཉིད་དུ་གྱུར། 77

རིན་ཅེན་རིན་ཅེན་མཆིལ་ལྷམ་ནི། སྐྱང་གི་ངོགས་སུ་དེ་ཡིས་དོར།
བགོལ་ཕྱིན་དེ་ཡིས་ཕ་རོལ་གྱི། བགྲམ་དུ་ཐར་པ་ཉིད་ཐོབ་གྱུར། 78

བཅོམ་ལྡན་དྲུང་དུ་ངེས་ཕྱིན་ཏེ། གདུང་བ་ཅན་གྱི་ཙན་དན་ཤིང་།
དང་བས་བརྣན་ལ་རྫུར་ཕུད་ནི། ཞབས་ལ་གདུགས་པས་རབ་ཏུ་བཏུད། 79

དེ་ནས་དེ་ལ་སྟོན་པ་ཡིས། གང་གིས་འདི་ནི་ཆགས་བྲལ་ཉིད།
འཐོབ་བ་མཚུངས་མེད་མཆོག་གྱུར་པ། ལེགས་པའི་ཆོས་ནི་བསྟན་པར་མཛད། 80

Prithiráj Rásau, (Text) Part I, Fasc. 1, Part II, Fasc. 1–5 @ /6/ each Rs. 2 4
Ditto (English) Part II, Fasc. 1 ... ... 0 12
Prákrita Lakshanam, (Text) Fasc. 1 ... ... 1 8
Parásara Smriti, (Text) Vol. I, Fasc. 1–8; Vol. II, Fasc. 1–6; Vol. III, Fasc. 1–4 @ /6/ each 6 12
Parásara, Institutes of (English) 0 12
S'rauta Sútra of Ápastamba, (Text) Fasc. 1–12 @ /6/ each ... 4 8
* Ditto Látyáyana, (Text) Fasc. 2–9 @ /6/ each 3 0
Ditto S'ánkháyana, (Text) Vol. I, Fasc. 1–7; Vol. II, Fasc. 1–4 Vol. III, Fasc. 1 & 2 @ /6/ each 4 14
*Sáma Veda Samhitá, (Text) Vols. I, Fasc. 5–10; II, 1–6; III, 1–7; IV, 1–6; V, 1–8, @ /6/ each Fasc. 12 6
Sankhya Sutra Vritti, (Text) Fasc. 1–4 @ /6/ each 1 8
Ditto (English) Fasc. 1–3 ... ... 2 4
*Sankara Vijaya, (Text) Fasc. 2 and 3 @ /6/ each 0 12
*Sánkhya Pravachana Bháshya, Fasc. 3 (English preface only) ... 0 6
S'ri Bháshyam, (Text) Fasc. 1–3 @ /6/ each 1 2
Suśruta Samhitá, (Eng.) Fasc. 1 & 2 @ /12/ each 1 8
*Taittiriya Aranya, (Text) Fasc. 2–11 @ /6/ each 3 12
* Ditto Samhita, (Text) Fasc. 9–37 @ /6/ each 10 14
Tándya Brahmana, (Text) Fasc. 1–19 @ /6/ each 7 2
Tattva Chintámani, (Text) Vol. I, Fasc. 1–9, Vol. II, Fasc. 1–10, Vol. III, Fasc. 1–2, Vol. IV, Fasc. I @ /6/ each 8 4
Tul'si Sat'saí, (Text) Fasc. 1–4 @ /6/ each 1 8
Uvásagadasáo, (Sanskrit and English) Fasc. 1–6 @ /12/ 4 8
Varáha Purána, (Text) Fasc. 1–14 @ /6/ each 5 4
*Váyu Purána, (Text) Vol. I, Fasc. 2–6; Vol. II, Fasc. 1–7, @ /6/ each Fasc. 4 8
Vishnu Smriti, (Text) Fasc. 1–2 @ /6/ each 0 12
Vivádaratnákara, (Text) Fasc. 1–7 @ /6/ each 2 10
Vrihannáradiya Purána, (Text) Fasc. 1–6 @ /6/ 2 4
Vrihat Soayambhu Puran, Fasc. 1–III 1 2

Tibetan Series.

Pag-Sam Thi S'in, Fasc. 1–4 @ 1/ each 4 0
Sher-Phyin, Vol. I, Fasc. 1–5; Vol. II, Fasc. 1–3 @ 1/ each ... 8 0
Rtogs *brjod dpag hkhri* S'in (Tib. & Sans.) Vol. I, Fasc. 1–4; Vol. II, Fasc. 1–2 @ 1/ each 6 0

Arabic and Persian Series.

Álamgírnámah, with Index, (Text) Fasc. 1–13 @ /6/ each 4 14
Ain-i-Akbari, (Text) Fasc. 1–22 @ 1/ each 22 0
Ditto (English) Vol. I, Fasc. 1–7, Vol. II, Fasc. 1–5, Vol. III Fasc. 1–5, @ 1/12/ each 29 12
Akbarnámah, with Index, (Text) Fasc. 1–37 @ 1/ each 37 0
Arabic Bibliography, by Dr. A. Sprenger 0 6
Bádshánámah with Index, (Text) Fasc. 1–19 @ /6/ each 7 2
Catalogue of the Persian Books and Manuscripts in the Library of the Asiatic Society of Bengal. Fasc. 1 & 2 @ 1 each 2 0
Dictionary of Arabic Technical Terms, and Appendix, Fasc. 1–21 @ 1/ each 21 0
Farhang-i-Rashídí, (Text) Fasc. 1–14 @ 1/ each 14 0
Fihrish-i-Túsi, or, Túsy's list of Shy'ah Books, (Text) Fasc. 1–4 @ /12/ each 3 0
Futúh-ul-Shám Waqidí, (Text) Fasc. 1–9 @ /6/ each 3 6
Ditto Azádí, (Text) Fasc. 1–4 @ /6/ each 1 8
Haft Ásmán, History of the Persian Mansawi, (Text) Fasc. I ... 0 12
History of the Caliphs, (English) Fasc. 1–6 @ /12/ each 4 8
Iqbálnámah-i-Jahángiri, (Text) Fasc. 1–3 @ /6/ each 1 2
Isabáh, with Supplement, (Text) 51 Fasc. @ /12/ each 38 4
Maásir-ul-Umara, Vol. I, Fasc. 1–9, Vol. II, Fasc. 1–9; Vol. III, 1–10 Index to Vol. I Fasc. X & XI @ /6/ each 11 4
Maghází of Wáqidí, (Text) Fasc. 1–5 @ /6/ each 1 14
Muntakhab-ul-Tawárikh, (Text) Fasc. 1–15 @ /6/ each 5 10

* The other Fasciculi of these works are out of stock, and complete copies cannot be supplied.

Muntakhab-ul-Tawáríkh, (English) Vol. II, Fasc. 1–5 @ /12/ each Rs. 3 12
Muntakhab-ul-Lubáb, (Text) Fasc. 1–19 @ /6/ each 7 2
Ma'ásir-i-'Alamgírí, (Text), Fasc. 1–6 @ /6/ each 2 4
Nokhbat-ul-Fikr, (Text) Fasc. 1 ... ... 0 6
Nizámí's Khiradnámah-i-Iskandarí, (Text) Fasc. 1 and 2 @ /12/ each 1 8
Riyázu-s-Salatín, (Text) Fasc. 1–4 @ /6/ each 1 8
*Suyúty's Itqán, on the Exegetic Sciences of the Koran, with Supplement, (Text) Fasc. 7–10 @ 1/ each 4 0
Tabaqát-i-Náṣirí, (Text) Fasc. 1–5 @ /6/ each 1 14
Ditto (English) Fasc. 1–14 @ /12/ each 10 8
Táríkh-i-Fírúz Sháhi of Zia-al-dín Barni (Text) Fasc. 1–7 @ /6/ each ... 2 10
Táríkh-í-Baihaqí, (Text) Fasc. 1–9 @ /6/ each 3 6
Táríkh-i-Fírozsháhi, of Shams-i-Siráj Aif, (Text) Fasc. 1–6 @ /6/ each... 2 4
Ten Ancient Arabic Poems, Fasc. 1 & 2 @ 1/8/ each 3 0
Wis o Rámín, (Text) Fasc. 1–5 @ /6/ each 1 14
Zafarnámah, Vol. I, Fasc. 1–9, Vol. II, Fasc. 1–8 @ /6/ each ... 6 6
Tuzuk-i-Jahángiri, (Eng.) Fasc. 1 ... ... 0 12

ASIATIC SOCIETY'S PUBLICATIONS.

1. ASIATIC RESEARCHES. Vol. VII, Vols. XIII and XVII, and Vols. XIX and XX @ 10/ each ... ... Rs. 50 0
   Ditto Index to Vols. I—XVIII 5 0
2. PROCEEDINGS of the Asiatic Society from 1865 to 1869 (incl.) @ /6/ per No.; and from 1870 to date @ /8/ per No.
3. JOURNAL of the Asiatic Society for 1843 (12), 1844 (12), 1845 (12), 1846 (5), 1847 (12), 1848 (12), 1850 (7), 1851 (7), 1857 (6), 1858 (5), 1861 (4), 1862 (5), 1864 (5), 1866 (7), 1867 (6), 1868 (6), 1869 (8), 1870 (8), 1871 (7), 1872 (8), 1873 (8), 1874 (8), 1875 (7), 1876 (7), 1877 (8), 1878 (8), 1879 (7), 1880 (8), 1881 (7), 1882, (6), 1883 (5), 1884 (6), 1885 (6), 1886 (8), 1887 (7), 1888 (7), 1889 (10), 1890 (11), 1891 (7), 1892 (8), 1893 (11), @ 1/8 per No. to Subscribers and @ 2/ per No. to Non-Subscribers.

   N. B.—The figures enclosed in brackets give the number of Nos. in each Volume.

4. Centenary Review of the Researches of the Society from 1784—1883... 3 0
   General Cunningham's Archæological Survey Report for 1863—64 (Extra No., J. A. S. B., 1864) 2 0
   Theobald's Catalogue of Reptiles in the Museum of the Asiatic Society (Extra No., J. A. S. B., 1868) 2 0
   Catalogue of Mammals and Birds of Burmah, by E. Blyth (Extra No., J. A. S. B., 1875) 4 0
   Introduction to the Maithili Language of North Bihár, by G. A. Grierson, Part II, Chrestomathy and Vocabulary (Extra No., J. A. S. B., 1882) 4 0
5. Anis-ul-Musharrahin 3 0
6. Catalogue of Fossil Vertebrata 3 0
7. Catalogue of the Library of the Asiatic Society, Bengal 3 8
8. Istiláhát-us-Súfiyah, edited by Dr. A. Sprenger, 8vo. 1 0
9. Ináyah, a Commentary on the Hidayah, Vols. II and IV, @ 16/ each... 32 0
10. Jawámi-ul-'ilm ir-riyází, 168 pages with 17 plates, 4to. Part I ... 2 0
11. Khizánat-ul-'Ilm 4 0
12. Mahábhárata, Vols. III and IV, @ 20/ each 40 0
13. Modern Vernacular Literature of Hindustani by G. A. Grierson. (Extra No., J. A. S. B., 1888) 4 0
14. Moore and Hewitson's Descriptions of New Indian Lepidoptera, Parts I—III, with 8 coloured Plates, 4to. @ 6/ each 18 0
15. Sharaya-ool-Islám 4 0
16. Tibetan Dictionary by Csoma de Körös 10 0
17. Ditto Grammar " " 8 0
18. Vuttodaya, edited by Lt.-Col. G. E. Fryer 2 0

Notices of Sanskrit Manuscripts, Fasc. 1–25 @ 1/ each 25 0
Nepalese Buddhist Sanskrit Literature, by Dr. R. L. Mitra ... 5 0

N.B.—All Cheques, Money Orders, &c., must be made payable to the "Treasurer Asiatic Society," only.

1-12-94.

BIBLIOTHECA INDICA:

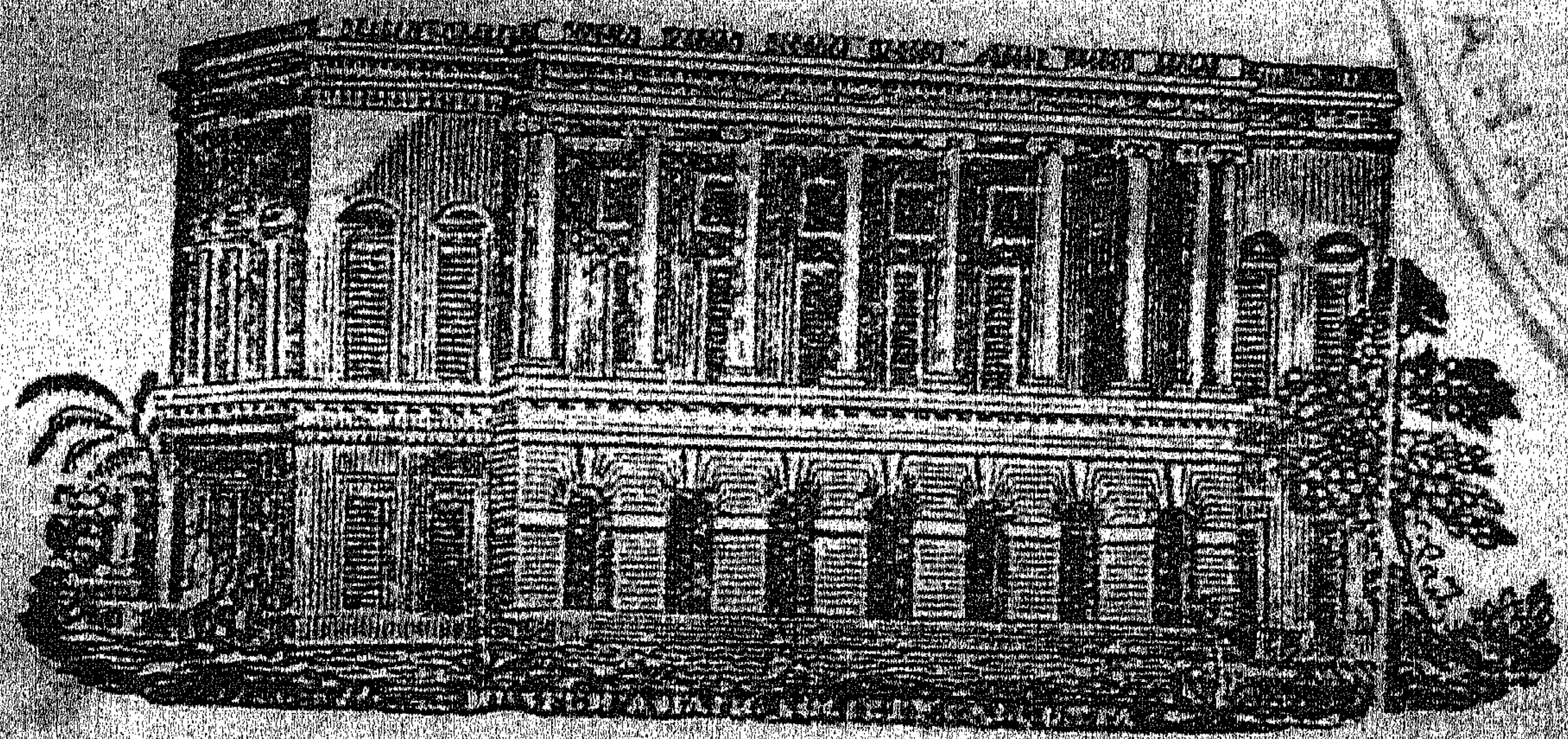
A

COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

NEW SERIES, No. 860.



AVADÁNA KALPALATÁ.

WITH ITS TIBETAN VERSION

NOW FIRST EDITED

BY

ÇARAT CANDRA DÁS, C. I. E.,

ASSOCIATE MEMBER, AS. SOC., BENG.,

AND

PAṆḌIT HARI MOHAN VIDYÁBHÚṢAṆA,

ORIENTAL LIBRARIAN, AS. SOC., BENG.

VOL. II. FASC. IV.

CALCUTTA:

PRINTED AT THE BAPTIST MISSION PRESS,

AND PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY, 57, PARK STREET.

1895.

अभिनिष्क्रम्य नगरात् वारां प्राप्य सरिद्वराम् ।
संसारमरुसंक्रान्तं तापं त्यक्तुमिवोद्यतः ॥ ७३ ॥

तमायान्तं विलोक्यैव भगवान् भूतभावनः ।
प्रीत्या सन्तरणे तस्य ययौ सोत्कण्ठतामिव ॥ ७४ ॥

स हेमवर्णमुद्यम्य दक्षिणं दक्षिणं भुजम् ।
देहप्रभाप्रकाशेन तमः परिहरन् दिशाम् ॥ ७५ ॥

एह्येहि प्राप्नुहि पदं निरपायमनामयम् ।
अभ्यधादिति तं दूरान्मेघघोषघनस्वनः ॥ ७६ ॥

श्रुत्वा भगवतः शब्दममृतेनेव पूरितः ।
यशोदस्त्यक्तसन्तापः सद्यः शीतलतां ययौ ॥ ७७ ॥

त्यक्त्वा स सरितस्तीरे महार्हे रत्नपादुके ।
दत्त्वावगाह्यमुत्तीर्य्य तां परं पारमाप्तवान् ॥ ७८ ॥

भगवन्तं स सम्प्राप्य तापचन्दनपादपम् ।
प्रणनाम प्रसादार्हं चरणालीनशेखरः ॥ ७९ ॥

ततस्तस्यासमोत्कर्षशालिनीं धर्म्मदेशनाम् ।
चकार शास्ता लेभेऽसौ यया विगतरागताम् ॥ ८० ॥

བརྟུལ་ཞུགས་བཟང་དེ་བཙོམ་ལྡན་དྲུང་། ལེགས་པར་གསུངས་པའི་ཆོས་འདུལ་ལ།
ཚངས་པར་སྤྱོད་སྤྲད་རབ་ཏུ་བཀོད། འདོད་པ་ཛོགས་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 81

དེ་ནས་བུ་ནི་སོང་བ་དག། ལེགས་པར་རབ་སད་སང་པས་ཐོས།
དེ་བྲལ་མེ་ཡིས་གདུངས་པ་ཡིས། དེ་ནི་འཚོལ་དུ་ཕྱི་རོལ་སོང་། 82

མཛའ་དང་སྐྱོངས་པ་ཆེན་པོ་ཡིས། གཟིར་ཅིང་སྨྲ་ངན་ལྡན་པ་དེས།
རྒྱ་བོའི་ངོགས་ཀྱི་འགྲམ་དུ་ཕྱིན། རིན་ཅེན་མཆིལ་ལྷམ་དག་ཀྱང་མཐོང་། 83

དེ་ཡིས་རྒྱ་བོ་ཡང་དག་བགོལ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་མཐོང་གྱུར་ཏེ།
དེ་ཡི་མཐུ་ཡིས་རབ་བསྒྲིབས་པས། མདུན་ན་གནས་པའི་བུ་མ་མཐོང་། 84

དེ་ནས་སླར་ཡང་བཙོམ་ལྡན་གྱིས། རབ་ཏུ་བདུད་བྲུས་དེ་ཡིས་ཡང་།
སྐྱོངས་པ་ཆོས་གདམ་རིགས་པ་ཡིས། འོད་ཀྱི་སྨུན་པ་བཞིན་དུ་ཕྲོགས། 85

དེ་ནས་སྐྱོངས་བྲལ་དེ་ཡིས་བུ། དྲི་མེད་འོད་ལྡན་མཐོང་གྱུར་ནས།
རྗེས་སུ་འདོད་ཅིང་གུས་པ་ཡིས། སྟོན་པ་ལྷག་པར་གནས་པ་བྲུས། 86

དེ་ཡི་ཁྲིམ་དུ་བཅོམ་ལྡན་གྱིས། མཆོད་པ་རབ་ཏུ་བླངས་མཛད་ནས།
དེ་ནི་ཆུང་མར་བཅས་བ་ལ། དག་པའི་བསླབ་གནས་རབ་འབར་མཛད། 87

དེ་ནས་གྲགས་སྦྱིན་གྲོགས་པོ་ནི། དཔལ་དང་ལྡན་པ་ནམས་ཀྱི་མཆོག།
དྲི་མེད་གང་པོ་ལག་བཟང་དང་། བ་སླང་བདག་ཅེས་བྱ་བ་བཞིས། 88

स्वाख्याते धर्म्मविनये ब्रह्मचर्य्याय सुव्रतः ।
स नियुक्तो भगवता प्रययौ पूर्णकामताम् ॥ ८१ ॥

सुप्रबुद्धः प्रबुद्धोऽथ श्रुत्वा निष्क्रान्तमात्मजम् ।
तद्वियोगाग्निसन्तप्तस्तमन्वेष्टुं विनिर्ययौ ॥ ८२ ॥

स शोकसहितस्नेहमोहेन महतार्दितः ।
व्रजन् ददर्श वारायास्तटान्ते रत्नपादुके ॥ ८३ ॥

स समुत्तीर्य्य सरितं भगवन्तं व्यलोकयत् ।
तत्प्रभावप्रतिच्छन्नं न तु पुत्रं पुरःस्थितम् ॥ ८४ ॥

ततः कृतप्रणामस्य तस्यापि भगवान् पुरः ।
धर्म्यया कथया मोहं त्विषा तमइवाहरत् ॥ ८५ ॥

वीतमोहस्ततः पुत्रं स दृष्ट्वा विमलद्युतिम् ।
शास्तुश्चकारानुमतः प्रणयादधिवासनाम् ॥ ८६ ॥

भगवानथ तद्गेहे कृत्वा पूजाप्रतिग्रहम् ।
तं पत्नीसहितं चक्रे शुद्धशिक्षापदोज्ज्वलम् ॥ ८७ ॥

ततो यशोदसचिवाश्चत्वारः श्रीमतां वराः ।
विमलाख्यः सुबाहुश्च पूर्णकोऽथ गवां पतिः ॥ ८८ ॥

བཅོམ་ལྡན་མདུན་ན་གྲགས་སྦྱིན་ནི། ཚངས་སྤྱོད་བརྟུལ་ཞུགས་ལ་ཆགས་པའི།
གྲགས་པ་ཕྱོགས་སུ་རབ་གསལ་བ། ཐོས་ནས་གནས་དེར་འོངས་པར་གྱུར། 89

དགེ་བ་སྨིན་པས་ཐོབ་གྱུར་པ། དེ་དག་ཉམས་ལ་བཅོམ་ལྡན་འདས།
དག་པའི་བཀའ་ཡི་སླར་ཡང་ནི། འདུལ་བའི་ཆོས་ལ་བསྟན་པ་བསྒྲུབས། 90

བཞི་པོ་དེ་དག་གྲགས་སྦྱིན་དང་། དགེ་སློང་གཞན་པ་ལྔ་དག་སྟེ།
བཅུ་ཡིས་བཅོམ་ལྡན་དྲུང་དུ་ན། དགྲ་བཅོམ་གནས་དག་ཐོབ་པར་གྱུར། 91

གྲགས་སྦྱིན་སྤྱོད་ཚུལ་ཐོས་གྱུར་ནས། དེ་ཡི་གྲོགས་པོ་སྐལ་ལྡན་གཞན།
ལྔ་བཅུས་སྟོན་པའི་དྲུང་དུ་ནི། ཕྱིན་ནས་དེ་མཚུངས་ཉིད་དག་ཐོབ། 92

ཚུལ་དེས་གུས་པ་སྐྱེས་གྱུར་པ། གཞན་ནི་བརྒྱ་ཕྲག་ལྔ་ཡིས་ཀྱང་།
དེ་དང་མཚུངས་པར་འདུལ་བའི་ཆོས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་དྲུང་དུ་ཐོབ། 93

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་དགེ་མཚན་ལས། དགེ་སློང་ཀུན་གྱིས་བཅོམ་ལྡན་ལ།
གྲགས་སྦྱིན་གྱིས་ནི་བསོད་ནམས་དྲིས། དེ་ལ་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་གསུངས། 94

སྔོན་ཚེ་ཡང་དག་རྫོགས་པ་ཡི། སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་གཙུག་ཏོར་ཅན།
གྲོང་ཁྱེར་ལས་ནི་བསོད་སྙོམས་ཐོབ། པ་རོལ་ངོགས་འགྲམ་སྐད་ཅིག་བཞུགས། 95

ས་ཡི་བདག་པོ་ཚངས་པས་བྱིན། ལམ་དེ་ནས་ནི་འགྲོ་བ་ཡི།
རྗེས་འབྲང་འོད་བཟང་ཞེས་པ་ཡིས། དེ་ནི་བཞུགས་པ་མཐོང་བར་གྱུར། 96

यशःप्रकाशितदिशं यशोदं भगवत्पुरः ।
ब्रह्मचर्य्यव्रतासक्तं श्रुत्वा तं देशमाययुः ॥ ८९ ॥

तेषां कुशलपाकेन प्राप्तानां भगवान् पुनः ।
विदधे धर्म्मविनये शासनं शुद्धशासनः ॥ ९० ॥

यशोदस्ते च चत्वारो भिक्षवः पञ्च चापरे ।
अर्हत्पदन्दश प्रापुस्तदा भगवतोऽन्तिके ॥ ९१ ॥

श्रुत्वा यशोदवृत्तान्तं धन्यास्तत्सचिवाः परे ।
पञ्चाशदन्तिकं शास्तुर्गत्वा तत्तुल्यतां ययुः ॥ ९२ ॥

शतपञ्चकमन्यच्च तद्वृत्तान्तोदितादरम् ।
तत्तुल्यं धर्म्मविनयं लेभे भगवतोऽन्तिके ॥ ९३ ॥

ततः कदाचिद्भगवान् कौतुकात् सर्व्वभिक्षुभिः ।
पृष्टः पुण्यं यशोदस्य सर्व्वज्ञस्तानभाषत ॥ ९४ ॥

पुरा प्रत्येकसम्बुद्धः पुरात् सम्प्राप्तपिण्डकः ।
वारातटान्ते भगवान् शिखी क्षणमुपाविशत् ॥ ९५ ॥

वर्त्मना व्रजतस्तेन ब्रह्मदत्तस्य भूपतेः ।
अनुगः सुप्रभो नाम विश्रान्तं तं व्यलोकयत् ॥ ९६ ॥

ཉི་མའི་འོད་ཟེར་དྲག་པོ་ཡི། གདུང་བས་རྡུལ་དང་བཅས་གྱུར་པ།
དེ་མཐོང་ནས་ནི་དེ་ལ་དེས། གདུགས་དག་བཟུང་ནས་གྲིབ་བསིལ་བྱས། 97

དེ་ཡི་དྲུང་དུ་ཚངས་སྤྱོད་ལ། དེ་ཡིས་བསྟན་པ་བཟུང་ནས་ནི།
སེམས་ནི་དྲི་མ་མེད་ཉིད་ལས། དག་པ་མཆོག་ལྡན་ཐོབ་པར་གྱུར། 98

དེ་ནས་རབ་དང་བློ་ལྡན་པ། རྫོགས་སངས་རྒྱས་ཀྱིས་དེ་ལ་གསུངས།
འབྱུང་འགྱུར་ཤཱ་ཀྱ་ཐུབ་པའི། དྲུང་དུ་ཁྱོད་ནི་བྱང་ཆུབ་འགྱུར། 99

དེ་ཡིས་ངེས་པར་དེ་གཟུངས་ཏེ། དུས་ཀྱིས་ལུས་ནི་བཏང་བྱས་ནས།
བློ་བཟང་ཞེས་པ་ལྷ་ཡི་བུར། མཐོ་རིས་སུ་ནི་ཡུན་རིང་འགྱུར། 100

བསོད་ནམས་ལྡན་པ་དེ་ཉིད་དང་། གྲགས་སྦྱིན་དགེ་ལེགས་གཉེར་འདི་སྟེ།
གྲགས་པ་ཡིས་ནི་གྲོགས་རྣམས་ཀྱང་། དགེ་བའི་ཟམ་སྟེགས་ཉིད་དག་ཐོབ། 101

ས་བདག་ཀྲི་ཀི་ཞེས་བྱ་བ། རྒྱ་ཆེན་བློ་ཡིས་སྟོན་པ་ནི།
འོད་སྲུངས་སྐུ་དག་གྲུང་འདས་ལ། རིན་ཆེན་མཆོད་རྟེན་སྟོན་ཚེ་བྱས། 102

ས་ཡི་བདག་པོ་དེ་ཡི་བུ། གསུམ་པ་གྲགས་ལྡན་དགའ་བ་ཡིས།
ནོར་བུའི་མཆོད་རྟེན་དེ་ལ་ནི། གུས་པས་རིན་ཆེན་གདུགས་དག་བཀོད། 103

དེ་དང་བསོད་ནམས་སྔ་མ་ཡིས། སྐྱེ་བ་འདི་ལ་གྲགས་སྦྱིན་ནི།
གྲགས་ཆེན་རིན་ཆེན་འབར་བ་ཡིས། གདུགས་ཀྱིས་བསྐྱོན་པ་དག་ཏུ་སྐྱེས། 104

सखेदं तीव्रतापेन प्रचण्डकिरणे रवौ।
तं दृष्ट्वा छत्रमादाय छायां तस्य चकार सः॥ ९७॥

तस्यान्तिके ब्रह्मचर्य्यं समादाय सशासनम्।
बभूव चित्तवैमल्यात् कुशलप्रणिधानवान्॥ ९८॥

ततः प्रत्येकसम्बुद्धस्तमुवाच प्रसन्नधीः।
भविष्यतः शाक्यमुनेरन्तिके बोधिमाप्स्यसि॥ ९९॥

इत्युक्तस्तेन नियतं कालेन त्यक्तविग्रहः।
सोऽभवत् सुमतिर्नाम देवपुत्रश्चिरं दिवि॥ १००॥

स एष पुण्यवानद्य यशोदः श्रेयसां निधिः।
सुहृदामपि सम्प्राप्तः कीर्त्या कुशलसेतुताम्॥ १०१॥

क्रकिर्नाम क्षितिपतिः काश्यपस्याकरोत् पुरा।
शास्तुः शरीरे निर्व्वाणे रत्नस्तूपमुदारधीः॥ १०२॥

यशस्वी नाम तनयस्तृतीयस्तस्य भूपतेः।
भक्त्या तस्मिन्मणिस्तूपे रत्नछत्रं न्यवेशयत्॥ १०३॥

तेनापि पूर्व्वपुण्येन जन्मन्यस्मिन्महायशाः।
जातो यशोदश्छत्रेण रत्नदीप्तेन भूषितः॥ १०४॥

དེ་ལྟར་སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་ལེགས་བྱས་གྱུར་པས་ཚེ་བ་བཅིངས།
ཟླ་བ་ལྟར་དཀར་གྲགས་པའི་འོད་ཟེར་གྱུར་པའི་མེ་ཏོག་ཅན།
དགེ་བ་དེ་ཡིས་ཆོས་ཀྱི་ལྗོན་པ་རབ་གྱུར་འབྲས་སྨིན་འདི།
དེ་སྐད་ཐོས་ནས་དགེ་སློང་ཚོགས་དེས་ཡ་མཚན་ཐོབ་པར་གྱུར། 105

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་གྲགས་སྤྲིན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་ཙ་གཉིས་པའོ།།

इत्यन्यजन्मसुकृतोदयबद्धमूलः
सोन्मेष एष शशिशुभ्रयशोऽंशुपुष्पः ।
धर्म्मद्रुमः पृथुतरः फलितोऽस्य साधोः
श्रुत्वेति विस्मयमवाप स भिक्षुसङ्घः ॥ १०५ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां यशोदावदानं नाम द्विषष्टितमः पल्लवः ॥

CHAPTER LXIII

འོད་སྲུང་ཆེན་པོའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

བརྒྱ་བྱིན་ཀླུང་དང་ཆུ་སོགས་ལྷ་རྣམས་དང་།
ཐུབ་མཆོག་རྣམས་ཀྱང་གང་སྐྱད་རྣམ་འགྱུར་དུ།
འགྱུར་བའི་དྲན་བདེ་ཙོ་ལྟར་གཅོད་པའི་གནས།
ཡ་མཚན་ཅན་དེ་གང་སྲུ་རྟུང་བའི་མིན། 1

ན་ག་རྡ་གྲོང་ཐང་ཆེན་དུ། སྣ་ལ་ཆེན་པོའི་རིགས་མཁྲུངས་པ།
ཉ་གྲོ་དྷ་ཡི་རྟོག་ཅེས་པ། གཉིས་སྐྱེས་གྲགས་པའི་དཔལ་ལྡན་བྱུང་། 2

དེ་ཡི་ཆུང་མ་གཟུགས་བཟང་མ། ཞེས་བ་ཁང་པའི་སྐྱིད་ཚོལ་ན།
རོལ་པས་སློན་ཤིང་པི་སྤ་ལའི། འོག་དུ་བུ་ནི་ཅི་འོད་བསྐྲུན། 3

གསེར་གྱི་འོད་ཟེར་རབ་འབར་བའི། བུ་དེ་སྐྱེས་པ་ཙམ་ཉིད་ལ།
གྲགས་པ་ལྟར་དཀར་ལྷ་ཡི་གོས། ཤིང་དེ་ལས་ནི་རབ་ཏུ་བྱུང་། 4

པི་སྤལ་སྐྱེས་ཞེས་བྱ་བ། བྱིས་པ་པདྨའི་མིག་ཅན་དེ།
རིག་དང་སྒྱུ་རྩལ་བློ་སྦྱངས་ཤིང་། དཔལ་དང་ལྡན་ཅིག་རྣམ་པར་གྱུར། 5

त्रिषष्टितमः पल्लवः।

महाकाश्यपावदानम्।

शक्रवायुवरुणादयः सुरा
विक्रियां मुनिवराश्च यत्कृते।
यान्ति तत् स्मरसुखं तृणायते
यस्य कस्य न स विस्मयास्पदम् ॥ १ ॥

द्विजन्मा मागधग्रामे विश्रुतश्रीर्महास्थले।
न्यग्रोधकल्पनामाभून्महाशालकुलोद्भवः ॥ २ ॥

तस्य भार्य्या सुरूपाख्या गृहोद्यानविहारिणी।
असूत सुतमर्काभं पिप्पलस्य तरोरधः ॥ ३ ॥

जातमात्रे सुते तस्मिन् दीप्तजाम्बूनदद्युतौ।
दिव्यांशुकं यशःशुभ्रं तस्मात् प्रादुरभूत्तरोः ॥ ४ ॥

स पिप्पलायनो नाम बालः कमललोचनः।
विद्याकलाकलितधीर्व्यवर्द्धत सह श्रिया ॥ ५ ॥

དེ་ནི་ཕ་ཡིས་གསོལ་བཏབ་ཀྱང་། རྟག་ཏུ་ཁྱིམ་ཐབ་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས།
ཡུལ་ལ་སྣང་ལྡན་དབེན་པ་ནི། དྲི་མེད་བསམ་པ་ལྡན་བར་གྱུར། 6

ཕ་ནི་རིགས་བརྒྱུད་ཆད་པ་ཡིས། འཇིགས་ནས་ཡང་ཡང་གསོལ་བཏབ་སྟེ།
དེ་ལ་སྨྲས་པ་ཁྱིམ་ཐབ་ཀྱི། འཆིང་བ་ལ་ནི་བདག་མི་སྤྲེད། 7

ཡབ་གཅིག་འདོད་པ་བདག་མི་འདོད། བདག་གི་བློ་གྲོས་ཆངས་སྤྱོད་ལའོ།
རང་འདོད་ཞི་བ་དོར་ནས་ནི། སྲིད་པའི་འཆིང་བ་སུ་ཞིག་འདོད། 8

དང་པོར་སྨིན་པ་སྨིག་ཏུ་བས་མཆི་མ་རྟག་ཏུ་འབབ་ལ་རབ་ཏུ་འཇུག།
མཚུངས་པར་ལག་པ་གདང་བས་གདུང་བའི་ལམ་ལ་བདེན་པར་མདུད་པ་མཛད།
འཕྲེང་བའི་ཐག་པས་འཁོར་བའི་བཀའ་ཡི་དམ་ཚིག་དག་ལ་གཡོ་བ་འཆིང་།
ཁྱིམ་ཐབ་ཡིད་ནི་མྱོངས་པ་གནས་པས་ཉེར་བཙོམ་ཉམས་ཀྱི་དགའ་པའི་རྒྱུ། 9

ན་ཚུང་གཞོན་ནུའི་འཁྲི་ཤིང་གར་གྱི་རླུང་གིས་བསྐྱོད་པའི་རྩེ་དགའི་རྗེས་འབྲང་བའི།
ཀྱོད་མང་གླིང་བུའི་སྒྲ་ནི་ཁྱིམ་ཐབ་དུས་སུ་སྔོ་ལྡན་གང་གི་མ་མཉན་པ།
དེ་དག་ལ་བརྟེན་ཀྱི་ཏུར་བུ་ཞེས་ཚུང་མས་ཚོ་ངེ་སྒྲ་ཞིང་དམན་གྱུར་པ།
མཆི་མ་ཀླུ་བར་ཐིགས་ཐིགས་འབབ་པས་མངོན་པར་སྤྲུར་བའི་སྒྲ་གྲགས་ཐོས་མི་འགྱུར། 10

ཞེས་པ་འབད་པ་དྲག་པོ་ཡིས། ཕ་དང་མ་ལ་ངེས་སྨྲས་ནས།
མཛེས་པས་དྲན་པ་དགེ་མཚན་གྱིས། རྒྱ་གུ་ཡང་དག་སྐྱེས་པ་བཞིན། 11

स पित्रा प्रार्थ्यमानोऽपि विवाहविमुखः सदा ।
बभूव विषयद्वेषी विवेकविशदाशयः ॥ ६ ॥

वंशच्छेदभयात् पित्रा स पुनःपुनरर्थितः ।
तमूचे रोचते मह्यं न पाणिग्रहबन्धनम् ॥ ७ ॥

न तात कामकामोऽहं ब्रह्मचर्य्ये मतिर्मम ।
शमस्वाच्छन्द्यमुत्सृज्य कस्येष्टं भवबन्धनम् ॥ ८ ॥

वाष्पस्याद्या सततपतने होमधूमैः प्रवृत्तिः
सत्यग्रन्थिर्व्यसनसरणौ तुल्यहस्तार्पणेन ।
संसाराज्ञासमयचलने बन्धनं माल्यदाम्ना
मोहारोहोपहतमनसां हर्षहेतुर्विवाहः ॥ ९ ॥

यैर्नृत्यानिललोलवालललनावल्लीविलासानुगा
वीणावंशरवा विवाहसमये प्रोत्साहितैर्न श्रुताः ।
हा पुत्रेति वधूप्रलापकलनक्लीवा न तेषां श्रिताः
श्रूयन्ते गुरुवाष्पगद्गदगलज्ज्ञाढ़ाभियोगा गिरः ॥ १० ॥

इत्युक्त्वा तीव्रनिर्बन्धं पितरं जननीञ्च सः ।
हेमकन्यां समादाय कुशलैः शिल्पिभिः कृताम् ॥ ११ ॥

བཟོ་བོ་མཁས་པས་བྲུས་པ་ཡི། གསེར་གྱི་བུ་མོ་བཟུང་ནས་ནི།
རིགས་ཆང་བསམས་པས་གཟིར་དེ་ལ། བདེན་པས་སྨྲར་ཡང་རབ་སྨྲས་པ། 12

ཁ་དོག་མཛེས་སྡུག་འདི་མཚུངས་པའི། བུ་མོ་གལ་ཏེ་རྙེད་གྱུར་ན།
ཡབ་གཅིག་ཁྱོད་ཀྱི་ཚིག་གིས་ནི། བདག་གི་བུད་མེད་བཟུང་བར་བགྱི། 13

ཞེས་པ་བུ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། དེ་མཚུངས་བུ་མོ་མཐོ་རིས་སུ།
རྙེད་དཀར་ཤེས་ནས་བྲམ་ཟེ་ནི། རི་ཐག་ཆད་ཅིང་བཞིན་དུ་འགྱུར། 14

ཙ་ཙུ་ཀར་ཞེས་པའི་གྲོགས། བྲམ་ཟེས་གཏམ་དེ་ཐོས་བ་ཡིས།
ཀུན་དགའ་དང་བྲལ་གཡོ་མེད་པ། སྒྱུ་ངན་གྱིས་ཉེན་དེ་ལ་སྨྲས། 15

རབ་འབད་ཙམ་གྱིས་བཟོད་དོན་པ། ཁྱོད་ནི་སྒྱུ་ངན་བྱད་མི་འོས།
བུ་མོ་གསེར་འོད་ལྡན་པ་ནི། བལྟ་རུ་ང་ཉིད་འགྲོ་བར་བྱ། 16

ཞེས་དེ་མཛའ་བའི་གྲོགས་པ་ནི། དང་པོར་སྐྱེས་པས་བསྟན་བྱས་ནས།
གསེར་གྱི་གཟུགས་བ་རྙན་བཟུང་ནས་ནི། གློ་ལྡན་ཕྱོགས་རྣམས་དག་ཏུ་ཡོང་། 17

འཕྲེང་བ་གོས་དང་བཅས་པས་བརྒྱན། ལྷ་ཡི་མཚན་མའི་ཟོལ་གྱིས་ནི།
བཟུང་ནས་ཕྱོགས་སུ་འཁྱམ་བྱེད་ཅིང་། བུ་མོས་མཆོད་པར་བྱ་ཞེས་སྨྲས། 18

གྲོང་ཁྱེར་གྲོང་དང་ལམ་རྣམས་སུ། དེ་མཆོད་དུ་འོང་བུ་མོ་རྣམས།
རྟག་ཏུ་རྣམ་པར་བལྟ་བ་དེས། དེ་དང་མཚུངས་པ་རྙེད་མ་གྱུར། 19

सञ्जातां कान्तिसिक्तस्य कौतुकस्येव कन्दलीम् ।
कुलविच्छेदचिन्तार्त्तं धीरः पुनरुवाच तम् ॥ १२ ॥

तुल्यलावण्यवर्णास्या लभ्यते यदि कन्यका ।
करोमि त्वद्गिरा तात तदहं दारसंग्रहम् ॥ १३ ॥

इति पुत्रवचः श्रुत्वा तत्तुल्यां दिवि दुर्लभाम् ।
ब्राह्मणकन्यकां मत्वा निराशोऽभूदधोमुखः ॥ १४ ॥

विगतानन्दनिस्पन्दं सुहृच्चतुरकाभिधः ।
तं विप्रः श्रुतावृत्तान्तः शोकक्लान्तमभाषत ॥ १५ ॥

प्रयत्नमात्रसाध्येऽर्थे न शोकं कर्त्तुमर्हसि ।
एष व्रजाम्यहं द्रष्टुं कन्यकां कनकप्रभाम् ॥ १६ ॥

इति स्निग्धस्य सुहृदः स कृत्वा धैर्य्यमग्रजः ।
आदाय हेमप्रतिमां ययौ धीमान् दिगन्तरम् ॥ १७ ॥

देवतालाञ्छनच्छन्नं समाल्यांशुकभूषणाम ।
गृहीत्वा दिक्षु बभ्राम कन्यापूज्यमुदाहरन् ॥ १८ ॥

तत्पूजोपगताः कन्या नगरग्रामवर्त्मसु ।
विलोकयन् स सततं न तत्तुल्यामवाप्तवान् ॥ १९ ॥

དེ་ནས་ཁྲམ་ཟེ་སེར་སྐྱ་ཡིས། བུ་མོ་གསེར་གྱི་བུ་མོ་བས།
འོད་ལྡག་བཟང་མོ་ཞེས་པ་ཡི། ལངས་པ་ཅན་དུ་ནམ་ཞིག་མཐོང་། 20

མཛེས་མ་ཁྱིམ་ཐབ་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས། ཆགས་བྲལ་དབེན་པ་དང་ལྡན་ཞིང་།
གསེར་རིན་མ་དུ་སར་སྐྱ་ལ། རྗེས་འགྲོ་བ་ཤད་པ་དེ་ཡིས་བསླངས། 21

བུ་མོའི་ཕ་ཡིས་དེར་སྨྲས་པ། འོད་སྲུངས་རིགས་སྐྱེས་འཛིག་རྟེན་ན།
ནྱ་གྲོ་དྷ་ཡི་རྟོག་པ་ཡིན། རིགས་མཆོག་རིགས་ནི་རྣམ་པར་གྲགས། 22

འོན་ཀྱང་མཛེས་མ་འབད་བ་ཡིས། ནོར་ནི་བཏགས་ནས་སྦྱིན་པར་བྱ།
དབུལ་བའི་ཤུགས་རིངས་ལྡན་མ་དེས། ཕ་ཡི་ཡིད་ནི་གདུང་བར་བྱེད། 23

ཆུང་མ་འཐབ་མོ་ལ་ཆགས་དང་། བུ་མོ་ནོར་མེད་ལ་སྦྱིན་དང་།
བུ་ནི་གདུང་བས་ཉེར་བཙོམ་རྣམས། སེམས་ལ་ཁབ་བསྒྲིགས་ལྟ་བུ་ཡིན། 24

རྩ་གཏེར་གྱི་ནི་སྐྱེས་བུ་མཆོག་ལ་དཔལ་མོ་བྱིན་བྱས་ཏེ།
ཅི་སྟེ་དེ་ནི་སྟོབས་ལྡན་ལ་སློང་མིའུ་ཐང་ཤེས་ནས།
ད་ལྟའང་ཀྱ་ངན་ལ་ཆགས་ཏེ་གདོང་མེ་ཡི་རང་བཞིན་གྱིས།
གདུང་བ་དྲག་པོ་ཤུགས་རིངས་དང་བཅས་ངེས་པར་གཏོང་མི་བྱེད། 25

དེ་སྐད་ནོར་ནི་བཙལ་བྱས་ཏེ། དེ་འཁོར་མངོན་མཐོ་ཤེས་གྱུར་ནས།
དམ་པའི་རིགས་ལ་བུ་མོ་སྦྱིན། དམ་པའི་ཡོན་ཏན་ནོར་གྱི་དབང་། 26

ततः कदाचिद् वैशाल्यां कपिलस्याग्रजन्मनः ।
कन्यामपश्यद्भद्राख्यां हेमकन्याधिकप्रभाम् ॥ २० ॥

विवाहविमुखीं कान्तां तां वैराग्यविवेकिनीम् ।
स हेमशुल्कां कपिलं ययाचे कथितान्वयः ॥ २१ ॥

तं कन्याजनकः प्राह सत्कुलं कुलविश्रुतम् ।
लोके न्यग्रोधकल्पस्य गोत्रे जातस्य काश्यपे ॥ २२ ॥

किन्तु कन्या प्रयत्नेन धनमन्विष्य दीयते ।
दरिद्रोच्छ्वासिनी सा हि पितुर्दहति मानसम् ॥ २३ ॥

पत्नी कलहसंसक्ता कन्यका निर्धनार्पिता ।
व्यसनोपहतः सूनुस्तप्ताश्चेतसि सूचयः ॥ २४ ॥

दत्वा श्रियं जलनिधिः पुरुषोत्तमाय
ज्ञात्वाथ वामनतरं बलियाच्ञया तम् ।
अद्यापि सत्त्ववडवानलरूपशोक-
सोच्छ्वास एव न विमुञ्चति तीव्रतापम् ॥ २५ ॥

तस्माद्वित्तं समन्विष्य ज्ञात्वा तद्विभवोन्नतिम् ।
दास्यामः सत्कुले कन्यां धनाधीना हि सद्गुणाः ॥ २६ ॥

ཞེས་པ་བུ་མོའི་ཕ་དང་དེའི། བུ་ནོམས་ཀྱིས་ཀྱང་བརྗོད་ཐོས་ནས།
དེ་བཞིན་ཞེས་སྨྲས་གཉིས་སྐྱེས་ནི། གཞོན་ནུའི་ཕ་ཡི་གན་དུ་སོང་། 27

གསེར་གྱི་མཛེས་མ་ལས་ལྷག་པའི། བུ་མོ་ཐོབ་ཅེས་དེ་ཡི་ཚིག།
ཏྲི་གྲི་དྷ་ཡི་རྟོག་པ་ཡིས། ཐོས་ནས་ཀུན་དགའ་རྒྱས་པར་གྱུར། 28

བུ་མོ་ཚངས་སྤྱོད་དོན་གཉེར་མ། ཐོས་ནས་ཕི་སྣ་ལ་སྐྱེས་ནི།
སྨོང་མོ་བ་ཡི་ཚས་ཀྱིས་དེའི། ཁྱིམ་དུ་རང་ཉིད་དལ་གྱིས་སོང་། 29

མགྲོན་དང་བཀུར་སྟི་ཐོབ་གྱུར་པ། མཁས་པ་དེས་དེར་དེ་ལ་དྲིས།
ཚངས་སྤྱོད་དོན་དུ་གཉེར་ཞེས་ནས། ར་བ་རྫོགས་པས་རབ་སྨྲས་པ། 30

དགེ་བ་ཚངས་སྤྱོད་དོན་གཉེར་བའི། ཕི་སྣ་ལ་སྐྱེས་བྲམ་ཟེ་བདག།
གང་གི་ཆེད་དུ་བྲམ་ཟེ་དེས། ཁྱོད་ནི་འབད་པས་བསྐྱངས་པའོ། 31

ཁྱིམ་ཐབ་ལས་ནི་ཕྱིར་ཕྱོགས་བདག། ཕ་ཡིས་ཞེན་དུ་དོན་དུ་གཉེར།
བཟང་མོ་ཁྱོད་ཀྱང་འདི་ལྟ་བུར། མཚུངས་པར་དགའ་བས་ཡང་དག་འགྲོགས། 32

ཞེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། རབ་དགའ་དེ་ཡིས་དེ་ལ་སྨྲས།
ཞི་ཞིང་དུལ་བས་ཁྱིམ་ཐབས་འདི། སུ་ཅག་ལ་ནི་འགལ་བ་མེད། 33

དེ་ནས་ཡང་དག་འོས་པ་ཐོབ། རབ་དགའ་སྤྲོ་བ་གྲོས་པ་དེ།
རང་གི་ཁྱིམ་དུ་སོང་ནས་ནི། ཕ་ཡི་ཚིག་དག་ལ་ཡིས་བླང་། 34

इति कन्यापितुः श्रुत्वा तत्पुत्रीणाञ्च भाषितम्।
तथेत्युक्त्वा द्विजः प्रायात् कुमारजनकान्तिकम्॥ २७॥

सुवर्णवर्णलावण्या प्राप्ता कन्येति तद्वचः।
न्यग्रोधकल्पः श्रुत्वैव बभूवानन्दनिर्भरः॥ २८॥

ब्रह्मचर्य्यैषिणीं श्रुत्वा कन्यकां पिप्पलायनः।
स्वयमेवार्थिवेशेन प्रययौ तद्गृहं शनैः॥ २९॥

सम्प्राप्तातिथिसत्कारः स दृष्ट्वा तत्र तां कृती।
ब्रह्मचर्य्यार्थिनीं ज्ञात्वा प्राह पूर्णमनोरथः॥ ३०॥

कल्याणि ब्रह्मचर्य्यार्थी विप्रोऽहं पिप्पलायनः।
यत्कृते तेन विप्रेण त्वं प्रयत्नेन याचिता॥ ३१॥

अहं विवाहविमुखः पित्रा चात्यर्थमर्थितः।
त्वमप्येवम्विधा भद्रे दिष्ट्या तुल्यः समागमः॥ ३२॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टा तमुवाच सा।
आवयोरविरुद्धोऽयं विवाहः शमसंयमात्॥ ३३॥

ततः समुचितावाप्तप्रहर्षोत्साहपूरितः।
निजं गत्वा स भवनं पितुर्वाक्यममन्यत॥ ३४॥

མཐའ་ཡས་ནོར་ནི་གྲུས་པ་དེ། རྣམ་པར་བརྟགས་ནས་སེར་སྐྱས་ཀྱང་།
རིན་ཆེན་མཆོག་གིས་བསྐྲུན་པ་ཡི། བུ་མོ་དེ་ལ་རབ་ཏུ་ཕྱིན། 35

འཁོར་པ་རིན་ཐང་ཆེ་བ་ཡིས། དེ་དག་ཁྲིམ་ཐབ་སྐྲ་བར་ཞུགས།
ཚངས་པར་སྤྱོད་པ་མ་ཉམས་ཤིང་། རྣམ་འགྱུར་མེད་པར་འགྲོགས་པར་གྱུར། 36

དུལ་བའི་ངང་ཚུལ་དེ་དག་གི། གཟུགས་དང་ཡང་ཚེ་གྲུས་པའི་ཚོ།
ཡིད་ལ་བྲུང་བའི་བཀའ་བཅག་པས། འཁོར་པ་དམན་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 37

དེ་གཉིས་རིག་པ་བསྐྱང་བའི་སྐད། རེས་ཀྱི་གཅིག་ནི་གཉིད་ལོག་ཅིང་།
གཅིག་ནི་ལངས་ནས་མེལ་ཚེ་བྱེད། ཅེས་པ་ཉལ་བའི་ནམ་གཞག་བྱས། 38

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་མལ་སྟན་མཐར། དེ་ཡི་མིག་ནི་གཉིད་ཀྱིས་གྲུས།
ཐབས་ཚོ་པི་སྤྲ་ལ་སྐྱེས་ཀྱིས། སྤྲུལ་ནི་ནག་པོ་མཐོང་བར་གྱུར། 39

དེ་ནས་དེ་ལག་འཁྲི་ཤིང་ནི། ལོགས་སུ་འཕྲུང་བ་བརྩེ་ལྡན་དེས།
ཧོ་ཡབ་མཐའ་དང་གོས་དག་གིས། བསྐུས་ནས་འཛིགས་པ་དེ་ལས་བསྐྱངས། 40

འཕྲལ་ལ་ལག་པ་བསྐྱོད་པ་ཡིས། སྐྲག་པའི་རི་དགས་མིག་ཅན་མ།
ཉམ་འདར་ཞིང་དོ་ཤལ་ནི། གཡོ་ལྡན་མ་དེས་ཁྲོ་ལ་སྐྲས། 41

ཇོ་ཡི་སྲས་པོ་ཛེ་ལྟར་ན། ངེས་པར་དམ་ཚིག་བརྗིད་གྱུར་ཅིང་།
བདེན་པར་སྨྲ་བ་ཁྱོད་ཀྱི་ཐུགས། གང་འདི་རྣམ་པར་བསྣད་པ་སྐྱེས། 42

कपिलोऽपि समन्विष्य तमनल्पधनोदयम्।
प्रददौ तनयां तस्मै वररत्नैरलङ्कृताम्॥ ३५॥

तयोर्महार्हविभवैर्वृत्ते परिणयोत्सवे।
अलुप्तब्रह्मचर्य्ययोरभून्निर्विकारः समागमः॥ ३६॥

रूपयौवनसम्भारे तयोः संयमशीलयोः।
बभूव विभवम्लानिराज्ञाभङ्गान्मनोभुवः॥ ३७॥

पर्य्यायेणैकनिद्रायां जागर्त्त्येकः समुत्थितः।
इति तौ स्पर्शरक्षार्थं चक्रतुः शयनस्थितिम्॥ ३८॥

कदाचिदथ शय्यान्ते कालव्यालं व्यलोकयत्।
निद्रामुद्रितनेत्रायां भद्रायां पिप्पलायनः॥ ३९॥

ततः स तद्भयात्तस्या दोर्लतां पार्श्वलम्बिनीम्।
सदयश्चामरान्तेन ररक्षोत्क्षिप्य वाससा॥ ४०॥

सहसा बाहुचलनत्रस्ता हरिणलोचना।
सा सकम्पकुचालोलहारा पतिमभाषत॥ ४१॥

आर्य्यपुत्र कथं नाम समयः सत्यवादिनः।
विस्मृतस्तव संजातो यदयं चित्तविप्लवः॥ ४२॥

ཁྱོད་ཀྱི་ནོམ་འགྱུར་ངོ་ཚའི་རྒྱུན། ཤིན་ཏུ་ཆེ་ལྡན་འདི་ནི་ཅི།
ས་འཛིན་དག་ཀྱང་བརྟན་པའི་ལུགས། གཏོང་གི་དམ་པ་ཡོངས་མ་ཡིན། 43

ཞེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། འཛུམ་ལྡན་དེ་ཡིས་དེ་ལ་སྨྲས།
མི་ལམ་ན་ཡང་བདག་གི་ཡིད། བཟང་མོ་ངེས་པར་བསླད་པ་མེད། 44

འོན་ཀྱང་འདིར་ནི་སྦྲུལ་ནག་འདི། འཇིགས་སུ་རུངས་པ་ཡོངས་སུ་རྒྱུ།
ཁྱོད་ཀྱི་ལག་པ་མལ་སྟན་ལས། འཕྱུང་བ་འཇིགས་ནས་བདག་གིས་བསྐྱུངས། 45

ཁྱོ་ཡི་ཚིག་འདི་ཐོས་གྱུར་ནས། དོགས་བཅང་དགའ་བ་རེས་སྨྲས་པ།
བདེན་པའི་ངང་ཚུལ་ཁྱོད་ཀྱི་བློ། འདོད་པས་དྲི་མར་བྱས་པ་མེད། 46

གདུག་པའི་སྦྲུལ་ནི་ཁྱིགས་པ་སྟེ། ཆགས་པའི་ལྷོ་འཕྲེས་མཆོག་ཏུ་འཇིགས།
སྦྲུལ་གྱིས་ལུས་གཅིག་འཇོམས་པ་སྟེ། འདོད་པས་ལུས་ནི་བརྒྱ་མཐར་བྱེད། 47

དེ་སྐད་ནོམ་འགྱུར་འདི་དག་བསྐྱངས། ཞེས་སྨྲས་དེ་ནི་ཆགས་དང་བྲལ།
དེ་ཡི་ཤིན་ཏུ་དུལ་བ་ཡང་། པི་སྦ་ལ་སྐྱེས་དག་གིས་བསྔགས། 48

དུས་ཀྱི་ནྱ་གྲོ་དྷ་ཡི་རྟོག། ཚུང་མར་བཅས་པ་མཐོ་རིས་སོང་།
རབ་མང་ཁྱིམ་གྱི་ཚོགས་དག་གིས། བསམ་པའི་ཁུར་ནི་དེ་ཡིས་བླངས། 49

ནམ་ཞིག་རིལ་མར་བདུང་བའི་སྐད། ཁྱུ་མཆོག་རྣམས་ཀྱི་རིལ་འཆོར་ལ།
བཟང་མོས་ཡོངས་སུ་བསྟན་པ་ཡིས། འཁོར་རྣམས་དག་ནི་ཡོངས་སུ་བསྐོས། 50

लज्जावहा विकारस्य केयमापतिता तव।
त्यजन्ति धृतिमर्य्यादां भूधरा न तु साधवः ॥ ४३ ॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा तामुवाच स सस्मितः।
भद्रे नास्त्येव मनसः स्वप्नेऽपि मम विप्लवः ॥ ४४ ॥

किन्त्वेष कृष्णसर्पोऽत्र भीषणः परिवर्त्तते।
बाहुस्ते शयनालम्बी भीत्या संरक्षितो मया ॥ ४५ ॥

एतत् पत्युर्वचः श्रुत्वा त्यक्तशङ्का जगाद सा।
दिष्ट्या ते सत्यशीलस्य न काममलिना मतिः ॥ ४६ ॥

सर्पः साधुर्वराकोऽयं भयं रागोरगात्परम्।
एकां हन्ति तनुं सर्पः कामः कायशतान्तकृत् ॥ ४७ ॥

रक्ष्यस्तस्माद्विकारोऽयमित्युक्ता विरराम सा।
तीव्रञ्च प्रशशंसास्याः संयमं पिप्पलायनः ॥ ४८ ॥

न्यग्रोधकल्पे कालेन सभार्य्ये त्रिदिवं गते।
प्रभूतगृहसंभारचिन्ताभारमुवाह सः ॥ ४९ ॥

कदाचित्तैलपानाय वृषाणान्तिलपीड़ने।
तेन भद्रा समादिष्टा न्ययुंक्त परिचारिकाः ॥ ५० ॥

དཔལ་ནི་འཆོར་བ་དེ་དག་གིས། དཔལ་མར་བྱུམ་པར་སྒྲོག་ཆགས་ཚོགས།
ལྷུང་ཞིང་ཉམས་པ་མཐོང་གྱུར་ནས། སྙིང་རྗེ་བཅས་པས་ཕན་རྒྱུན་སྨྲས། 51

སྒྲོག་ཆགས་མང་པོ་ཡོངས་བརྟག་པས། ཀྱི་མ་བདག་ཀྱང་སྡིག་པ་ཅན།
ཡང་ན་གང་གི་ཚིག་གིས་བྱས། སྡིག་པ་འདི་ཀུན་བཟང་མོ་ལའོ། 52

བཟང་མོ་ཁྱིམ་ནང་འཁོད་པ་ཡིས། དེ་ཐོས་ཆགས་བྲལ་ཉིད་དུ་གྱུར།
དེ་དུས་ཉིད་ན་བདག་པོ་ནི། ནང་ཞུགས་དབེན་པར་དེ་ལ་སྨྲས། 53

ཞིང་ལས་ཉོན་མོངས་ཀྱིས་གཟིར་བར། ཁྱོ་མཆོག་སྒྲོག་ཆགས་འཚོ་བ་སྟོན།
བཟང་མོ་བདག་གི་ཁྱིམ་གྱི་ཁུར། དགག་ཏུ་ངོ་ཡོས་འཛིན་ཡོངས་མི་བཟོད། 54

བདེ་བའི་ཕུན་ཚོགས་འདི་དག་རྣམས། མཐུག་ཏུ་རོ་བྲལ་སྙིང་པོ་མེད།
ཀྱང་ན་འདམ་བུའི་འདབ་མ་བཞིན། གདུང་བ་དག་ནི་སྐྱེད་པར་བྱེད། 55

ཁྱིམ་པ་རྣམས་ནི་སྡིག་པའི་འདམ། ཉེང་མོངས་ཉ་ལྦུབས་དྲ་བ་ཅན།
ཁྱིམ་ཉིད་དུ་ནི་ཉམས་འགྱུར་དེ། རླུངས་སུ་གླང་ནི་གོན་པོ་བཞིན། 56

དེ་སྐད་ཁྱིམ་གྱི་རྩོལ་བ་འདི། ཕྱུ་ཅག་གིས་ནི་གཏང་བར་འོས།
ཞེས་སྨྲས་ཆུང་མས་ཁས་བླངས་པས། ཞི་བ་ལ་ནི་དེས་པར་བྱས། 57

ཁྱིམ་དང་ཡོ་བྱད་བཅས་པ་ཡི། ནོར་རྣམས་སློང་ལ་དེས་བྱིན་ནས།
རེ་བའི་ཞགས་པས་འཆིང་བ་ཀུན། རྣམ་པར་གྲོལ་ཏེ་ངེས་པར་བྱུང་། 58

ताः पीड़िततिलास्तैलकुम्भेषु कृमिसञ्चयम्।
च्युतं विलोक्य सीदन्तमूचुः सकरुणा मिथः ॥ ५१ ॥

अहो नु पापमस्माकं बहुप्राणिपरिक्षयात्।
भद्रायाः सर्व्वमेतद्वा पातकं यद्गिरा कृतम् ॥ ५२ ॥

तच्छ्रुत्वान्तर्गृहगता भद्रा वैराग्यमाययौ।
तस्मिन्नेव क्षणे भर्त्ता प्रविश्योवाच तां रहः ॥ ५३ ॥

भद्रे गृहमहाभारश्रान्तोऽहं न सहे सदा।
कृषिक्लेशार्दितवृषप्राणहिंसानुशासनम् ॥ ५४ ॥

इमाः पर्य्यन्तविरसा निःसाराः सुखसम्पदः।
आस्वाद्यमानाः कुर्व्वन्ति नड़शाखा इव व्यथाम् ॥ ५५ ॥

क्लेशशैवालजालेषु पापपङ्केषु वेश्मिनः।
अवसन्ना गृहेष्वेव पङ्केष्विव जरद्गवाः ॥ ५६ ॥

तस्माद्गृहसमारम्भस्त्यागयोग्योऽयमावयोः।
इत्युक्तानुमतः पत्न्या शान्त्यै निश्चयमादधे ॥ ५७ ॥

स दत्त्वा धनमर्थिभ्यो गृहञ्च सपरिच्छदम्।
निश्चक्राम समुन्मुक्तसर्व्वाशापाशबन्धनः ॥ ५८ ॥

དེ་ནས་འོད་སྲུངས་རིགས་ཉིད་ཕྱིར། འོད་སྲུངས་ཆེན་པོ་ཉིད་གྱུར་ཏེ།
དེ་དུས་ཡང་དག་རྫོགས་སངས་རྒྱས། འོད་སྲུངས་དྲུང་དུ་དེ་སོང་གྱུར། 59

མཆོད་རྟེན་བྲུ་མང་ཞེས་པ་ཡི། ཙ་བར་གནས་པ་དེ་ཙམ་ཕྱིན།
འདུལ་བའི་ཆོས་ནི་རིས་ཕྱིན་པས། དག་པའི་བྱང་ཆུབ་ཐོབ་པར་གྱུར། 60

བཟང་མོ་ཡིས་ཀྱང་ཆགས་བྲལ་གྱི། བསྟན་པའི་ལམ་གྱི་འདུལ་བ་ཐོབ།
སྔོན་གྱི་བསོད་ནམས་ཡོངས་སྨིན་པས། དགེ་བ་དྲི་མ་མེད་པ་བསྟེན། 61

འོད་སྲུངས་ཆེན་པོ་ལྷ་རྣམས་ཀྱིས། ཕྱག་འོས་ཉིད་ཐོབ་མཐོང་ནས་དེའི།
བསོད་ནམས་དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་དྲིས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དེར་བཀའ་སྩལ། 62

ཟས་དང་འབྲུ་རྣམས་མ་ལུས་རབ་ཏུ་བའི་དུས།
བསོད་སྙོམས་རྣམ་པར་ལོག་ཅིང་ཤིན་ཏུ་མི་བཟད་ཚེ།
ནོར་ཆུང་སྐྱེས་བུ་ཡིས་ནི་ཀཱ་ཤི་གྲོང་ཁྱེར་དུ།
དགར་ཤི་ཁྲཱི་རང་གི་ཟས་ཀྱིས་ལེགས་པར་མཆོད། 63

མི་ཡི་བདག་པོ་ཀྲི་ཀིས་བྱས་པའི་མཆོད་རྟེན་ནི།
རིན་ཅེན་གྱིས་སྤྲས་མཆོག་ཏུ་མཛེས་ལ་དེ་ཡི་བུ།
བསོད་ནམས་ངང་ཚུལ་གྱིས་ཀྱང་དགེ་བ་ཆེན་པོའི་སྐད།
ནོར་བུ་གསེར་གྱི་རྣམ་པར་བཀྲ་བའི་གདུགས་དག་བཀོད། 64

सोऽथ काश्यपगोत्रत्वान्महाकाश्यपताङ्कितः ।
तत्कालसम्यक्संबुद्धं काश्यपं समुपाययौ ॥ ५९ ॥

बहुपुत्राख्यचैत्यस्य मूले स्थितमुपेत्य तम् ।
तद्दत्तधर्म्मविनयः शुद्धां बोधिमवाप्तवान् ॥ ६० ॥

भद्रापि लब्धविनया वैराग्याविष्टवर्त्मना ।
प्राक्पुण्यपरिणामेन लेभे कुशलमुज्ज्वलम् ॥ ६१ ॥

महाकाश्यपमालोक्य सम्प्राप्तं सुरवन्द्यताम् ।
तत्पुण्यं भिक्षुभिः पृष्टस्तानुवाच तथागतः ॥ ६२ ॥

प्रविरतनिखिलान्नशस्यकाले
विषमतरे विनिवृत्तपिण्डपात्रे ।
कृशधनपुरुषेण काशिपूर्य्यां
तगरशिखी महितः स्वभोजनेन ॥ ६३ ॥

कृकिनरपतिना कृतेऽपि चैत्ये
वररुचिरत्नचिते तदात्मजश्च ।
मणिकनकविचित्रमातपत्रं
व्यधित महत्कुशलाय पुण्यशीलः ॥ ६४ ॥

སྐྱེ་བ་གཉིས་སུ་ཉེ་བར་བསགས་པའི་བསོད་ནམས་ཆེར་གྱིས་པས།
ཉེ་བའི་གནས་ཀྱི་འོད་སྲུངས་ཆེན་པོ་ཉིད་ནི་འདི་ཡིས་ཐོབ།
གསེར་གྱི་ད་ལ་བཞིན་དུ་མཐོ་བའི་མཐུ་ནི་ཐོབ་གྱུར་ནས།
དགེ་བའི་ཚ་བའི་འབྲས་བུ་དགྲ་བཅོམ་གནས་ནི་ནམ་པར་འཛིན། 65

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་འོད་སྲུངས་ཆེན་པོའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་ཙ་གསུམ་པའོ།

जन्मद्वयोपचितपुण्यमहोदयेन
सोऽयं महोपपदकाश्यपतामवाप।
लब्धोन्नतिः कनकताल[1] इव प्रभाव
महत्पदं कुशलमूलफलं बिभर्त्ति॥ ६५॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां महाकाश्यपावदानं नाम त्रिषष्टितमः पल्लवः॥

---

१ All the MSS. तान।

CHAPTER LXIV.

ནོར་བཟང་གི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

ཡལ་འདབ་མདོན་པར་གསར་པ་ལྷ་སྲུར་མཆེན་གྱུར་ཀྱང་།
སྲ་ཞིང་བརྟན་པ་དག་ནི་རྡོ་རྗེ་ལྟར་གྱུར་པ།
ཆེན་པོ་རྣམས་ཀྱི་ཡིད་ཀྱི་ནོར་བུ་དྲི་མ་དག།
མེད་པ་ལ་ཡང་ཆག་པ་དག་ནི་འཐོབ་བ་མིན། 1

ཀུན་ལ་རྗེས་སུ་བརྩེ་ལྡན་ཡབ་ཀྱིས་ཤུ་ཀྲ་ཡི།
གནས་རྣམས་ལྷ་བ་ཉིད་ལ་མཆོག་ཏུ་གསོལ་བཏབ་པ།
ཀུན་དགའ་བདུད་རྩི་བཅུད་ཀྱི་ཟླ་བ་སྟོན་པ་ནི།
གང་དག་ཚེ་ན་རང་གི་རྒྱལ་སར་ཞུགས་གྱུར་པ། 2

དེ་དེའི་ཚེ་ན་བ་གམ་དུ་སོང་རི་དགས་མིག།
ནུ་བའི་རྒྱན་གྱིས་མིག་ནི་རབ་ཏུ་མཛེས་བྱེད་པ།
གཟུགས་འཛིན་མས་ནི་མཛེས་པ་དག་གི་ཕྱོགས་རྣམས་སུ།
ཡ་མཚན་རབ་ཏུ་འབྲི་བའི་བདག་པོ་དེ་མཐོང་ནས། 3

चतुःषष्टितमः पल्लवः ।

सुधनकिन्नर्य्यवदानम् ।

अभिनवकिशलयकोमल-
मनसामपि कुलिशकठिनधैर्य्याणाम् ।
महतां मणिविमलाना-
मपि भवति न रागसङ्क्रान्तिः ॥ १ ॥

शाक्यालये दर्शनमेव पित्रा
सर्व्वानुकम्पी भृशमर्थ्यमानः ।
यदा यदानन्दसुधारसेन्दु-
र्विवेश शास्ता निजराजधानीम् ॥ २ ॥

तदा तदा हर्म्यगता मृगाक्षी
कर्णावतंसीकृतनेत्रकान्तिः ।
कान्त्या दिशां विस्मयमुल्लिखन्तं
यशोधरा तं दयितं विलोक्य ॥ ३ ॥

དེ་དང་འགྲོགས་དང་འཁྲུད་པ་དག་གི་རི་བྲལ་བའི།
དུག་གི་བཀྱིལ་བ་བཞིན་དུ་མ་ལུས་ཕྱོགས་འཁོར་ཞིང་།
གྲོགས་པོ་བཞིན་དུ་རློག་པར་བྱེད་བའི་བདེན་པ་ནི།
དོར་ནས་ཁང་བཟང་དག་ལས་ལུས་ནི་རབ་ཏུ་འཕངས། 4

དགའ་བ་ཡལ་འདབ་ལྷར་མཆེན་ལུས་དང་ལྡན་པ་དེས།
གང་གང་ཚེ་ན་ལུས་ནི་རབ་ཏུ་འཕངས་གྱུར་པ།
དེ་དེ་ཚེ་ན་ཡིད་སྲུབས་ཀྱིས་ནི་སྨོངས་པ་དེ།
བརྩེ་བས་བརྒྱན་པའི་སྤྱན་ལྡན་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བསྐྱངས། 5

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་ནགས་ཀྱི་མཐར་ནི་བཅོམ་ལྡན་ལ།
དེ་ཡི་དགེ་མཚན་དག་ལས་དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་དྲིས།
ཚེམས་ཀྱི་འོད་ཟེར་ཟླ་བའི་འོད་རྣམས་དག་གིས་ནི།
མཆུ་ཡི་དམར་པ་འགེབས་པར་མཛད་པ་བཞིན་དུ་གསུངས། 6

བདག་དང་བྲལ་བས་རྟག་ཏུ་གསེར་བར་གྱུར་པ་ཡི།
གྲགས་འཛིན་མ་ནི་གང་ཞིག་གཟུ་ལུམས་འདི་དག་བྱེད།
བདེན་པ་འཕྲོག་ཅིང་སྨོངས་པ་རྣམ་པར་སྤྲེར་བ་འདི།
ཆགས་པའི་རྣམ་འཕྲུལ་ལྡན་པ་རྣམས་ཀྱི་རང་བཞིན་ཉིད། 7

तत्सङ्गमालिङ्गनयोर्निराशा
भ्रान्ताखिलाशा विषमूर्च्छितेव ।
धृतिं वयस्यामिव वारयन्तीं
निरस्य सौधात्तनुमुत्ससर्ज्ज ॥ ४ ॥

यदा यदा पल्लवपेशलाङ्गी
देहं समुत्स्रष्टवती सती सा ।
तदा तदा मन्मथमोहितां तां
दयार्द्रचक्षुर्भगवान् ररक्ष ॥ ५ ॥

ततः कदाचिद्भगवान् वनान्ते
तत्कौतुकाङ्क्षिभिक्षुगणेन पृष्टः ।
जगाद दन्तद्युतिचन्द्रिकाभि-
र्निवारयन् रागमिवाधरस्य ॥ ६ ॥

यशोधरा मद्विरहेण नित्यं
करोति यत् साहसमेतदार्त्ता ।
हरन्ति धैर्य्यं वितरन्ति मोह-
मेष स्वभावः स्मरविभ्रमाणाम् ॥ ७ ॥

སྔོན་གྱི་སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་དེ་དང་བྲལ་བ་ཡིས།
འདོད་པས་ཉམ་པར་སྨོངས་པར་བྱས་ཏེ་བདག་གིས་ཀྱང་།
ཀུན་ཏུ་ཡོངས་སུ་གདུང་བདག་གི་གྱུར་གྱུར་པ།
རབ་མང་གདུང་བའི་ཉོན་མོངས་དག་ནི་ཉམས་སུ་སྤྱོད། 8

གྲོང་མཆོག་ཏ་ཀྵི་ན་ཡི་གྲོང་། འཆི་མེད་ཡོན་ཏན་ཐུལ་བར་སྟོན།
ཡོན་ཏན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་གཏེར། རྒྱལ་པོ་ནོར་ཞེས་བྱ་བ་བྱུང་། 9

ལག་བ་ཡིས་ནི་ས་ལ་འཁྱུད། དབྱངས་ཅན་དག་ནི་མགྲིན་པར་བྱས།
ངག་གི་དཔལ་ནི་རབ་ཏུ་བསྟར། གྲགས་པ་ཁོ་ན་རབ་ཏུ་བསྒྲད། 10

དེ་ཡི་བཙུན་མོ་མཛེས་མ་ལ། བུ་ནི་ནོར་བཟང་ཞེས་བྱ་བ།
གཏེར་བརྒྱ་དང་ནི་གྲགས་པ་དང་། ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་བྱུང་བར་གྱུར། 11

རིག་གནས་ཀུན་གྱི་ཀ་སྨུད་ཅན། རྟག་ཏུ་ཉམ་གྱིས་བྱེད་པ་ཆགས།
དྲི་མེད་མཛེས་པ་སྐྲ་ཚལ་ཅན། གང་བའི་ཟླ་བ་ལྟ་བུར་མཛེས། 12

ས་བདག་དེ་དང་ས་གཞི་ན། བར་མེད་ས་བདག་བྱུང་གྱུར་པ།
ཁེངས་ལྡན་དབང་ཆེན་སྡེ་ཞེས་པ། ཀྱི་ཆེ་ཉམ་པར་གནོན་པར་གྲགས། 13

དུས་མིན་དུས་སུ་བརྟག་བྱ་ཞིང་། ཀུན་གྱི་བདོག་ཀུན་འཕྲོག་བྱེད་པ།
བཟོད་དཀའི་དཔུ་དང་ལྡན་པ་དེས། གཟིར་བའི་སྐྱེ་གུས་སྐྱ་ངན་བྱས། 14

मयापि तस्या विरहेण पूर्व्वं
जन्मान्तरे मारविमोहितेन।
संसक्तसन्तापनिमित्तभूतः
खेदः प्रभूतव्यसनोऽनुभूतः[1] ॥ ८ ॥

पुरा जितामरपुरे सत्पुरे हस्तिनापुरे।
राजा धनाभिधानोऽभूत् निधानं गुणसम्पदाम् ॥ ९ ॥

भुजेनालिङ्गिता भूमिः कृता कण्ठे सरस्वती।
लक्ष्मीः प्रसाधिता येन कीर्त्तिरेव प्रवासिता ॥ १० ॥

रामायां तस्य जायायां तनयः सुधनाभिधः।
अभवत् सहसञ्जातनिधानशतविश्रुतः ॥ ११ ॥

सर्व्वविद्याकुमुदिनीविकाशरसिकः सदा।
कलावान्निर्म्मलरुचिर्यः पूर्णेन्दुरिवाबभौ ॥ १२ ॥

बभूव तस्य भूभर्त्तुर्भूपतिर्भूम्यनन्तरः।
मानी महेन्द्रसेनाख्यः प्रख्यातपृथुविक्रमः ॥ १३ ॥

तेन दुःसहदण्डेन सर्व्वसर्व्वस्वहारिणा।
अकालकालकल्पेन पीड़िताः शुशुचुः प्रजाः ॥ १४ ॥

---

१ W_1 has the following additional S'loka:—

स्वयम्भ्वर्च्चनमाहात्म्यमथ वक्ष्यामि हे जिनाः।
[illegible]

ཆོས་མིན་ལ་ནི་ཞུགས་པ་དེའི། གྲོང་ནི་ལེགས་བྱས་སྤྲོ་བ་དག།
ལོག་ཅིང་གདུང་བ་དྲག་པོ་ཡིས། གདུང་བར་སྨིན་གྱི་ཆར་མ་ཕབ། 15

ས་སྐྱོང་རྫིས་སུ་མི་མཐུན་པ། དེར་ནི་སྲུ་གེའི་ཉེན་འཚེ་བྱུང་།
སྡུག་བསྔལ་ཅན་རྣམས་ཁོ་ན་ལ། སྡུག་བསྔལ་གྱིས་པར་གྱུར་པ་ཡིན། 16

དེ་ནས་ཉོན་མོངས་ཀྱིས་ཁྱད་གཟིར། བདག་ངན་གྱིས་གདུངས་ཡིད་བྱུང་ཞིང་།
གྲོང་ནང་གནས་པ་ཐམས་ཅད་ནི། གཅིག་ཏུ་འཚོགས་ནས་རྣམ་པར་བསམས། 17

རྒྱལ་བླུན་མཚན་མོར་བྱེད་པ་ནི། གསར་པའི་དཔྱ་ཁྲེར་འབེབས་པ་ཡིས།
མཆོག་ཏུ་སྐྱོ་བའི་ཚོགས་པ་ནི། པདྨོ་ཅན་བཞིན་རྫུམ་པར་གྱུར། 18

རྟག་ཏུ་ངན་པར་ཞེན་པ་འདེས། བདེན་མེད་བློན་པོའི་གྲོས་དག་གིས།
བདག་ཅག་བཅོར་ནས་གཡོ་ཅན་དང་། བྲན་དང་གླུ་མཁན་རྣམས་དག་བསོས། 19

དེ་ལའང་ས་བདག་སྡིག་པ་ཡི། དགོད་བས་ཆར་མེད་སྡུག་བསྔལ་བ།
སྐྱེ་བོ་ཡང་དག་བརླག་བའི་དབང་། སྲུ་གེ་སྐྱེད་པར་བྱེད་པ་སྐྱེས། 20

ས་སྐྱོང་ཤིན་ཏུ་ནོ་ཞིང་འཁོར་གྱི་སྐྱེ་བོ་རྩུབ་ཅིང་སྲུ་ཅེར་སྨོངས།
བློན་པོ་རྣམས་ཀྱང་གདུག་ཅིང་དྲག་པ་གཡོ་ལྡན་གྱ་གྱུ་དག་ལ་མཁས།
ཞབས་དྲུང་གནས་དང་ཡིག་མཁན་མི་བཟད་ཁ་སྐྱོན་རབ་ཏུ་ཁྲོས་གྱུར་པ།
དམན་པ་འཇོམས་བྱེད་མ་རུང་ཚོགས་པ་འདི་དག་རྣམས་ནི་ཇི་ལྟར་བཟོད། 21

तस्याधर्म्मप्रवृत्तस्य निवृत्तसुकृतोत्सवे ।
तीव्रोपतापसन्तप्ते पुरे न ववृषुर्घनाः ॥ १५ ॥

प्रतिकूले महीपाले तत्र दुर्भिक्षविप्लवः ।
बभूव व्यसनेष्वेव भवन्ति व्यसनोदयाः ॥ १६ ॥

ततः क्लेशविशेषार्त्ताः सर्व्वे पुरनिवासिनः ।
कुपतिव्यसनोद्वेगादेकीभूता व्यचिन्तयन् ॥ १७ ॥

राज्ञा दोषाकरेणेयं जडेन जनता परम् ।
प्रत्यग्रकरपातेन नलिनीव निमीलिता ॥ १८ ॥

एष दुर्व्यसनी नित्यमसत्यामात्यसम्मतः ।
अस्मान्निपीड्य पुष्णाति विटचेटकगायनान् ॥ १९ ॥

कष्टा तत्राप्यनावृष्टिः पापशापेन भूपतेः ।
दुर्भिक्षजननी जाता जनसंक्षयसाक्षिणी ॥ २० ॥

सुतीक्ष्णः क्ष्मापालः खरमुखरमूर्खः परिजनः
कदर्थाश्चामात्याः कटुकपटकौटिल्यपटवः ।
पदस्थाः कायस्थाः विषममुखरोगाः प्रकुपिताः
कथं सोऽयं सह्यः क्षपणदलनो दारुणगणः ॥ २१ ॥

དཔལ་ལྡན་ས་ཡི་བདག་པོ་ནི། ནོར་གྱིས་ཡུལ་འཁོར་སྐྱོང་བ་ཐོས།
བདག་ཅག་དེ་གྲོང་སོང་བ་ན། མཉེས་ག་ཞིན་དེ་ཡིས་སྐྱོང་བར་འགྱུར། 22

ས་བདག་གང་གི་ཡུལ་འཁོར་ལ། བུ་བཞིན་རྟག་ཏུ་ལྟ་བྱེད་པ།
དེ་ཡི་ཡུལ་དུ་ཕ་ཡིས་ནི། ཁྱིམ་དུ་བཞིན་དུ་འཚོ་བར་བྱ། 23

དེ་ལྟར་ངེས་བསྐྱུབས་དེ་དག་རྣམས། ཧ་སྟི་ན་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་སོང་།
ལུས་ཀྱང་གནོད་བཅས་གདུང་བྱ་ན། ཡུལ་དང་གནས་ནི་སྨོས་ཅི་དགོས། 24

མི་བདག་དབང་ཆེན་སྡེ་ཡིས་ཀྱང་། རང་གྲོང་སྐྱེ་བོ་མེད་ཞེས་ནས།
འགྱོད་པ་དྲག་པོས་ཁྲོ་ལྡན་པར། བློན་པོ་ཆེན་པོ་ལ་སྨྲས་པ། 25

རྒྱལ་པོ་ནོར་གྱི་གྲོང་ཁྱེར་དུ། བདག་གི་གྲོང་གནས་སྐྱེ་བོ་རྣམས།
རབ་ཏུ་སོང་ཞེས་ཉན་སྣ་ནི། གསང་ནས་རྒྱུ་བ་དག་གིས་སྨྲས། 26

གལ་ཏེ་བདག་གི་དགྲ་གྲོང་དུ། དེ་དག་མུ་གེས་ཉེན་འགྲོ་ན།
གནམ་གྱི་ཉེར་འཚོ་ཐམས་ཅད་དུ། རེ་མོས་ཀྱིས་ནི་འབྱུང་བ་ཉིད། 27

ཡང་ན་རྒྱལ་པོའི་སྐྱོན་གྱིས་ནི། བདེ་བ་འདོད་པས་དེ་དག་སོང་།
རྒྱལ་པོ་སུ་ཡིས་གྲོང་ཁྱེར་གྱིས། སྐྱེ་བོ་ལས་དང་དཔྱ་ལས་གྲོལ། 28

ཕལ་ཆེར་ཡོངས་སུ་འདྲིས་ལ་སྡང་། རྟག་ཏུ་གསར་པ་གསར་པ་འཚོལ།
རིང་ནས་གནས་པ་ཐམས་ཅད་ནི། ཀུན་གྱི་ཡིད་དུ་འོང་བ་ཡིན། 29

धनः श्रीमान् क्षितिपतिः श्रूयते राष्ट्रवर्द्धनः।
गच्छामस्तत्पुरं सोऽस्मान् वत्सलः पालयिष्यति ॥ २२ ॥

अपत्यमिव राष्ट्रं यः सदा पश्यति भूपतिः।
विषये जीव्यते तस्य जनकस्येव वेश्मनि ॥ २३ ॥

इति निश्चयमाधाय ययुस्ते हस्तिनापुरम्।
त्याज्यः कायोऽपि सापायः किं पुनर्देशसंश्रयः ॥ २४ ॥

ज्ञात्वा महेन्द्रसेनोऽपि स्वपुरं निर्जनं नृपः।
तीव्रानुतापः सामर्षं महामात्यानभाषत ॥ २५ ॥

धनस्य धनिनो राज्ञः पुरं मत्पुरवासिनः।
प्रयाता इति नश्चारैः कथितं गूढ़चारिभिः ॥ २६ ॥

दुर्भिक्षखिन्ना यदि ते याता मम रिपोः पुरम्।
तत् सर्व्वञ्च भवन्त्येव पर्य्यायैर्देवविप्लवाः ॥ २७ ॥

अथवा राजदोषेण गतास्ते सुखवाञ्छया।
विष्टिदण्डकरोन्मुक्तः कस्य राज्ञः पुरे जनः ॥ २८ ॥

प्रायः परिचितद्वेषात् सदा नवनवैषिणः।
दूरस्थ एव सर्व्वस्य सर्व्वो भवति वल्लभः ॥ २९ ॥ ✗

---

१ विष्टि means labour without remuneration for the service of the king.

གང་གིས་གཞན་གྱི་སྐྱེ་གུ་ནི། སྐྱོངས་པ་ཆུང་མ་བཞིན་དུ་འཁྲུག།
ས་བདག་དེ་ལ་ཡོན་ཏན་ནི། བདག་ལས་ལྷག་པ་ཅི་ཞིག་ཡོད། 30

རེ་ཞིག་དེ་ཡི་གྲགས་པ་ནི། རབ་གཞིལ་ཐབས་དག་བསམས་པར་མཛོད།
གང་ཡང་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་རྒྱུ། དེ་དག་གཞོམས་པ་བསྒྲུབ་པར་མཛོད། 31

ཅེས་པ་རྒྱལ་པོའི་ཚིག་ཐོས་ནས། བློན་པོ་ཆེན་པོས་རབ་སྨྲས་པ།
ལྷ་གཅིག་གང་གི་རྒྱལ་པོ་ནི། ནོར་དང་སྐྱེ་བོ་དར་བ་ཉིན། 32

ས་བདག་དེ་ཡི་དར་བ་ནི། གཟུགས་ཅན་བསོད་ནམས་ཀྱིས་བདགས་བཞིན།
ཕྱུལ་ནགླུ་ཡི་རྒྱལ་པོ་ནི། ཆུ་མ་ཅོ་ད྄ྭ་ཞེས་པ་ཡོད། 33

དེ་ཡི་མཐུ་ཡིས་དུས་མིན་དུ། འབྲུ་ནི་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པར་འགྱུར།
ས་བདག་ཕུན་སུམ་ཚོགས་ཀུན་གྱིས། ཙོ་བ་ཞིང་ནི་ཕུན་སུམ་ཚོགས། 34

དེ་སྐད་རིག་པའི་སྟོབས་དག་གིས། ཀླུ་དེ་གལ་ཏེ་འཁྲིག་ནུས་ན།
དེ་ཚེ་དེ་ཡི་སྐྱེ་གུ་རྣམས། རང་ཉིད་ཁྱོད་ལ་བརྟེན་པར་འགྱུར། 35

དེ་སྐད་སྔགས་སྟོབས་འབར་བ་ཡིས། སྒྲུབ་པ་པོ་འགར་བཙལ་ནས་ནི།
ཀླུ་ཡི་རྒྱལ་པོ་འཁྲིག་པ་ལ། བརྩོན་པ་དག་ནི་མྱུར་དུ་མཛོད། 36

ཅེས་པ་བློན་པོའི་ཚིག་ཐོས་ནས། ས་བདག་གིས་ནི་བདེན་ཞེས་སྨྲས།
རང་ཉིད་ཡོན་ཏན་ནོར་ཉམས་པའི། མི་བསྲུན་པ་རོལ་སྐྱོན་ལ་སྦྱོར། 37

अस्मदभ्यधिकः कोऽसौ तस्य भूमिपतेर्गुणः ।
परेषां हरते येन मुग्धा जाया इव प्रजाः ॥ ३० ॥

उपायश्चिन्त्यतां तावत् तस्य दर्पप्रशान्तये ।
समृद्धिकारणं यच्च तद्विघातो विधीयताम् ॥ ३१ ॥

इति राजवचः श्रुत्वा महामात्या बभाषिरे ।
श्रूयतां देव येनासौ राजा धनजनोर्ज्जितः ॥ ३२ ॥

विषये नागराजोऽस्ति चित्रो नाम बहूदकः ।
तस्य क्षितिपतेर्मूर्त्तः पुण्यबद्ध इवोदयः ॥ ३३ ॥

अकाले शस्यनिष्पत्तिस्तत्प्रभावेण जायते ।
कृषिसम्पत्तिमूलाश्च भूभुजां सर्व्वसम्पदः ॥ ३४ ॥

तस्माद्विद्याबलान्नागः संहर्त्तुं यदि शक्यते ।
तदा यान्ति स्वयं तस्य प्रजास्त्वामेव संश्रयम् ॥ ३५ ॥

दीप्तमन्त्रबलं कञ्चित्तस्मादन्विष्य साधकम् ।
नागराजस्य हरणे क्रियतां तूर्णमुद्यमः ॥ ३६ ॥

इत्यमात्यवचः श्रुत्वा तथेत्याह महीपतिः ।
स्वगुणाधानविकलाः परदोषोद्यताः खलाः ॥ ३७ ॥

དེར་ནི་གསེར་ནི་མང་པོ་དག། ངོན་པ་རབ་ཏུ་སྤེར་བའི་སྒྲ།
བསྒྲགས་ནས་གྲོས་པ་ཚོམས་ཀྱིས་ནི། ཀླུ་དག་འཆིང་བའི་སྔགས་པ་ཐོབ། 38

གསེར་སྒྲིན་དམ་བཅས་དེ་དག་གྱིས། གསོལ་གདབ་རིག་འཛིན་ཞེས་བྱ་བ།
དེ་ནི་ཙི་ཏ་ན་བའི་སྐད། ཏཀྵི་ན་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་སོང་། 39

དེར་ནི་ནགས་ཚལ་དག་གི་མཐའ། སྐྱུམ་ལྡོང་ཀོང་འཁྱུང་ལྡན་པ་ན།
གདེངས་ཅན་བདག་པོའི་ཁང་པ་ནི། ནམ་མཁའི་འོད་ཅན་དེ་ཡིས་མཐོང་། 40

བ་ཀུ་ལ་ཡི་འཁྲིང་གཡོ་ཞིང་། ཏི་ཀ་ལ་ཡི་དཔལ་གྱུར་པ།
ནགས་ཀྱི་དཔལ་མོའི་རྒྱན་དག་གི། ནོར་བུའི་མེ་ལོང་ཉི་བ་བཞིན། 41

དྲི་མེད་ཆུ་དེ་མཐོང་གྱུར་ནས། ཆགས་པས་ཉམས་པའི་ཡིད་ཅན་གྱིས།
སྔགས་ཀྱི་བསམ་གཏན་ཆས་ཞུགས་ཏེ། བསྒྲུབ་སྐད་ཕྱོགས་ནི་བཅིང་བ་བྱས། 42

བརྟུལ་ཞུགས་རབ་དྲག་གཟི་ལྡན་དེས། ཕྱོགས་ནི་བཅིངས་པ་བསྒྲུབ་པ་ནི།
ཀླུ་བདག་གདེངས་ཀའི་ནོར་བུ་ནི། གདུང་ཞིང་མགོ་བོ་གཟིར་བར་གྱུར། 43

དེ་ནས་མ་མཐོང་ཡང་དག་ལངས། སྔགས་ནི་བསྒྲུབ་པ་དེ་མཐོང་ནས།
འདར་ཞིང་གདེངས་ཅན་བདག་པོ་ནི། བཅིངས་པས་སྐྲག་པས་རབ་བསམས་པ། 44

ཁྲི་བ་སྨྲ་ར་སྨིན་མ་སེར། ལྷ་བྱིན་སེར་སྐྱ་སྨྲོག་ལྷ་བུ།
དུས་མིན་དུས་དང་མཚུངས་པ་ཡི། གདུག་པ་འདི་ནི་ག་ལས་འོངས། 45

ततः प्रभूतकनकप्रदानपणघोषणाम्।
ज्ञात्वा ते मन्त्रिणः प्रापुर्नागबन्धनमन्त्रिणम्॥ ३८॥

स तैर्विद्याधरो नाम सुवर्णार्पणसंविदा।
प्रार्थितस्त्वरमानेतुं प्रययौ हस्तिनापुरम्॥ ३९॥

तत्र काननपर्य्यन्ते स्निग्धश्यामलपादपे।
भवनं भोगिनां भर्त्तुः स ददर्श नभःप्रभम्॥ ४०॥

वलद्वकुलमालाया विलसत्तिलकश्रियः।
वनलक्ष्या इवासन्नमण्डनामणिदर्पणम्॥ ४१॥

तद्विलोक्यामलजलं स्पृहामलिनमानसः।
मन्त्रानुध्यानसन्नद्धः सिद्ध्यै दिग्बन्धमादधे॥ ४२॥

दिग्बन्धे विहिते तेन व्रतेनात्युग्रतेजसा।
शिरोव्यथा नागपतेरभूत्तत्फणामणेः॥ ४३॥

अथाहश्यः समुत्थाय तं दृष्ट्वा मन्त्रसाधकम्।
कम्पमानः फणिपतिर्बन्धत्रासादचिन्तयत्॥ ४४॥

बभ्रुभ्रूश्मश्रुशबलस्तडित्कपिललोचनः।
अकालकालसङ्काशः कुलं हन्तुं समागतः॥ ४५॥

ང་ནི་གདུག་པའི་བདག་ཉིད་འདྲིས། ཞགས་ཀྱི་ཕྱོགས་ནི་བཅིངས་པ་བྱས།
རྗེ་སྲིད་འདྲིས་བདག་མ་བཅིངས་པ། དེ་སྲིད་རིགས་པའི་རིམ་པ་བཟློད། 46

གྲང་སྒྲོང་ཆེན་པོ་ཤིན་ཤུན་ཅན། འཇིག་ངོགས་ཉེ་བའི་མཐའ་འདིར་གནས།
བདག་ཡངས་བསྒྲུབ་པ་དམ་པ་ནི། དེས་ཀྱང་ནུས་པ་མིན་པར་ཤེས། 47

གང་འདི་དེ་ཡི་བསྟི་གནས་ན། རྟག་ཏུ་རིམ་གྲོ་ཡོངས་བསྒྲུབ་པ།
ཇོན་པ་པདྨ་ཅན་ཞེས་པས། དེ་ཡིས་བདག་ནི་བསྲུང་བར་བཟློད། 48

ཅེས་པ་ཡིད་ཀྱིས་ངེས་བྱས་ནས། ཇོན་པ་ག་ལ་བ་དེར་སོང་།
རང་གི་སྤྱོད་ཚུལ་བཤད་ནས་ནི། དེ་ལ་འཆི་བ་བསྲུང་བར་ཞུས། 49

ཀླུ་ཡི་རྒྱལ་པོས་སྒྲུབ་པ་པོ། གསང་པའི་སྐད་དུ་གསོལ་བཏབ་སྟེ།
གཞུ་དང་ལྡན་པས གནས་དེར་ཕྱིན། སྔགས་པ་དཔའ་བོ་མཐོང་བར་གྱུར། 50

གནས་སྐབས་དེར་ནི་སྒྲུབ་པ་པོ། སྔགས་པ་ཡིས་ཀྱང་སྦྱིན་སྲེག་མེས།
བཅིང་བར་འདོད་པས་ཀླུ་ཡི་ནི། རྒྱལ་པོ་རབ་ཏུ་དགག་པར་བྱས། 51

གདེངས་ཅན་བདག་པོ་སྔགས་ཀྱིས་ནི། གྲངས་ཆེ་དེ་ཡི་གནས་ཀྱི་ཆུ།
ཆུ་ཡི་ཆུ་བུར་རབ་དཀྲིགས་པས། མྱ་ངན་བྱེད་པར་བརྩོན་པ་བཞིན། 52

ལག་འགྲོའི་ཚང་མ་ཀུན་ཏུ་སྐྲག་པས་འཁྲུགས་པའི་མྱ་ངན་གྱིས།
ཤུགས་རིངས་ཤུགས་ཀྱིས་རབ་བསྒྲུབས་རབ་འབར་དབུ་བའི་ཕྲེང་བ་ཅན།
རབ་ཏུ་འདར་ཞིང་གཡོ་བའི་ཆུ་ནི་བ་རླབས་ལག་པ་ཡིས།
ཐལ་མོ་སྦྱར་བྱས་བསྲུང་བ་དོན་དུ་གཉེར་བར་བྱེད་པ་བཞིན། 53

वने सम्प्रति दिग्बन्धः कृतोऽनेन दुरात्मना ।
बध्नात्येष न यावन्मां तावद्युक्तिक्रमः क्षमः ॥ ४६ ॥

तीरोपान्ते वसत्यस्मिन् महर्षिर्वल्कलायनः ।
जाने सोऽपि न मे साधुः परित्राणे प्रगल्भते ॥ ४७ ॥

तस्याश्रमपदे योऽसौ परिचर्य्यापरः सदा ।
लुब्धकः पद्मको नाम स मे संरक्षणक्षमः ॥ ४८ ॥

इति निश्चित्य मनसा गत्वा स लुब्धकान्तिकम् ।
स्ववृत्तान्तं निवेद्यास्मै बन्धरक्षामयाचत ॥ ४९ ॥

साधकस्य वधायैव नागराजेन सोऽर्थितः ।
धन्वी तं देशमभ्येत्य मन्त्रधीरं व्यलोकयत् ॥ ५० ॥

अस्मिन्नवसरे मन्त्री स प्रकोपी हुतानलः ।
आकृष्टिं नागराजस्य विदधे बन्धनोत्सुकः ॥ ५१ ॥

मन्त्राकृष्टे फणिपतौ क्षणं तद्भवनोदकम् ।
सविषादं रुरोदेव प्रोद्यद्बुद्बुदशब्दितम् ॥ ५२ ॥

सन्त्रासविह्वलभुजङ्गवधूविषाद-
निश्वासवेगविहितोज्ज्वलफेनमालम् ।
रक्षार्थनामिव चकार तरङ्गहस्त-
सक्ताञ्जलिप्रबलकम्पविलोलमम्भः ॥ ५३ ॥

མཁའ་ལྡིང་གཟི་བྱིན་ལྡན་པ་དེས། རིག་པའི་སྟོབས་ཀྱིས་ཀླུ་བཟུང་སྟེ།
འཁྲམས་ཤིང་གྱུ་གྱུ་ལྡན་པའི་ལུས། ཆུ་ཡི་སྡོང་དུ་བཙལ་བ་ན། 54

རྫོན་པ་ཡིས་ནི་གཞུ་བཀང་སྟེ། དུག་གིས་བྱུགས་པའི་མདའ་དག་གིས།
སྨག་པས་མིག་ནི་ཉམས་གྱུར་ཅིང་། གསེར་ལ་ཆགས་པ་དེ་ལ་བསྣུན། 55

འཇིགས་པས་ལག་འགྲོ་བདང་གྱུར་ཅིང་། མེད་འཇུག་དེ་ལ་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ།
དེ་ཡི་འཇིགས་རྔང་རལ་གྲི་ཡིས། མགོ་བོ་དག་དང་བྲས་བ། 56

སྨོངས་པ་དེ་ཡིར་གི་པ་ནི། གཡེམ་མ་ཆགས་ལས་གཞན་དག་དང་།
ཉེ་བར་སྤྱོར་བ་གྲུབ་མདོ་ཀྱུང་། རང་ཉིད་བཀྲག་དོན་འབབ་ཞིག་གྱུར། 57

རྨུན་པོའི་རིག་པ་འཁོར་བ་སྟོབས། ཕ་རོལ་ཉེ་བར་གདུང་བའི་སྐད།
སྦྱོར་བ་ཉམས་ནི་འཕྲལ་ལ་ཉིད། སྲོག་དང་ལྷན་ཅིག་ཉམས་པར་གྱུར། 58

དེ་ནས་རབ་དགའ་ཡོངས་རྫོགས་པ། བྱས་ཤེས་གདེངས་ཅན་འདྲེན་པ་ཡིས།
རང་གི་ཁང་པར་རྫོན་པ་དེ། མཛའ་གཙུགས་བློ་དང་ལྡན་པས་བོས། 59

ནོར་བུའི་ཁང་པ་གཞལ་ཡས་ཁང་། རིན་ཅེན་འཁྲི་ཤིང་སྐྱེད་ཚལ་དེར།
ཅི་དྲ་ཡིས་ནི་མཆོད་བྱེད་ཅིང་། དེ་ཡི་དུས་ནི་འགའ་ཞིག་གནས། 60

དེ་ནས་ཡ་མཚན་ལྡན་པ་དེས། ནམ་ཞིག་གློག་འཕྲེང་ལྟ་བུ་ཡིས།
ཞགས་པ་དོན་ཡོད་ཅེས་བྱ་བ། ཀླུ་ཡིས་མཆོད་པར་བྱེད་པ་མཐོང་། 61

आत्ते विद्यावलात्तेन नागे गरुड़तेजसा।
सङ्कोचितविलाभोगे क्षिप्ते च जलभाजने ॥ ५४ ॥

तं हेमलुब्धं वाणेन चाससन्दिग्धलोचनम्।
विव्याध धनुराकृष्य विषदिग्धेन लुब्धकः ॥ ५५ ॥

मग्नवाणं तमभ्येत्य भूयस्त्यक्तभुजङ्गमम्।
करालकरवालेन त्विड्विलक्ष्यं चकार सः ॥ ५६ ॥

सा विद्या बन्धकी तस्य लोभादन्योपयोगिनी।
अभूत् सिद्धापि मुग्धस्य स्वविनाशाय केवलम् ॥ ५७ ॥

मुक्ताः परोपतापाय विद्याविभवशक्तयः।
सहसैव विमूढ़ानां विनश्यन्ति सहासुभिः ॥ ५८ ॥

ततः प्रहर्षसम्पूर्णः कृतज्ञः फणिनायकः।
तं निनाय स्वभवनं लुब्धकं स्नेहलुब्धकः ॥ ५९ ॥

तत्र रत्नतलोद्यानविमानमणिवेश्मसु।
अभ्यर्च्यमानश्चित्रेण कञ्चित्कालमुवास सः ॥ ६० ॥

कदाचिदथ नागेन पूज्यमानः सविस्मयः।
विद्युद्दामोपमं पाशममोघाख्यं ददर्श सः ॥ ६१ ॥

དེ་མཐོང་དེ་ཡི་ནུས་མཐུ་དག། གླུ་ཡིས་བཤད་པ་འདིས་བསྒྱུར་ནས།
རྗོན་པ་ཆགས་པའི་ཡིད་ལྡན་པས། དེ་ནི་འབབ་ནས་རབ་ཏུ་བསྐྱངས། 62

གསུམ་གྱི་སྦྱོར་བ་མི་ཕམ་ཞིང་། ལྷ་ནོམས་ཀྱང་ནི་འཆིང་བྱེད་པ།
སྲོག་ལས་ལྷག་པ་དེ་དེ་ལ། གདེངས་ཅན་དབང་པོ་དགའ་བས་བྱིན། 63

དེ་ནས་ཞགས་པ་དེ་བླངས་ནས། ཙོ་ད་ལ་ཞེས་རྗོན་པ་ནི།
གླུ་ཡི་ཁང་པ་ལས་འཐོན་ཏེ། དོན་ཐོབ་རང་གི་གནས་སུ་སོང་། 64

གླུ་ཡི་མཐུ་ཡིས་ཐོབ་པ་ཡི། ཕུན་ཚོགས་ཡུན་རིང་དེ་སྤྱད་ནས།
ཨུ་དྤལ་ཅན་ཞེས་བྱ་བ་ཡི། བུ་ལ་ཞགས་པ་བྱིན་ནས་འདས། 65

རྗོན་པ་གཞོན་ནུ་དེ་ཡིས་ཀྱང་། ཕ་ཡི་སྤྱོད་པ་སྐྱོང་བྱེད་ཅིང་།
རིགས་ཀྱི་ལུགས་ཀྱིས་ཐུབ་ལ་དེའི། རིམ་གྲོ་བྱེད་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 66

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་ཐུབ་པ་ནི། བཞུགས་པའི་མདུན་ན་གནས་པ་དེས།
ཤིན་ཏུ་ཕྲ་ཞིང་སྙན་པའི་གླུ། ནོ་བའི་བཅུད་ལེན་གྱིས་པ་ཐོས། 67

ཐུབ་པ་རི་མོ་བཀོད་པ་བཞིན། མཐོང་ནས་ཡ་མཚན་དེས་དྲིས་པ།
པདྨོ་ཁོངས་སུ་བྱུང་བ་ནི། ཡང་དག་བསྡམས་པའི་སྐྲ་མཚུངས་ཤིང་། 68

ཁ་བྱུག་དབྱངས་ལྟར་སྙན་པ་ཡི། སྒྲ་འདི་དག་ནི་གང་ལས་ཐོས།
ཞེས་པ་རྗོན་པའི་བུ་ཡིས་དྲིས། དེ་ལ་ཐུབ་པས་རབ་སྨྲས་པ། 69

तं दृष्ट्वा तत्प्रभावञ्च श्रुत्वा नागनिवेदितम् ।
यत्नात्तदर्थनाञ्चक्रे लुब्धको लुब्धमानसः ॥ ६२ ॥

अजय्यं समरोद्योगे सुराणामपि बन्धनम् ।
तं जीविताधिकं तस्मै ददौ प्रीत्या फणीश्वरः ॥ ६३ ॥

ततस्तं पाशमादाय चित्रमामन्त्र्य लुब्धकः ।
उत्तीर्य्य नागभवनाल्लब्धार्थः स्वपदं[1] ययौ ॥ ६४ ॥

नागप्रभावसम्प्राप्तां चिरं भुक्त्वा स सम्पदम् ।
पुत्रायोत्पलकाख्याय पाशं दत्त्वा व्यपद्यत ॥ ६५ ॥

पालयन् पितुराचारं सोऽपि लुब्धकुमारकः ।
मुनेस्तस्य कुलस्थित्या परिचर्य्यापरोऽभवत् ॥ ६६ ॥

ततः कदाचित् स मुनेर्विश्रान्तस्य स्थितः पुरः ।
शुश्राव काकलीगीतं कीर्णं कर्णरसायनम् ॥ ६७ ॥

गीतश्रवणनिस्पन्दनिलीनहरिणं वनम् ।
चित्रन्यस्तमिवालोक्य सोऽपृच्छद्विस्मितो मुनिम् ॥ ६८ ॥

कमलाबन्धसंरुद्धमधुपध्वनिसोदरः ।
कुतोऽयं कोकिलालापललितः श्रूयते स्वनः ॥ ६९ ॥

[1] W₁ स्वपुरं ।

མི་འམ་ཅི་ཡི་བུ་མོ་ནམས། སྨན་པར་བརྗོད་པ་འདི་དག་ལེན།
མི་འམ་ཅི་བདག་ལྡོན་པ་ཡི། བུ་མོ་ཡིད་འཕྲོག་མ་འདི་ནི། 70

བུ་མོ་ལྷ་བརྒྱས་ཡོངས་བསྐོར་ནས། ཀླུ་ཡི་ཁང་པ་དག་ན་རྩེ།
དེ་ཐོས་དགེ་མཚན་གྱིས་ནོན་ནས། དེ་ཡིས་སྨྲར་ཡང་ཐུབ་ལ་སྨྲས། 71

མི་འམ་ཅི་ཡི་བུ་མོ་དག། སྐྱེས་བུས་ཐོབ་པར་ནུས་སམ་ཅི།
ཐུབ་པས་དེར་སྨྲས་གང་གི་ནི། ལག་རྗེར་དོན་ཡོད་ཅེས་བྱ་བའི། 72

ཞགས་པས་སོང་སྟེ་འདོད་ལྡན་མ། མི་འམ་ཅི་མོ་བླང་བར་ནུས།
དེ་ནས་དེ་ཐོས་སྐྱོ་ལྡན་པའི། རྗོན་པས་དེ་ལ་ཕྱག་བཙལ་ནས། 73

ཞགས་པ་བཟུང་སྟེ་གདེངས་ཅན་གྱི། དབང་པོའི་ཁང་པ་དག་ཏུ་སོང་།
དེར་དེས་མི་འམ་ཅི་མོའི་ཚོགས། རྩེ་དགའ་རོལ་བས་མཚན་པ་ནི། 74

གསེར་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ནགས་ཀྱི་དཔལ་ལ། རླུང་གིས་བསྐྱོད་པ་འཛིན་པ་མཐོང་།
དེ་དག་དབུས་སུ་ཡིད་འཕྲོག་མས། ཁྲུས་བྱས་ལངས་པ་མཐོང་གྱུར་ཏེ། 75

དྲན་པའི་མིག་གསུམ་མ་དག་གི། ཞི་བྱེད་ཆུ་ཡི་ལྷ་མོ་བཞིན།
ལུས་མེད་ནམ་འཕྲུལ་རྩོམ་པ་ཡི། བ་རླབས་ཚོགས་ལྡན་ཡང་ཚོར་ནི། 76

གཞོན་ནུ་མ་ཉིད་བྱིང་བ་ཡི། རྟེན་པ་དག་ནི་བྱེད་པ་བཞིན།
ཡིད་འོང་ལྷ་ཡི་གོས་བགོས་ཤིང་། སྐེ་རགས་དག་ནི་ལེགས་པར་བཅིངས། 77

इति लुब्धकपुत्रेण पृष्टस्तं मुनिरब्रवीत् ।
गायन्ति मधुरालापमेताः किन्नरकन्यकाः ॥ ७० ॥

द्रुमस्य किन्नरपतेः कन्या कन्याशतैर्वृता ।
पञ्चभिर्नागभवने क्रीड़त्येषा मनोहरा ॥ ७१ ॥

श्रुत्वैतत् कौतुकाक्रान्तः स पुनर्मुनिमभ्यधात् ।
अपि शक्नोति पुरुषः प्राप्तुं किन्नरकन्यकाम् ॥ ७२ ॥

तमुवाच मुनिर्यस्य भवेत् पाशः कराग्रगः ।
अमोघाख्यः स शक्नोति हर्त्तुं किन्नरकामिनीम् ॥ ७३ ॥

स तदाकर्ण्य[1] सोत्साहस्तं प्रणम्याथ लुब्धकः ।
प्रययौ पाशमादाय भोगीन्द्रभवनान्तिकम् ॥ ७४ ॥

तत्र केलिविलासाङ्कं सोऽपश्यत् किन्नरीगणम् ।
बिभ्राणमनिलालोलहैमवल्लीवनश्रियम् ॥ ७५ ॥

मध्ये स्नानोत्थितां तासां स ददर्श मनोहराम् ।
स्मरस्येव त्रिनेत्राग्निनिर्व्वाणजलदेवताम् ॥ ७६ ॥

अनङ्गविभ्रमारम्भनिर्भरोर्म्मिणि यौवने ।
मज्जतः शैशवस्येव कुर्व्वाणामवलम्बनम् ॥ ७७ ॥

---

१ W2 एतदाकर्ण्य ।

རྒྱ་རྟེད་རོལ་པས་དབྱུ་བ་ཡི། འཁྲིང་བ་རབ་གསལ་ཆགས་པ་བཞིན།
མཛེས་སྡུག་རབ་ཏུ་དཀྲིགས་གྱུར་པ། དོ་ཤལ་གསར་པའི་རྒྱུན་དག་ནི། 78

ཤིན་ཏུ་ཆེ་བས་མཚན་མོའི་དཔལ། ཟླ་བ་དཀར་བ་ཁྲོགས་པ་བཞིན།
ནོ་རྒྱུན་རིན་ཆེན་འོད་ཟེར་གྱིས། ཚོགས་ཀྱི་འགྲམ་པ་དག་ལ་ནི། 79

རོལ་བའི་པ་ཏྲ་འབྲི་ཤིང་སྐུར། རྒྱ་ཡི་དག་པ་བྲི་བ་བཞིན།
དཔྲལ་བའི་རྒྱུན་དུ་གྲོགས་མོ་ཡི། སླ་སྟེའི་རི་མོ་འབྲི་བྱེད་པ། 80

བསིལ་ཟེར་དྲི་མ་ལྡན་པ་ཡིས། སྐྱིངས་པ་ཞི་བར་བྱེད་པ་བཞིན།
དེ་མཐོང་ཡ་མཚན་འབེབས་བ་ཡི། ཞགས་པས་ཡིད་ནི་དྲངས་གྱུར་པ། 81

རྫོན་པས་འཕྲུལ་ལ་ཞགས་པ་ནི། དོན་ཡོད་ཅེས་པ་ལེགས་པར་བསྔར།
དེ་ནས་ལག་ན་ཞགས་པ་དེས། མཐོང་ནས་འཕྲུལ་ལ་རབ་སྐྲག་ཅིང་། 82

གཡོ་བ་རི་དྭགས་མིག་ཅན་མ། མི་འམ་ཅི་ནོམས་མཐོ་རིས་སོང་།
དེ་ཡི་སྐྱུར་བར་ལག་པ་ཡིས། ཞགས་པ་འཕངས་པས་ཡིད་འཕྲོག་མ། 83

སྐྲག་པའི་མིག་དང་ལྡན་པ་བཟུང་། རི་དྭགས་མོ་ནི་རྫོན་པས་བཞིན།
དེ་ཡིས་དབང་མེད་ཞགས་པས་དྲངས། སྐད་ཅིག་བགྲོལ་བས་མིག་ཟུམ་ཞིང་ །84

སྡུག་བསྔལ་གནས་སྐབས་བསྙེན་པ་དེར། འདི་ཅི་ཞེས་པ་ཤེས་མ་གྱུར།
ཁྲུ་ཉམས་རི་དྭགས་མོ་བཞིན་དུ། རང་གི་སྐྱི་བོ་ལྷ་བསམ་པས། 85

मेखलाबन्धसन्नद्धदिव्याम्बरमनोरमाम् ।
जलकेलिकलासिक्तस्फुरत्फेनावलीमिव ॥ ७८ ॥

लावण्यप्रसृतेनेव प्रवाहेन महीयसा ।
हरन्तीं तारहारेण शशिशुभ्रनिशाश्रियम् ॥ ७९ ॥

कलयन्तीं जलोल्लीढां लीलापचलतां पुनः ।
कर्णाभरणरत्नांशुकर्णोत्पलकपोलयोः ॥ ८० ॥

कस्तूरीलेखया सख्या लिख्यमानललाटिकाम् ।
कलङ्ककलनाक्लैव्यं शमयन्तीं हिमत्विषः ॥ ८१ ॥

तां दृष्ट्वा विस्मयावेशपाशेनाकृष्टमानसः ।
चक्रे पाशममोघाख्यं सज्जं सपदि लुब्धकः ॥ ८२ ॥

ततः सन्त्रासतरलाः सहसा हरिणेक्षणाः ।
किन्नर्यो दिवमुत्पेतुः पाशहस्तं विलोक्य तम् ॥ ८३ ॥

लघुहस्ततया क्षिप्रा पाशञ्चकितलोचनाम् ।
मनोहरां स जग्राह हरिणीमिव लुब्धकः ॥ ८४ ॥

सा पाशविवशा तेन कृष्टा कष्टदशां श्रिता ।
किमेतदिति नाज्ञासीत् क्षणं मूर्च्छानिमीलिता ॥ ८५ ॥

ཕྱོགས་སུ་ནོམ་པར་ལྟ་བྱེད་ཅིང་། ཀུན་སྨོངས་མ་དེས་དེ་ལ་སྨྲས།
ཐོང་ཞིག་ཐོང་ཞིག་བརྟན་པར་བཅིངས། བདག་ལ་མ་རིག་ཡོངས་སུ་སྤྱངས། 86

ངེས་པར་སྲུ་ངན་གྱིས་གཟིར་ལ། གདུག་པ་ནམས་ཀྱང་བརྩེ་ལྡན་ཡིན།
ཆགས་ལས་ལྷ་ཡི་བུ་མོ་ནི། མཆོག་མིན་གནས་ལ་སྤྱོར་བ་ན། 87

འཕྲུལ་ལ་སྐྱབ་པ་པོ་ཉིད་སྲིག ། རབ་ཏུ་འབར་བའི་རིག་པ་བཞིན།
སྨོ་ལྡན་སྨོ་ཡིས་ནམ་དཔྱད་ནས། འོས་པ་དག་ལ་བདག་སྤྲུལ་ན། 88

ཁྱོད་ལ་ངེས་པར་ཆོས་དང་ནི། ནོར་གྱི་ཆགས་ཆེན་འབྱུང་བར་འགྱུར།
ཞགས་པས་བསྡམས་པར་གདུང་བ་ནི། བདག་གིས་མི་བཟོད་བཅིངས་པ་ཐོང་། 89

གང་དུ་ཁྱོད་འགྲོ་མངོན་འདོད་པ། དེར་ནི་བདག་རང་ཉིད་ཀྱིས་འགྲོ།
བཅིངས་བ་བཏང་བར་གྱུར་ཀྱང་བདག ། མཁའ་ལ་འཕུར་ནས་ཡོངས་མི་འགྲོ། 90

གང་གི་དབང་གིས་མཁའ་ལ་བདག ། འགྲོ་བའི་གཙུག་གི་རིན་ཆེན་བརྫུང་།
ཞེས་དེས་མཆི་མ་དང་བཅས་སྨྲས། སྙིང་རྗེས་བརླན་བ་ཉིད་གྱུར་དེས། 91

གཙུག་གི་ནོར་བུ་ཡང་དག་བླངས ! ཞགས་པ་བཀྲོལ་ནས་དེ་ལ་སྨྲས།
དགེ་མ་དབུགས་ནི་དབྱུང་བར་མཛོད། སྲུ་ངན་བྲ་བར་ཡོངས་མི་འོས། 92

ངེས་པར་འོས་པ་མིན་ལ་ཁྱོད། རང་གི་འདོད་པས་སྨོལ་མི་བགྱིད།
གང་གི་གྲགས་པ་བདུད་རྩི་ཡི། བོ་རླབས་ཀྱིས་ནི་ཕྱོགས་ཀུན་ཁེངས། 93

यूथभ्रष्टेव करिणी स्वजनालोकनाशया ।
निरीक्षमाणा ककुभः सा सम्भ्रान्ता तमभ्यधात् ॥ ८६ ॥

मुञ्च मुञ्च दृढ़ाक्षिप्तां मा स्प्राक्षीः परिरक्ष माम् ।
क्रूरा अपि भवन्त्येव शोकार्त्तिषु कृपालवः ॥ ८७ ॥

लोभादनुत्तमपदप्रयुक्ता दिव्यकन्यका ।
सद्यः प्रदीप्ता विद्येव निर्दहत्येव साधकम् ॥ ८८ ॥

मां विचार्य्य धिया धीमन्नुचिताय प्रयच्छतः ।
भविष्यति तवावश्यं महान् धर्म्मधनागमः ॥ ८९ ॥

पीड़ां पाशकृतामेतां न सहे मुञ्च बन्धनम् ।
स्वयं व्रजाम्यहं तत्र यत्र तेऽभिमता गतिः ॥ ९० ॥

दिवमुत्पत्य गच्छामि नत्वहं मुक्तबन्धना ।
यद्वशान्मे गतिर्व्योम्नि चूड़ारत्नं गृहाण तत् ॥ ९१ ॥

इत्युक्तः स तया सास्रं प्रयातः करुणार्द्रताम् ।
चूड़ामणिं समादाय पाशं मुक्त्वा जगाद ताम् ॥ ९२ ॥

समाश्वसिहि कल्याणि न शोकं कर्त्तुमर्हसि ।
न नामानुचिताय त्वां प्रयच्छामि निजेच्छया ॥ ९३ ॥

ཡོན་དན་རིན་ཅེན་ཆུ་གཏེར་ཆེ། དཔལ་ལྡན་རྒྱལ་པོའི་སྲས་པོ་ཡོད།
དེ་ནི་རིག་པ་ཞལ་ལ་ཆགས། སྒྲུ་ཙོལ་རྩེད་འཛིན་ནོམ་པར་བགྱིན། 94

རང་གི་རིགས་ཀྱི་ཁྱད་པར་ཅན། ལེགས་སྐྱོད་ནོར་བཟང་ཞེས་པའོ།
བདེ་དགའ་དག་གི་དཔལ་བཞིན་དུ། གཏོང་དང་ལོངས་སྤྱོད་སྐལ་བ་བཟང་། 95

ནོམ་འཕྲུལ་ས་ཡི་གྱུན་གྲུར་དེ། སྨིན་ལེགས་ཁྱོད་ལ་ཡང་དག་འོས།
གང་གི་ས་ཡི་མཚན་མོའི་བདག ལྷ་དང་དྲི་ཟ་མི་འམ་ཅི། 96

རིག་འཛིན་ནོམ་པར་རྩེན་ནོམས་ཀྱི། ཁེངས་པ་དག་ནི་ཐུང་དུར་བྱེད།
ཅེས་པ་དེ་ལ་དབུགས་ཕྱུང་ཞིང་། གཉེན་ཚོགས་བྲལ་བའི་ཡིད་འཕྲོག་མ། 97

ཀུ་ར་རི་བཞིན་ཤིན་ཏུ་ནི། སྙིང་རྗེ་རྗེ་སྐད་ཆེ་ངེ་བཏོན།
སྐབས་དེར་འབིགས་བྱེད་ངོས་ལ་ནི། ཇོན་གྱི་རྩེད་མོའི་དགེ་མཚན་ལ། 98

འཕོངས་མཁས་ནོར་བཟང་སོང་གྱུར་པ། རིམ་གྱིས་གནས་དེར་འོངས་པར་གྱུར།
དེ་ཡི་ཤིང་རྟའི་སྒྲ་ཁྱད་སྐྲས། མི་བྱའི་ཚོགས་གྱིས་གར་བྱས་ནས། 99

དུ་ཀུ་ལ་ཉིད་གཡོ་ཞིང་སྤྲོ། ནགས་ཀྱི་དཔལ་མོས་སྐད་ཅིག་ཐོབ།
དེ་ནི་ཅུལ་གྱི་རྒྱ་ཐིགས་དག འགྲམ་པར་ཆགས་པས་རབ་མཛེས་པས། 100

ནོ་གྱིན་མཐའ་ན་རབ་མཛེས་པས། སྨུ་དྲིག་འབྲས་བུ་འཕོས་པ་བཞིན།
མདུན་དུ་སོ་ཡི་འོད་ཟེར་གྱིས། ཤིང་རྟའི་རྟ་རྣིག་གིས་བསྒྲངས་པའི། 101

अस्ति राजसुतः श्रीमान् गुणरत्नमहोदधिः ।
पूरिताः ककुभः सर्व्वा येन कीर्त्त्यमृतोर्म्मिभिः ॥ ९४ ॥

स विद्याबन्धनादर्शः कलाकेलिविभूषणः ।
सुवृत्तः सुधनो नाम निजवंशविशेषकः ॥ ९५ ॥

स ते समुचितः सुभ्रु विभ्रमाभरणं भुवः ।
त्यागोपभोगसुभगः सुखोत्सव इव श्रियः ॥ ९६ ॥

सुरकिन्नरगन्धर्व्वविद्याधरविलासिनाम् ।
यः खर्व्वीकुरुते गर्व्वमुर्व्वराशर्व्वरीपतिः ॥ ९७ ॥

इति तेन कृताश्वासा बन्धुवर्गवियोगिनी ।
कुररीवातिकरुणं विललाप मनोहरा ॥ ९८ ॥

अत्रान्तरे विन्ध्यतटीं मृगयाकेलिकौतुकी ।
प्रस्थितः सुधनो धन्वी शनैस्तं देशमाययौ ॥ ९९ ॥

रथनेमिस्वनैस्तस्य प्रनृत्यच्छिखिमण्डली ।
वनलक्ष्म्याः क्षणं लेभे लोलनीलदुकूलताम् ॥ १०० ॥

स कपोलप्रणयिभिर्बभौ स्वेदोदबिन्दुभिः ।
सङ्क्रान्तैः कुण्डलप्रान्तकान्तमुक्ताफलैरिव ॥ १०१ ॥

རྡུལ་གྱི་ཚོགས་ནམས་འཕྲོག་པ་བཞིན། ཁ་ལོ་པ་ལ་དེས་སྨྲས་པ།
ཀྱེ་མ་ཡིད་ཀྱི་ཤིང་རྟས་བཞིན། ཤིང་རྟ་རླུང་ལྟར་མགྱོགས་པ་ཡིས། 102

རང་སྒོ་རིང་དུ་བཏང་ནས་ནི། ཇི་སྙེད་ས་གཞི་འདས་པར་གྱུར།
བྱང་ཆུབ་ཤིང་གི་ཡལ་འདབ་ནི། རླུང་གཞོན་གྱིས་བསྐྱོད་གཡོ་ལྡན་པ། 103

ས་འདྲིས་ཀྱུན་ནི་ལྗོང་ག་ཡིས། ལྗོང་པའི་མཛེས་པ་ཉིད་དག་འཕྲོག།
འཁྲི་ཤིང་གསར་པ་ཀྱི་རྒྱུའི་མཚོ། མེ་ཏོག་ཕྲེན་ཕྲེའི་ནུ་མ་ཀྱིས། 104

སྐྱེ་མ་རླུང་གིས་དཀྲུགས་འདི་དག། སྲིད་ལྡན་བཞིན་དུ་གླལ་བར་བྱེད།
མ་ར་ཀ་ཏ་ལྟར་ལྗོང་བའི། ཙ་སྔོན་ཚོགས་ཀྱི་སྟོད་ཀོར་ཅན། 105

མེ་ཏོག་རྡུལ་གྱིས་སྨྲས་པ་ཡི། ནགས་འཕྲེང་འདི་དག་རབ་ཏུ་མཛེས།
སྐྲག་ནས་བྲོས་པའི་རི་དྭགས་མོ། འདི་དག་མགྲིན་པ་འཁྱོག་པོ་ཡིས།
གཡོ་ཞིང་བལྟ་བས་ཨུཏྤལ་ནི། སྔོན་པོའི་ནགས་ཚལ་སྤྲོ་བ་བཞིན། 106–107

སོ་ནི་མཚན་མོར་བྱེད་པའི་ཆ་ཡི་སྒྱུ་ག་ལྟར་མཛེས་ཤིང་།
བྱམས་པ་རི་ཁྲོད་མ་བདག་མཛའ་མོའི་ནུམ་དག་དང་མཚུངས།
རྩིབས་ཀྱི་སྐྲས་བཅོམ་ནམ་པར་གཡོ་བའི་ན་བླགས་སོ་ལྡན་གྱི།
སྤྲུག་ག་འདི་དག་ཀུན་ནས་བདག་གི་ཤིང་རྟ་དག་ལ་བལྟ། 108

स्यन्दनाश्वखुरोद्भूतं दन्तदीधितिभिः पुरः ।
हरन्निव रजःपुञ्जं व्याजहार स सारथिम् ॥ १०२ ॥

अहो मनोरथेनेव रथेनानिलरंहसा ।
दूरोज्झिता स्वसैन्येन कियती लङ्घिता क्षितिः ॥ १०३ ॥

एता वातानिलोल्लासलोलपिप्पलपल्लवाः ।
हरन्ति हरितच्छायां हरिणाभरणा भुवः ॥ १०४ ॥

एता बालप्रवालोष्ठाः स्तवकस्तनबन्धुराः ।
सोत्कण्ठा इव जृम्भन्ते मञ्जर्य्यः श्वसनाकुलाः ॥ १०५ ॥

इमा मरकतश्यामशष्पसञ्चयकञ्चुकाः ।
राजन्ते कौसुमरजोरञ्जिता वनराजयः ॥ १०६ ॥

एता विवलितग्रीवा हरिण्यस्त्रासविद्रुताः ।
नीलोत्पलवनानीव सृजन्ति तरलेक्षितैः ॥ १०७ ॥

एते निशाकरकराङ्कुरकान्तदन्ताः
पल्लीपति[1]प्रणयिणीस्तनतुल्यकुम्भाः ।
पश्यन्ति दन्तिशिशवः परितो रथं मे
नेमिस्वनापहृतचापललीनकर्णाः ॥ १०८ ॥

---

१ $\frac{W}{2}$ पत्नीपति० ।

ཤ་བ་རི་ཡི་ཀེད་སྐབས་ལས་འཕྲི་སྨ་བྱའི་འདབ་འཕྲེང་རོལ་པས་བསྐྱོད་པ་ཡི།
རྩེད་འཇོའི་ཉམ་འཕྲུལ་ཆ་ཡི་འཆིང་བ་ཉམས་ལ་ཆས་པར་གྱུར་པ་འཞིགས་བྱེད་རླུང་།
ཐྲི་མེད་ཆུ་སྐྱུང་ནར་མ་དཱ་ངོགས་འཁྲི་ཤིང་གཡོ་ཞིང་ཉམ་པར་གྱུར་པ་ཡི།
མེ་ཏོག་སྦྲང་རྩིའི་དགའ་སྟོན་གྱིས་པས་རབ་བསྐྲོས་འདི་དག་སྐྱོས་པ་བཞིན་དུ་འཁྲུས། 109

ཞེས་པ་སྨྲ་བའི་མི་བདག་བུ། ནགས་ཀྱི་དཔལ་ལ་སྤྱོད་པ་ཡིས།
སྐྱེ་བོ་མེད་པར་མི་འཁམ་ཅིའི། སྙིང་རྗེའི་སྒྲ་ཡིས་གང་བ་ཐོས། 110

ཐོས་ནས་དགེ་མཚན་གྱིས་དྲངས་ཏེ། དེ་དང་ཉེ་བ་བརྩེ་བའི་གཏེར།
ཡོན་ཏན་དང་པའི་མེ་ལོང་དེ། སོང་བས་རི་དྭགས་མིག་དེ་མཐོང་། 111

མིག་ཆུར་བཅས་པས་ཇོན་པ་ལ། ཡོངས་སུ་བསྐྱབ་པ་ཞུ་བྱེད་ཅིང་།
ནགས་ཀྱི་ཟད་པའི་སྡུག་བསྔལ་དང་། ལྷན་པའི་ནགས་ཚལ་ལྷ་མོ་བཞིན། 112

རི་དྭགས་མཚན་པའི་དཔལ་མོ་ནི། རབ་བརྟགས་རི་དྭགས་ཇོན་བ་ཡིས།
དྲངས་པ་འཚོལ་དུ་འོངས་གྱུར་པ། ནགས་སུ་འཁྲུམས་ཞིང་སྐྱོ་བ་བཞིན། 113

དེ་མཐོང་ཕྲུལ་དུ་གྱུར་བའི་གཟུགས། ངོ་མཚར་བཅས་པས་ཡ་མཚན་ཏེ།
མངོན་པར་འདོད་པའི་རས་ལ་ནི། གྱུར་དུ་རི་མོ་བཀོད་བཞིན་གྱུར། 114

དེ་བསམས་ཀྱི་མ་འདི་ཡི་བཞིན། ལེགས་པར་འབྲི་ལ་མཛེས་པ་ནི།
ཉམ་པར་སྤྲུལ་བྱེད་གོམས་བྱས་བའི། བྱེད་པོ་རི་མོ་ཡོངས་སུ་སྨིན། 115

एते निर्म्मलनर्म्मदापरिसरव्याजृम्भिवल्लीवलत्-
पुष्पोद्दाममधूत्सवप्रणयिनः क्षीवा इवाघूर्णिताः।
सन्नद्धाः शवरीनितम्बविलसन्मायूरपत्त्रावली-
लीलान्दोलननर्म्मविभ्रमकलाबन्धेषु विन्ध्यानिलाः॥ १०९॥

इति ब्रुवाणः कलयन् वनलक्ष्मीं नृपात्मजः।
शुश्राव निर्जनाकीर्णं किन्नर्य्याः करुणस्वनम्॥ ११०॥

श्रुत्वैव कौतुकाकृष्टस्तत्समीपं कृपानिधिः।
सोऽभ्येत्य सद्गुणादर्शस्तां ददर्श मृगीदृशम्॥ १११॥

याचमानां परित्राणं लुब्धकं साश्रुलोचनाम्।
वनेचरभयोद्विग्नामिव काननदेवताम्॥ ११२॥

अन्वेष्टुं लुब्धकाकृष्टं स्वमङ्कमृगमागताम्।
खिन्नामिव वनभ्रान्त्या लक्ष्मीं हरिणलक्ष्मणः॥ ११३॥

तां विलोक्य स साश्चर्य्यरूपातिशयविस्मितः।
अभिलाषपटे क्षिप्रं चित्रन्यस्त इवाभवत्॥ ११४॥

सोऽचिन्तयदहो रम्यनिर्म्माणाभ्यासकारिणः।
अस्मिन्मुखसमुल्लेखे रेखापरिणतिर्विधेः॥ ११५॥

གདེངས་ཅན་གནས་ན་རྒྱུད་པར་དཀའ། མི་ཡི་ཡུལ་ན་གདམ་ཉིད་ཅི།
མཛེས་སྡུག་རྒྱུ་འདི་མཐོ་རིས་སྲུའང་། གསར་དུ་མགྲོན་པར་འཁྲུངས་སམ་སྙམ། 116

གཞོན་ནུ་མ་ཉིད་དར་ལ་བབ་པས་འཕྲུངས་པས་ལུས་མེད་དང་བཅས་སྐྱེག་ལྡན་ཞིང་།
ལུས་ཕྲ་མཉེན་ལྷུག་གསར་དུ་བསྟུད་བྱུས་ཡན་ལག་ཀུན་འགྲོགས་གྲོགས་ཅན་གང་གིས་ནི།
འབད་མེད་པ་རོལ་གཞོན་ལ་ཤིན་དུ་གྱི་ཆེར་རྩོམ་པའི་མངོན་སྤྱོར་དང་བྲལ་བར།
འགྲོ་བའི་གྱིལ་སྲིད་ཚོ་ལ་རྩེ་དགའི་མཚོན་དང་ལྡན་པའི་ལྷ་ནི་ཉམས་པར་གྱུལ། 117

དེ་ལྟར་ཡ་མཚན་སྐྱིད་པོ་ཅན། མངོན་པར་འདོད་ལྡན་མིག་གི་ནི།
དེ་འཕྲུངས་མཚུངས་ལ་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ། ཕྱག་འཚལ་ཇོན་བས་རབ་སྨྲས་པ། 118

མི་འམ་ཅི་གྱུལ་རིགས་ཀྱི་ན། དཔག་བསམ་ལྗོན་པ་ལྗོན་པ་ཡི།
བུ་མོ་ཡིད་དུ་འོང་མ་འདི། ལྷ་གཅིག་བདག་གི་ཞགས་པས་བྲངས། 119

ཁྱོད་སྣང་བླངས་པའི་གཞོན་ནུ་མ། མཆོག་འདི་རབ་དུ་གཟུང་བར་མཛོད།
ཡོན་དན་གྱི་ཆེ་ཁྱོད་ཉིད་ནི། ས་གཞི་འདི་ཡི་བདག་དུ་འོས། 120

འདི་ཡི་གཙུག་གི་ནོར་བུ་འདི། རང་འདོད་འགྲོ་སྟེར་བདག་གིས་ནི།
བཟུང་སྟེ་དེ་དང་བྲལ་བས་ནི། ནམ་མཁའ་དག་ལ་འགྲོ་བ་མེད། 121

ནོར་བུ་འདི་ནི་བསྲུང་བྱ་སྟེ། འདི་བྱིན་འདི་དང་ཕྲད་པ་མེད།
བུ་མོ་རིན་ཅན་རིན་ཅན་ཡང་། དེ་བརྗོད་དེ་ལ་ཇོན་པས་བྱིན། 122

दुर्लभा भोगिभवने मर्त्यलोके कथैव का।
मन्ये लावण्यमुद्रेयं स्वर्गेऽप्यभिनवोदिता ॥ ११६ ॥

तारुण्येन निपीतशैशवतया सानङ्गशृङ्गारिणी
तन्वङ्ग्याः सकलाङ्गसङ्गमसखी भङ्गिर्नवाङ्गीकृता।
निःसंरम्भपराक्रमः पृथुतरारम्भाभियोगं विना
साम्राज्ये जगतां यया विजयते देवो विलासायुधः ॥११७॥

इति विस्मयगर्भेण साभिलाषेण चक्षुषा।
तां पिबन्तमिवाभ्येत्य प्रणम्य प्राह लुब्धकः ॥ ११८ ॥

कुलकल्पद्रुमस्येयं द्रुमस्य दयिता सुता।
देव किन्नरराजस्य पाशेनापहृता मया ॥ ११९ ॥

आनीता त्वत्कृते दिव्यकन्यैषा प्रतिगृह्यताम्।
त्वमेवास्या गुणोदार भर्त्ता भुव इवोचितः ॥ १२० ॥

अस्याश्चूडामणिरयं मया स्वेच्छागतिप्रदः।
गृहीतस्तद्विरहिता नेयं याति विहायसा ॥ १२१ ॥

रक्ष्यो मणिरयं नास्ति दत्तोऽस्मिन् सङ्गमोऽनया।
इत्युक्त्वास्मै ददौ कन्यारत्नं रत्नञ्च लुब्धकः ॥ १२२ ॥

ས་ཡི་རི་དྭགས་མཚན་མ་དེ། རྒྱལ་པོའི་བུ་ཡིས་བླངས་པ་ན།
བདུད་རྩིས་སྨན་བཞིན་རང་ཡུལ་དང་། བྲལ་བའི་མེ་ནི་བཏང་བར་གྱུར། 123

འདོད་ལྡན་མིག་གིས་གཡོ་བ་ཡི། རི་དྭགས་གཞོན་ནུ་མ་འདྲ་དེ།
རྔོན་པས་བཏང་ནས་ཡིད་ཀྱིས་ནི། ཆགས་པའི་གྱི་ཡིས་བཅིངས་པར་གྱུར། 124

མི་འམ་ཅི་མོ་ཤིང་རྟར་བཀོད། རྔོན་པ་རིན་ཅན་རྣམས་ཀྱིས་བཀང་།
དགའ་བ་སྒྲུས་པའི་ས་བདག་སྲས། རང་གི་གྲོང་ཁྱེར་དག་ཏུ་སོང་། 125

ཏ་སྟི་ན་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་དེ། རང་གི་གདམ་ནི་ཕ་ལ་བཤད།
དགའ་བས་ཡ་མཚན་གྱུར་པ་དེས། བག་མ་ཡི་ནི་དགའ་སྟོན་བསྒྲུབས། 126

གཟུགས་ཅན་རི་བོང་ཅན་གྱི་དཔལ། དགེ་བས་སྤྲུད་བྱུར་གྱུར་པ་བཞིན།
མི་འམ་ཅི་ཡི་བུ་མོ་ནི། ཕོ་བྲང་འཁོར་དུ་གནས་པར་བྱས། 127

མཆུ་ཡི་སྦྲང་རྩིར་ཆགས་ལྡན་པ། སྦྲང་རྩི་འཐུངས་པས་བཞན་དུ་དེས།
རིག་པས་བཞིན་གྱི་ཆུ་སྐྱེས་ནི། དུད་ཅིང་བསྒྲོ་ཅན་དེ་འདར། 128

སྐྲ་བ་བཅད་ཀྱང་སྤྲིད་པ་འཆང་། གཡོ་བ་སད་ཀྱང་ཡང་ཡང་འདར།
སྐྱེངས་པར་གྱུར་ཀྱང་དཔལ་མདངས་གསལ། དེ་ཡི་དགའ་བ་དེ་ཡིས་བསྐྲུབས། 129

དལ་གྱིས་མཆུ་ཡི་རོ་མྱངས་ཤིང་། སོ་ཡི་འཛིགས་པ་བྱིན་ནས་ནི།
ཆུ་སྐྱེས་གྲུས་པའི་མིག་ཅན་དེའི། སྐྲ་བ་བཅད་གྱིན་དེ་ཡིས་ཕྲལ། 130

गृहीता राजपुत्रेण सा महीमृगलक्षणा।
सुधासिक्तेव तत्याज स्वदेशविरहानलम्॥ १२३॥

उत्कण्ठालोकनालोलां तां बालहरिणीमिव।
बबन्ध लुब्धकत्यक्तां रागवागुरया स्मरः॥ १२४॥

किन्नरीं रथमारोप्य रत्नैरापूर्य्य लुब्धकम्।
हर्षपूर्णः स्वनगरं प्रतस्थे पार्थिवात्मजः॥ १२५॥

स हस्तिनापुरं प्राप्य निवेद्य स्वकथां पितुः।
हर्षाद्विस्मयिना तेन विवाहे विहितोत्सवः॥ १२६॥

सुकृतैर्भोग्यतां यातां मूर्त्तामिव शशिश्रियम्।
अन्तःपुरप्रणयिनीं चक्रे किन्नरकन्यकाम्॥ १२७॥

दधता मधुपेनेव तेनाधरमधुस्पृहाम्।
स्पृष्टा नतमुखाम्भोजा चकम्पे नलिनीव सा॥ १२८॥

मौनेऽपि कथितोत्कण्ठा मुहुः कम्पेऽपि निश्चला।
वैलक्ष्येऽपि स्फुटल्लक्ष्मीस्तस्य प्रीतिं ततान सा॥ १२९॥

स शनैरधरास्वादे दत्वा दन्तविभीषिकाम्।
निमीलितदृशस्तस्या मौनमुद्रामवारयत्॥ १३०॥

གོས་མདུད་འགྲོལ་དང་དགག་པ་ལ། ཁྲོ་ཤུག་ལག་བའི་པདྨ་དག།
རབ་ཏུ་འདར་ལྡན་གདུབ་བུའི་སྒྲ། རྩོད་པ་བྱེད་པར་གྱུར་པ་བཞིན། 131

རྩེ་དགའ་འཛུམ་གྱི་མེ་ཏོག་གྱིས། མཛེས་མའི་ནུ་མའི་འབྲས་བུ་མཚན།
ཆགས་བཅས་ཡལ་འདབ་ལྡན་པ་དེའི། ལོངས་སྤྱོད་ཀང་འཕུང་སྤྲུད་བྱུར་གྱུར། 132

གནས་སྐབས་དེར་ནི་ལྷོ་ཕྱོགས་པ། བྲམ་ཟེ་སེར་སྐྱ་ཕྱུཥྐ་ར་གཉིས།
རྒྱལ་པོ་ནོར་གྱི་མདུན་སར་ནི། འཚོ་བ་འདོད་པས་འོངས་པར་གྱུར། 133

རིག་པ་ཕུལ་བྱུང་བ་སྟུགས་འོས་པ། དེ་དག་མདུན་ན་འདོན་གཉིས་ཐོབ།
སེར་སྐྱ་དག་ནི་ས་སྐྱོང་གི། རྒྱལ་པོའི་བུ་ཡིས་གཞན་པའོ། 134

དེ་དག་རིག་པས་བཅིངས་པ་ཡིས། རྟག་ཏུ་ནོམ་པར་རྩོད་བྱེད་ཅིང་།
ཇོས་གཅིག་མངོན་པར་འདོད་པ་ཡིས། ནོམ་པར་སྡང་བ་ཡང་དག་སྐྱེས། 135

ཕྲང་པོ་ལ་འོས་སྐྱུན་བྱེད་པ། དེ་དག་གདོང་གི་རིག་པ་ནི།
ཚང་གི་རི་མོ་ལྟ་བུ་དག། ཞེ་སྡང་སྐྱོན་གྱིས་ཉམས་པར་བསྐྲུབས། 136

གང་གིས་རིག་པ་མར་མེའི་རྩེ་མོ་དངོས་པོ་ནོམ་འབྱེད་ཡོན་ཏན་དག་གི་གྲོགས།
འཇིག་རྟེན་རབ་ཏུ་གསལ་ལ་མངོན་ཕྱོགས་མདུན་དུ་ཞེ་སྡང་མུན་པ་མི་བཟད་བྱེད།
སྨོངས་པས་ཉེར་བཅོམ་རྟོག་སྤྱོད་དང་བྲལ་གཞུང་བཟང་རྒྱུང་མའི་དགྲ་བོ་དེ་དག་ནོམ
ཙན་དན་ཟླ་བ་ཆུ་ཤེལ་པདྨ་ཁ་བ་ལས་འཁྲུངས་མི་ཡིས་སློག་པར་བྱེད། 137

नीवीमोक्षे निषेधे च दम्पत्योः पाणिपद्मयोः।
विवाद इव सोत्कम्पं कङ्कणस्वनयोरभूत्॥ १३१॥

स रागपल्लवस्तस्य विलासस्मितपुष्पितः।
कान्ताकुचफलाङ्कोऽभूत् भोग्यः सम्भोगपादपः॥ १३२॥

अत्रान्तरे दाक्षिणात्यौ विप्रौ कपिलपुष्करौ।
आजग्मतुर्वृत्तिकामौ धनस्य नृपतेः सभाम्॥ १३३॥

तौ विद्यातिशयश्लाघ्यौ पौरोहित्यमवापतुः।
कपिलः क्षितिपालस्य राजपुत्रस्य चापरः॥ १३४॥

तयोः स्पर्द्धानुबन्धेन सदा विवदमानयोः।
एकद्रव्याभिलाषेण विद्वेषः समजायत॥ १३५॥

द्वेषदोषेण मातङ्गयोग्यनिर्घातयोस्तयोः।
विदधे मदलेखेव विद्या मलिनतां मुखे॥ १३६॥

येषां वस्तुविवेकिनां गुणसखी लोकप्रकाशोन्मुखी
विद्यादीपशिखा करोति विषमं द्वेषान्धकारं पुरः।
ते मोहोपहता विचाररहिताः सौजन्यजन्याहिताः
दग्धाश्चन्दनचन्द्रकान्तकमलस्यन्दोद्गतेनाग्निना॥ १३७॥

ཐོས་དང་དྲན་དང་རྩོད་རྣམས་ལ། གནས་དང་གནས སུ་པུཥྐ་ར་གྱིས།
ངེས་པར་ཚར་བཅད་སེར་སྐྱ་ཡིས། ཁྲོ་བའི་གདུང་བས་ཡོངས་སུ་བསམས། 138

རྣོ་ཞིང་བརྟན་པར་གོམས་གྱུར་པ། མི་བཟད་གྲོགས་ཤིང་འཚར་བ་འདིས།
རྟག་ཏུ་གོམས་བས་ཞན་པ་བདག། མདུན་ས་དག་ཏུ་སྐྱེངས་པར་བྱེད། 139

ཞེས་རབ་སྨྲ་བྱེད་ཚུལ་དང་ནི། ཐོས་པ་དྲེགས་པའི་རིམ་དག་དང་།
ནོར་ནི་ཆོས་དག་འགོག་པའི་སྐད། མ་རབས་སེམས་ལྡན་རྣམས་ལ་འགྱུར། 140

དྲེགས་ལྡན་འདི་ཡི་གྲོལ་སྐབས་ལ། བརྟེན་ནས་བདག་ནི་ཡོངས་སུ་འཇོམས།
དེ་སྐད་འདི་ཡིས་རྟེན་ཉིད་ལ། དཔལ་གྱི་ཙོ་བ་བདག་གིས་གཞོམ། 141

རིགས་པའི་ཐབས་ནི་འབད་ཞིག་གིས། རྒྱལ་པོའི་སྲས་ནི་དགུམ་པ་ལ།
བདག་ནི་འབད་པ་བྱ་བར་འོས། ཁེངས་པ་ཉམས་པ་ཇི་ལྟར་བཟོད། 142

དེ་ལྟར་དྲག་པོའི་སྡིག་བརྟགས་པ། དེ་ལ་སྡང་བས་ཡང་དག་སྤྱུར།
ཕྲག་དོག་གིས་གང་མི་བྱེད་པའི། སྡིག་དེ་འཇིག་རྟེན་ན་ཡོད་མིན། 143

གང་གིས་མི་བཟད་ཁྲོ་བ་ཡི། དགུ་གི་མིག་སྨན་མིག་ཏུ་བདབ།
རྟག་ཏུ་བསམས་པ་འཁྲུགས་པ་དེས། ལེགས་པའི་ལམ་ནི་ཇི་ལྟར་མཐོང་། 144

འདོད་ཆགས་མཆོག་ཏུ་སྡིག་ཅིང་དེ་ལས་ཀྱང་ནི་ལྷག་པར་དྲེགས་པ་སྡིག།
ཁྲོ་ལས་སྡིག་གཞན་འགྲོ་བ་ན་མེད་བཟོད་དཀའི་སྡིག་པ་ཆགས་པའོ།
གདུང་བ་དང་ལྡན་འགྲོ་ན་སྡིག་བའི་ཚོགས་ནི་ཇི་སྙེད་བགྲངས་གྱུར་བ།
དེས་ཀྱང་རྣམ་པར་སྡང་བས་བསྐྱུན་པའི་སྡིག་པའི་ཆ་ལ་མཚུངས་རིག་མིན། 145

श्रुतिस्मृतिविवादेषु पुष्करेण पदे पदे ।
निगृह्यमाणः कपिलः कोपतापादचिन्तयत् ॥ १३८ ॥

मन्दाभ्यासं दृढ़ाभ्यासस्तीक्ष्णस्तीव्रमदोद्धतः ।
सदा संसदि मामेव नयत्येष विलक्षताम् ॥ १३९ ॥

प्रज्ञा वञ्चकवृत्ताय श्रुतं दर्पज्वराय च ।
धनं धर्म्मनिषेधाय भवत्यधमचेतसाम् ॥ १४० ॥

दृप्तः परिभवत्येष राजपुत्राश्रयेण माम् ।
तस्मादाश्रयमेवास्य श्रीमूलं प्रहराम्यहम् ॥ १४१ ॥

निधने राजपुत्रस्य युक्त्युपायेन केनचित् ।
युक्तः कर्त्तुं प्रयत्नो मे मानम्लानिं कथं सहे ॥ १४२ ॥

इत्युग्रपापसङ्कल्पस्तस्य द्वेषात् समुद्ययौ ।
नास्ति तत्पातकं लोके यन्न कुर्व्वन्ति मत्सराः ॥ १४३ ॥

कथं पश्यति सद्धर्म्मं समदो व्यथिताश्रयः ।
दत्तं नयनयोर्येन तीव्रामर्षविषाञ्जनम् ॥ १४४ ॥

रागः पापं परममधिकं दर्पपापं ततोऽपि
क्रोधात् पापं जगति न परं दुःसहं लोभपापम् ।
यावानेष व्यसनिनि जने गण्यते पापवर्गः
पापांशस्य स्पृशति न तुलां सोऽपि विद्वेषवृत्तेः ॥ १४५ ॥

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་སྤྲིན་ཞེས་པའི། གདུག་ཅིང་ཀར་པ་ཏར་གནས་པ།
གནོད་པ་བྱེད་པའི་རྒྱལ་ཕྲན་གྱིས། དབུང་ནམས་སྤྲིངས་པས་གསོད་པ་དག། 146

ཐོས་ནས་མི་བདག་ཁྲོས་པ་ཡིས། ཐབས་ནི་བཞི་པར་ངེས་བྱས་ཏེ།
བློན་པོ་ནམས་ཀྱི་འདོད་པ་ཡིས། གཞོན་ནུ་ལ་ནི་འདི་དག་སྨྲས། 147

གཞོན་ནུ་སྟོབས་ཀྱིས་དགྲ་དག་ནི། མྱུར་དུ་གཅོད་དུ་འགྲོ་བར་གྱིས།
ཁྱོད་ཀྱིས་རིམ་འོངས་རྒྱལ་སྲིད་ཆེའི། འདི་ནི་ཐུག་ཚུ་མེད་པར་འགྱུར། 148

གཡུལ་གྱི་རྩོམ་པར་ཁྱོད་ཀྱི་ནི། དབུང་བ་མཐུ་ཡིས་བསྐྱེན་བ་འདི།
འགྲོ་བར་རྒྱལ་བའི་སྣང་པོ་དག། འདོགས་པའི་ཀ་བ་ཉིད་དུ་འགྱུར། 149

ས་འཛིན་རིགས་ནི་ནོན་པའི་སྲིན། སྨུག་ཅིང་ལྕག་པར་གྱུར་པ་དག།
བཅོམ་ན་ཁྱོད་ཀྱི་གཟི་བྱིན་གྱི། ཕྱོགས་སུ་སྒྲིབ་པའི་བགེགས་མེད་འགྱུར། 150

སྟོབས་མེད་མཐའ་ན་གནས་པ་ཡི། རྒྱལ་ཕྲན་གཞན་ནི་བསད་པས་ཅི།
རིགས་ལྡན་དེ་ཉིད་གཞོམ་པར་བྱ། དེ་བསད་ན་ནི་ཐམས་ཅད་འགྲུབ། 151

གང་ཞིག་ཆ་ཡི་རང་ཟས་ཉིད་དུ་ནམ་པར་བསྒྲུབས་པ་ཡི།
སྣང་ཆེན་ཚོགས་ནི་འཕྲོག་བྱེད་ཀྱིས་བཅོམ་དགེ་མཚན་ཅི་ཞིག་ཡོད།
གལ་ཏེ་སྡེར་མོའི་གད་རྒྱངས་ལྡན་པའི་གདོང་ལྔ་མངོན་བཅོམ་ན།
དེ་ནི་དེ་ཡི་སྐྱེས་བུ་རྩལ་ཡོད་གདམ་གྱི་ལམ་དུ་འགྱུར། 152

ཞེས་པ་ཕ་ཡིས་བསྟན་པ་ན། གཡུལ་གྱི་དགའ་སྟོན་འདོད་པ་དང་།
མི་འམ་ཅི་འབར་གཡོ་བས་དེ། སྐད་ཅིག་ཕྱོགས་ལ་འཕྱུར་བཞིན་གྱུར། 153

ཡུན་རིང་འགྲོ་བ་མིན་བརྗོད་པས། འབད་པས་ཆུང་མ་དབུགས་ཕྱུང་ནས།
དེ་ཡི་མ་ལ་མངོན་ཕྱོགས་དེ། ཕྱག་བྱས་དལ་གྱིས་རབ་སྨྲས་པ། 154

མི་འམ་ཅི་དབང་བརྒྱ་བྱིན་དུ། བདག་བུའི་བུ་མོ་ཁིངས་ལྡན་མ།
ཁྱོད་ཀྱི་བདག་ལ་བྱམས་པའི་བློས། འཕྲལ་བའི་མྱ་ངན་གྱིས་གཟིར་སྐྱོངས། 155

འདི་ཡི་གཙུག་གི་ནོར་བུ་ནི། རང་འདོད་འགྲོ་བ་སྟེར་འདི་དག།
སྲོག་ལ་ཐེ་ཚོམ་མ་གཏོགས་པ། མ་མ་ཀུན་དུ་སྦྱིན་མི་བྱ། 156

ཞེས་བརྗོད་མ་ཡི་ལག་དུ་ནི། མཛེས་མ་མཛེས་མའི་གཙུག་གི་ནོར།
གཏད་ནས་དབྱུང་གི་ཕྱོགས་ཀྱི་སྒོ། སྒྲིབ་ཅིང་དེ་ནི་མྱུར་དུ་སོང་། 157

དེ་ཡི་རྡོ་ཚོགས་ཀྱིས་བསླང་བ། རྡུལ་ཚུབ་སྤྲིན་ལྟར་གྱུར་པ་ཡིས།
དང་བའི་རྒྱལ་པོ་སྐྲག་པ་དང་། ཉོན་མོངས་རྒྱུ་ཉིད་དག་ཏུ་གྱུར། 158

ཁྲོ་ནི་རིང་དུ་སོང་བ་ན། འཕྲལ་བ་ཡིས་ནི་ཡིད་འཕྲོག་མ།
པདྨ་གཞོན་ནུའི་འདབ་མ་ཡིས། མལ་སྟན་ལ་ནི་བརྟེན་པར་གྱུར། 159

སྲིད་ལྡན་ཉིན་བར་བསྐྱང་བའི་རྩོམ་པ་དག་ལ་རྟག་ཏུ་མངོན་སྦྱོར་ཞིང་།
གྲངས་ཀྱི་རི་མོའི་ལམ་ནི་ས་ལ་འདྲར་ཞིང་གཡོ་བས་འདྲི་བྱེད་པ།
དེ་ཡི་ལག་པ་ཕྲ་བ་ཉིད་ཀྱིས་སྐྲ་ལྡན་གདུབ་བུ་ལྷུང་བ་ལ།
མའི་མའི་རྒྱུན་གྱི་སྣ་རིག་གདུབ་ཀོར་དག་ནི་མྱུར་དུ་གནས་པར་བྱས། 160

इति पित्रा समादिष्टः समीहितरणोत्सवः ।
किन्नरीविरहालोलः सोऽभूद्दोलाकुलः क्षणम् ॥ १५३ ॥

अचिरागमनाख्यानैर्यत्नेनाश्वास्य वल्लभाम् ।
जननीं स्वैरमभ्येत्य प्रणिपत्य जगाद सः ॥ १५४ ॥

दुहिता शक्रकल्पस्य किन्नरेन्द्रस्य मानिनी ।
पाल्या विरहशोकार्त्ता मद्वात्सल्यधिया त्वया ॥ १५५ ॥

अस्याश्चूडामणिरयं रक्ष्यः स्वेच्छागतिप्रदः ।
दातव्यः सर्व्वथा मातर्नान्यत्र प्राणसंशयात् ॥ १५६ ॥

इत्युक्त्वा जननीहस्ते कान्तं कान्ताशिखामणिम् ।
निक्षिप्य स ययौ तूर्णं सैन्याच्छादितदिङ्मुखः ॥ १५७ ॥

तस्य वाजिव्रजोद्भूतरजःपुञ्जघनोदयः ।
प्रययौ राजहंसानां सन्त्रासायासहेतुताम् ॥ १५८ ॥

दूरं प्रयाते दयिते विरहेण मनोहरा ।
बभूव बालनलिनीपलाशशयनाश्रया ॥ १५९ ॥

सोत्कण्ठाया दिवसगणनारम्भनित्याभियोगे
संख्यालेखासरणिमवनौ कम्पलोलं लिखन्त्याः ।
तस्याः पाणौ निपतितरणत्कङ्कणे तानवेनं
क्षिप्रं मुक्तावलयकलनामश्रुधारा चकार ॥ १६० ॥

མི་རྟོག་མདའ་ཅན་ལ་སྣང་བདེ་ལ་ཕྱིར་ཕྱོགས་ལུས་ལའང་ཆགས་པ་ཉིད་མ་ཡིན།
བདག་པོའི་བསམ་གཏན་སྐྱོང་ཞིང་ཉིན་མཚན་དུ་ནི་དེ་ཡི་མིང་གི་གསང་སྔགས་བཟླས།
མ་ལ་སྨན་ས་གཞིར་བྱས་ཏེ་དེ་ལྟ་ན་ཡང་གཟུགས་བཟང་གདུང་བ་ཉམས་མ་གྱུར།
འདོད་ཆགས་གཡོ་མེད་ཆགས་པའི་ཡིད་ཉམས་བརྟུལ་ཞུགས་དྲག་པོས་གྲོལ་བ་མིན་ནམ་ཅི། 161

ཤེལ་གྱི་ཁྲི་སྟན་ལ་འདུག་ཅིང་། ཧ་རི་ཙན་དན་གྱིས་སྐུ་བ།
གཟུགས་ཅན་མ་དེ་ཟླ་འོད་ཀྱི། དབུས་སོང་ཟླ་རིས་བཞིན་དུ་མཛེས། 162

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་ས་སྐྱོང་ནི། མི་ལམ་མཐོང་ནས་དོགས་གྱུར་པས།
མདུན་ན་འདོན་ནི་སེར་སྐྱ་དག ཡང་དག་བོས་ནས་དབེན་པར་ཁྲིས། 163

གྲོང་ཁྱེར་དགྲ་ཚོམས་ཀྱིས་བཀག་ཅིང་། བདག་གི་ལྟོ་བརྫོལ་གྱུ་མ་ནི།
དྲངས་ན་ཡོངས་སུ་དཀྲིས་པ་ཡིས། མི་ལམ་དེ་རིང་བདག་གིས་མཐོང་། 264

བློ་གྲོས་ཆེན་པོ་མི་ལམ་འདིའི། རྣམ་སྨིན་འབྲས་བུར་འོས་པ་གསུང་།
དགེ་བར་ཡོངས་སྒྱུར་འོས་པ་ཡིས། ཕྱིར་བཅོས་དག་ཀྱང་བསམས་པར་མཛོད། 165

ཅེས་བ་ས་ཡི་དབང་པོས་དྲིས། མདུན་ན་འདོན་གྱིས་སྐད་ཅིག་ནི།
གསུས་བའི་ཚུལ་ཆོས་བསམ་གཏན་བཟུང་། ཉང་དུ་མངོན་པར་འདོད་པ་བསམས། 166

བྲཧྨ་ར་ཡི་རྟེན་གཅད་སྐད། རྒྱལ་པོའི་བུ་ནི་ཉམས་པ་ལ།
ཤིན་ཏུ་ཡུན་རིང་བསམས་པའི་ཐབས། འདི་ནི་བདག་གིས་དགའ་བས་ཐོབ། 167

द्वेषः पुष्पशरे सुखे विमुखता देहेऽपि निःस्नेहता
पत्यौ ध्यानपरायणत्वमनिशं तन्नाममन्त्रे जपः।
शय्या भूमितले तथापि सुतनोस्तापक्षतिर्नाभवत्
नूनं निश्चललीनरागमनसां मुक्तिर्न तीव्रव्रतैः॥ १६१॥

लीना स्फटिकपर्य्यङ्के हरिचन्दनपाण्डुरा।
चन्द्रलेखेव सा तन्वी ज्योत्स्नामध्यगता बभौ॥ १६२॥

कदाचिदथ भूपालः स्वप्नदर्शनशङ्कितः।
पुरोहितं समाहूय पप्रच्छ कपिलं रहः॥ १६३॥

दृष्टमद्य मया स्वप्ने निरुद्धं शत्रुभिः पुरम्।
पाटितोदरकृष्टैश्च ममान्त्रैः परिवेष्टितम्॥ १६४॥

स्वप्नस्यास्य विपाकार्हं फलं ब्रूहि महामते।
विचिन्तय शुभोदर्कामुचिताञ्च प्रतिक्रियाम्॥ १६५॥

इति पृष्टः क्षितीशेन क्षणमन्तः पुरोहितः।
भक्तिदम्भधृतध्यानः समीहितमचिन्तयत्॥ १६६॥

उपायोऽयं मया दिष्ट्या प्राप्तः सुचिरचिन्तितः।
पुष्करस्याश्रयोच्छित्त्यै राजपुत्रविनाशने॥ १६७॥

དེ་ཡི་ཆུང་མ་མི་འམ་ཅི། ཡིད་འཕྲོག་མ་མཆོག་འཚོ་བ་ཉིད།
དེ་དངོས་མེད་ན་ངེས་པར་ནི། སྡུག་ཅིང་བསྔལ་བས་དེ་མི་འཚོ། 168

ཞེས་པ་བསམས་ནས་དལ་བུ་ཡིས། བརྩོན་གྱིས་སྐྱོར་དང་ཆགས་བྲལ་ཅན།
མདུན་ན་འདོན་ནི་མི་ཕན་པ། འཚོལ་བས་ནོར་འཛིན་དབང་ལ་སྨྲས། 169

ལྷ་གཅིག་ཁྱོད་ཀྱི་རྨི་ལམ་ན། མཆོག་ཏུ་སྙིང་ནི་འདར་བྱེད་འདི།
མཐོང་སྟེ་དེ་ཡི་འབྲས་བུ་ནི། བཟོད་དཀའ་གསལ་བར་ཇི་ལྟར་བརྗོད། 170

རྗེ་ལ་གུས་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་ཀྱིས། གནས་ཤིང་སྐྱོན་སྤྲུབ་བདག་ཉིད་མིན།
ཕན་པ་འཚོལ་ཉམས་ཉེ་བར་ནི། མི་སྨན་བརྗོད་པ་དགག་པ་མེད། 171

རྨི་ལམ་འདི་འབྲས་གསལ་བར་ནི། ཀྱོལ་སྲིད་དམ་ནི་ལུས་ལས་ཉམས།
འདི་ལ་དོགས་དང་བྲལ་བ་ཡིས། འབྱོར་པའི་སྐད་དུ་ཕྱིར་བཅོས་བྱ། 172

མཆོད་སྦྱིན་ཞིང་དུ་རྫིང་བུ་ནི། ཕྱུགས་ཀྱི་ཁྲག་གིས་ཡོངས་གང་བར།
ཁྱོད་བཀུས་བྲམ་ཟེས་དག་བྱས་ཤིང་། གསེར་དང་རིན་ཅན་རབ་མང་བྱིན། 173

མི་འམ་ཅི་མོའི་ཚོལ་གྱིས་མེར། སྦྱིན་སྲེག་བྱས་པས་ཁྱོད་དགེ་འཐོབ།
ཁྱོད་ཀྱི་མཐའ་མ་ཕོ་བྲང་ན། ཡོད་པས་མི་འམ་ཅི་མི་དགོན། 174

ཞེས་པ་དེ་ཚིག་མ་རྫུངས་པ། ཐོས་ནས་སྡིག་པས་མྱོས་བྱིན་ཅིང་།
གཏུམ་པོའི་སྤྱོད་པ་སྨག་གྱུར་པ། ས་ཡི་བདག་པོས་དེ་ལ་སྨྲས། 175

प्रिया मनोहरा ज्येष्ठं जीवितं तस्य किन्नरी।
अभावे नियतं तस्या न स जीवति दुःखितः ॥ १६८ ॥

इति सञ्चिन्त्य शनकैर्मिथ्याखेदविषादवान्।
अभ्यधाद्वसुधाधीशमहितैषी पुरोहितः ॥ १६९ ॥

दुःस्वप्नोऽयं त्वया देव हृदयाकम्पनः परम्।
दृष्टः स्पष्टफलं तस्य दुःसहं कथमुच्यते ॥ १७० ॥

प्रभुभक्तिव्रतस्थानां दोषेष्वविहितात्मनाम्।
न कर्णकटुकं वक्तुं निषेधोऽस्ति हितैषिणाम् ॥ १७१ ॥

राज्यात् भ्रंशः शरीराद्वा स्वप्नस्यास्य फलं स्फुटम्।
शङ्काविरहितैः कार्य्यः प्रतीकारोऽत्र भूतये ॥ १७२ ॥

पुष्करिण्यां क्रतुक्षेत्रे पूर्णायां पशुशोणितैः।
स्नातस्त्वं मार्ज्जितो विप्रैर्भूरिरत्नसुवर्णदः ॥ १७३ ॥

किन्नरीमेदसा वह्निं हुत्वा कुशलमाप्स्यसि।
अन्तःपुरे स्नुषा तेऽस्ति किन्नरी न तु दुर्ल्लभा ॥ १७४ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा क्रूरपातककूणितः।
नृशंसवृत्तसन्त्रस्त स्तमभाषत भूपतिः ॥ १७५ ॥

རང་གི་སྲོག་ནི་བསྲུང་སླད་དུ། །བུད་མེད་གསོད་པར་ཇི་ལྟར་སྤྲོ། །
མི་འམ་ཅི་མོ་དང་བྲལ་ན། །ངེས་པར་བདག་གི་བུ་མི་འཚོ། ། 176

ཞེས་དེ་སླ་ལ་སྨྲོད་པས་དེའི། །འདོད་པ་ཕྱིར་ལ་བཟློག་པ་ན། །
མདུན་ན་འདོན་ནི་ སྡིག་པ་ལ། །མངོན་པར་ཞེན་པས་ཡང་དེར་སླས། ། 177

ཀྱེ་མ་རྒྱལ་པོ་བློ་གྲོས་དང་། །ལྷན་ཡང་སྐྱེ་བའི་ལུགས་མི་ཤེས། །
སྡེ་གསུམ་སྐྲུན་བྱེད་རྒྱལ་སྲིད་དང་། །སྲོག་ཀྱང་གཏང་བར་བྱ་བ་མིན། ། 178

ནོར་བཞིན་ནང་མི་གྲོགས་པ་ཆུང་མ་བུ་དག་ནི། །
ཉམས་པ་སྐྱེས་བུ་གནས་ན་སླར་ཡང་འབྱུང་བར་འགྱུར། །
དབུགས་ཙམ་བྲལ་ཞིང་སྲོག་ནི་སོང་བར་གྱུར་པ་ལས། །
དེ་དུས་ཉེ་བར་གནས་ཀྱང་ཐམས་ཅད་མེད་པ་ཉིད། ། 179

འཚོ་བའི་དོན་དུ་རང་ལུས་དང་། །གཅེས་པའི་བུ་ཡང་གཏོང་བར་བྱེད། །
རྒྱལ་པོ་འཚོ་བའི་འཇིག་རྟེན་ན། །སྲོག་ལས་གཞན་ནི་གཅེས་པ་མེད། ། 180

དེ་ལྟར་དེ་ཡིས་སྣ་ཚོགས་ཀྱི། །དཔེ་ཡིས་དལ་གྱིས་བྲིད་པ་ན། །
རྒྱལ་པོ་སྲོག་ལ་ཆགས་པ་ཡི། །སྡིག་ལ་རིགས་བར་ཁ་ཡིས་བླངས། ། 181

དེ་ནས་ཕུན་ཚོགས་དུས་པ་ཡིས། །མཆོད་སྦྱིན་ལས་ལ་འཇུག་བྱེད་ཅིང་། །
ཕྱུགས་ཀྱི་ཁྲག་གིས་གང་བ་ཡི། །རྫིང་བུ་ཡང་ནི་བྲུས་བའི་ཆེ། ། 182

निजजीवितरक्षार्थै कथं स्त्रीवधमुत्सहे।
किन्नरीविरहेऽवश्यं न च जीवति मे सुतः ॥ १७६ ॥

इति भूमिभुजा तस्य प्रत्याख्याते समीहिते।
तं पापाभिनिवेशेन पुनः प्राह पुरोहितः ॥ १७७ ॥

अहो राजन्न जानीषे धीमानपि जनस्थितिम्।
त्रिवर्गसाधनं त्याज्यं न राज्यं न च जीवितम् ॥ १७८ ॥

अर्था इव स्वजनमित्रकलत्रपुत्रा
नष्टाः स्थितस्य पुरुषस्य पुनर्भवन्ति।
उच्छ्वासमात्रविरहे गतजीवितस्य
तत्कालसन्निहितमप्यसदेव सर्व्वम् ॥ १७९ ॥

त्यज्यन्ते जीवितस्यार्थे निजदेशप्रियात्मजाः।
जीवितादपरं राजन् जीवलोकेऽस्ति न प्रियम् ॥ १८० ॥

इति जीवितलोभाय तेन नानानिदर्शनैः।
शनैः प्रतारितः पापे राजा युक्तममन्यत ॥ १८१ ॥

ततः सुसम्भृतारम्भे प्रवृत्ते यज्ञकर्म्मणि।
हतायां पुष्करिण्याञ्च पूर्णायां पशुशोणितैः ॥ १८२ ॥

དབེན་པར་རང་གི་བཙུན་མོ་ལ། རྒྱལ་པོས་རང་གི་སྤྱོད་ཚུལ་བཤད།
བུ་ནི་ཁྲིམས་བསྒྲོད་ཀྱི་ངན་གྱིས། གཟིར་ཅིང་སྡིག་པས་སྨག་པས་བསམས། 183

ཀྱི་མ་མནའ་མ་གསོད་པ་ཡི། སྒྲུབ་བྱེད་སྡིག་པ་རྒྱ་ཆེ་འདིར།
མདུན་ན་འདོན་ནི་གདི་ཐུག་གིས། ཡོང་བས་རྒྱལ་པོ་རབ་སྨོངས་བསྐྱལ། 184

འཆི་བའི་མཚམས་ནི་ངེས་བཅད་བ། འབད་པས་ཡོངས་འཁོག་མི་ནུས་ཀྱང་།
གཞན་གྱི་སྲོག་ནི་ཐོགས་པ་ཡིས། བློན་པོ་རྣམས་ནི་འཚོ་བར་འདོད། 185

གལ་དེ་སྲོག་ལ་ཆགས་པ་ཡིས། བུ་མོ་བཞིན་བཟང་བདུད་རྩི་འདྲ།
མནའ་མ་ཡིན་ཡང་རྒྱལ་པོ་ཡིས། གསད་ན་བདག་གིས་ཅི་ཞིག་སྨྲ། 186

མ་གཅིག་ཁྱོད་ཀྱིས་མཆིས་ག་ཤིན་ལས། བདག་གི་ཡིད་འཁོག་མ་འདི་སྐྱོངས།
ཞེས་བརྗོད་བུ་ནི་ནོར་བཟང་དག། བདག་ལ་ཆུང་མ་གཏད་ནས་སོང་། 187

དེ་སྐད་བདག་ལས་གཙུག་གི་ནོར། ཐོབ་ནས་དེ་ནི་མཁའ་ལ་འགྲོ།
དེ་ནི་འཚོ་ན་བདག་པོ་དང་། སྐར་ཡང་ཕྲད་པ་ཉིད་དུ་འགྱུར། 188

ཞེས་བསམས་མནའ་མ་ག་ལ་བར། མིག་ཆུར་བཅས་པ་དེ་སོང་ནས།
རྒྱལ་པོའི་ཚུལ་ནི་དེ་ལ་བཤད། རབ་འདར་ལྡན་བས་སྐར་སྨྲས་པ། 189

མཆིས་ག་ཤིན་གཙུག་གི་ནོར་བུ་ཆིངས། ནམ་མཁའ་དག་ལ་མགྲོགས་པར་སོང་།
མི་བདག་འདི་ནི་སྡིག་དང་ལྡན། དམ་པའི་སྤྱོད་ལ་མི་ལྟའོ། 190

राज्ञा कथितवृत्तान्ता निजपत्नी स्वयं रहः ।
पुत्रप्रवासशोकार्त्ता पापचरता व्यचिन्तयत् ॥ १८३ ॥

अहो मूर्खतरो राजा मोहान्धेन पुरोधसा ।
स्नुषावधविधानेऽस्मिन् प्रेरितः पृथुपातके ॥ १८४ ॥

यत्नैरपरिहार्य्येऽपि निबद्धे निधनावधौ ।
परप्राणापहारेण मूढा वाञ्छन्ति जीवितम् ॥ १८५ ॥

यदि जीवितलुब्धेन मुग्धा मृगवधूरिव ।
स्नुषापि हन्यते राज्ञा तत् किं वक्ष्याम्यहं सुतम् ॥ १८६ ॥

मातस्त्वयेयं वात्सल्यात् पाल्या मम मनोहरा ।
इत्युक्त्वा सुधनः सूनुर्गतो निक्षिप्य मे वधूम् ॥ १८७ ॥

तस्माच्चूड़ामणिं मत्तः प्राप्य व्योम्ना प्रयातु सा ।
भविष्यति तया पत्युर्जीवन्त्या सङ्गमः पुनः ॥ १८८ ॥

इति सञ्चिन्त्य सा गत्वा साश्रुनेत्रा स्नुषान्तिकम् ।
राजवृत्तं निवेद्यास्यै सोत्कम्पा पुनरब्रवीत् ॥ १८९ ॥

वत्से चूड़ामणिं बद्धा गच्छ तूर्णं विहायसा ।
नृपः पापप्रवृत्तोऽयं न सदाचारमीक्षते ॥ १९० ॥

ཁྱོད་ནི་མཆོད་སྦྱིན་སར་སོང་ནས། ནམ་མཁའི་ལམ་ནས་འགྲོ་བར་བྱ།
གཞན་ནི་ཁྱོད་ནི་འགའ་ཞིག་ཏུ། བདག་གིས་སྨྲས་བཀོད་འདི་ཡིས་རིག། 191

ཅེས་པའི་ཚིག་ཕྲིན་ཡིད་འཕྲོག་མ། ཁྱོ་དང་བྲལ་བས་གདུངས་གྱུར་པས།
འབད་པས་དེ་དང་ཕྲད་པའི་སྐད། རབ་ཏུ་གཅིས་པས་ལུས་བསྐྱངས་ཤིང་། 192

གཙུག་གི་ནོར་བུ་སྐྲུག་མོ་ཡིས། སྤྲད་པ་བླངས་ནས་སྤྱི་བོར་བཅིངས།
མནའ་མ་བོས་པ་མཆོད་སྦྱིན་གྱི། ཞིང་དུ་སོང་ནས་མཁའ་ལ་འགྲོ། 193

རྒྱལ་པོ་བུ་ནི་གཅིས་ཀྱང་མནའ་མ་གསད་པར་བྱ་བ་གང་འདི་ནི།
ཁྱོད་ཀྱིས་འོས་པ་མ་ཡིན་ཁྱོད་ནི་ཤིས་གྱུར་བདག་ནི་རང་གནས་སོང་།
བདག་བྲལ་བརྟན་པ་རབ་ཏུ་ཉམས་པའི་གཞོན་ནུ་འདི་ཡང་བསྲུང་བར་གྱིས།
དེར་དེ་བརྗོད་ནས་རབ་ཕྲ་གློག་གི་ཉམ་འཕྲུལ་དག་གིས་དེ་སོང་གྱུར། 194

དེ་སོང་ཚེ་ན་མི་བདག་གི། མཆོད་སྦྱིན་བགེགས་ཀྱིས་དོགས་བར་གྱུར།
མདུན་ན་འདོན་གྱིས་དེ་ལ་སྨྲས། ས་བདག་ཕ་ཆོམ་ཡོངས་མ་བྱེད། 195

གདུག་པ་ཞེས་བྱ་ཚངས་པ་ཡི། སྲིན་པོ་བདག་གིས་སྟུགས་ཀྱིས་བྲངས།
མི་འམ་ཅི་མོ་དེ་དེས་གསད། ཁྱོད་ཀྱི་མཆོད་སྦྱིན་བགེགས་མེད་གྲུབ། 196

ཅེས་པ་དེ་ཡི་བརྗོད་ཀྱི་ཚིག། རྒྱལ་པོ་ཡིས་ནི་བདེན་པར་བསམས།
འཁྲུལ་འཁོར་གཟུགས་བརྙན་རྩེ་དགའ་ཡིས། སྐྱོངས་ཉམས་གྱུ་གྱུས་གར་བྱེད་དོ། 197

यज्ञभूमिं त्वया गत्वा गन्तव्यं व्योमवर्त्मना।
अन्यथा त्वामसौ वेत्ति गूढ़न्यस्तां मया क्वचित् ॥ १९१ ॥

इति भर्तृप्रवासार्त्ता वचः श्रुत्वा मनोहरा।
तत्सङ्गमाय रक्षन्ती यत्नात् प्रियतरं वपुः ॥ १९२ ॥

श्वश्र्वा दत्तं समादाय बद्धा मूर्द्धि शिखामणिम्।
नृपाहृता क्रतुक्षेत्रं गत्वा व्योम व्यगाहत ॥ १९३ ॥

राजन्नेतत् तव समुचितं यत् प्रियस्यापि सूनो-
र्बध्या पत्नी निजपदमियं स्वस्ति तुभ्यं गताहम्।
रक्ष्यश्चासौ प्रतिहतधृतिर्मद्वियोगे कुमारः
तत्रेत्युक्त्वा तनुतरतड़िद्विभ्रमैः सा जगाम ॥ १९४ ॥

तस्यां गतायां नृपतिर्यज्ञविघ्नेन शङ्कितः।
पुरोहितस्तमवद्देव मा संशयं कृथाः ॥ १९५ ॥

मन्त्रैर्मया समाकृष्टः क्रूराख्यो ब्रह्मराक्षसः।
निर्विघ्नस्ते क्रतुः सिद्धः सा हृता तेन किन्नरी ॥ १९६ ॥

इति मिथ्यावचस्तस्य राजा सत्यममन्यत।
नर्त्यन्ते कुटिलैर्मुग्धा यन्त्रपुत्रकलीलया ॥ १९७ ॥

ཕ་ཡི་ཁང་པར་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ། དགའ་བ་སྐྱེར་བྱེད་ཡིད་འཕྲོག་མས།
སྙིང་ལ་ཁྲི་ནི་བཟུང་བྱས་ཏེ། རང་གི་སྐྱོད་པའི་མཐའ་ཉམས་བཤད། 198

ཡབ་ཀྱི་བཀའ་ཡིས་མི་དང་ནི། འགྲོགས་པའི་དྲི་མ་ཞི་བའི་སླད།
གསེར་གྱི་བུམ་པ་ལྷ་བརྒྱ་ཡིས། ཉི་མ་སོ་སོར་ཁྲུས་དག་བྱས། 199

བཀུས་པས་མི་ཡི་དྲི་མ་ནི། རབ་ཏུ་ཆུང་བ་ཉིད་དུ་གྱུར།
ནོར་བཟང་ལ་ནི་མཛའ་གཙུགས་ལྡན། རི་དགས་མིག་གི་ཆགས་པ་མིན། 200

ལྷ་ཡི་སྐྱིད་ཚལ་ལོངས་སྤྱོད་ལ། དེ་ནི་དགའ་བར་ཡོངས་མ་གྱུར།
གཞན་ལ་ཆགས་པར་གྱུར་པ་ཡི། ལུས་ཅན་གཞན་ན་དགའ་བ་མེད། 201

ནམ་ཞིག་མཁའ་ལ་འགྲོ་མ་དེ། སྡུག་པ་དང་བྲལ་ཉོན་མོངས་ཤིང་།
ཀླུ་ཡི་ཁང་པའི་ཉེ་འཁོར་དེ། ནགས་མཐའི་ནོར་འཛིན་དག་ཏུ་སོང་། 202

དྲང་སྲོང་ཆེན་པོ་བསྟི་གནས་དེར། གནས་པ་ཤིང་ཤུན་ཅན་དེ་ལ།
རབ་ཏུ་བཏུད་ཅིང་ཕྱུགས་ལ་ཏེ། དྲུད་ཅིང་མངོན་དུ་ཕྱོགས་པས་སྨྲས། 203

བདག་ནི་འཆིང་བ་རྫོན་པ་ལ། ཉེ་བར་བསྟན་པ་ཁྱོད་ཀྱིས་ནི།
གལ་ཏེ་རིགས་པས་འདི་བྱས་ན། བཅོམ་ལྡན་ཁྱོད་ཉིད་དག་གིས་གསུངས། 204

ཞེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། ཅུང་ཟད་ངོ་ཚས་བཞིན་བཏུད་དེ།
ཐབ་པས་དེར་སྨྲས་བཞིན་བཟང་མ། འདི་ནི་ཁྱོད་ཀྱིས་ཐོང་བྱ་ཉིད། 205

पितुर्भवनमभ्येत्य कीर्णाहर्षा मनोहरा ।
न्यवेदयत् स्ववृत्तान्तं वहन्ती वल्लभं हृदि ॥ १९८ ॥

सा पितुः शासनान्मर्त्यसङ्गसौरभशान्तये ।
हेमकुम्भशतैः स्नानं पञ्चभिः प्रत्यहं व्यधात् ॥ १९९ ॥

मर्त्यामोदः प्रतनुतां क्षालितायाः शनैर्ययौ ।
सुधनस्नेहसंयोगी न तु रागो मृगीदृशः ॥ २०० ॥

दिव्योद्यानोपभोगेषु न सा निर्वृतिमाययौ ।
अन्यत्र बद्धरागाणां रतिर्नान्यत्र देहिनाम् ॥ २०१ ॥

सा कान्तविरहक्लान्ता कदाचिद्व्योमगामिनी ।
तां नागभवनोपान्तवनान्तवसुधां ययौ ॥ २०२ ॥

तत्राश्रमस्थलीसक्तं महर्षिं वल्कलायनम् ।
अवदत् सा समभ्येत्य प्रणामविनमन्मुखी ॥ २०३ ॥

लुब्धकस्योपदिशता भवता मम बन्धनम् ।
त्वमेव ब्रूहि भगवन् यदि युक्तमिदं कृतम् ॥ २०४ ॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा किञ्चिल्लज्जानताननः ।
तामुवाच मुनिर्मुग्धे तवैषा भवितव्यता ॥ २०५ ॥

དེ་ལ་ཞགས་པ་དོན་ཡོད་ནི། ཡོད་ཅེས་བདག་གིས་མ་ཤེས་པ་ཤར།
གཡོན་ཅན་རྫོན་པས་དེ་ཡི་གདམས། ཤེས་ནས་ཁྱོད་ནི་བཅིངས་པར་གྱུར། 206

བདེན་པར་སྨྲ་བའི་སྲུ་ཚོར་ཅན། རང་བཞིན་དྲང་བ་བདག་ཅག་གིས།
མ་རྟུངས་བདག་ཉིད་གདུག་པ་ཡི། སེམས་ཀྱི་གྱ་གྱུ་ཡོངས་མི་ཤེས། 207

ཞེས་བ་ཐུབ་པས་བརྗོད་དེ་ལ། གཟུགས་ཅན་མ་ཡིས་གུས་པས་སྨྲས།
བུ་མོའི་ཚིག་ནི་གཡོ་བ་འདི། བཅོམ་ལྡན་གྱིས་ནི་བཟོད་པར་མཛོད། 208

ཁྱེད་ཀྱི་མདུན་དུ་བདག་གིས་ནི། གང་འདི་ཅུང་ཟད་བརྗོད་གྱུར་པ།
དམ་པའི་སྤྱོད་ལས་བགལ་བ་འདི། བུད་མེད་རྣམས་ཀྱི་སྐལ་པ་བཟང་། 209

སྡུག་བསྔལ་འདོན་ལ་ཆས་གྱུར་ཅིང་། ཡོངས་སུ་གདུང་ལ་བཙེ་ལྡན་རྣམས།
འོས་པ་མིན་པ་རྣམས་ཀྱི་ཡང་། ཕལ་ཆེར་བྲ་བ་སྐྱབ་མཛད་ཡིན། 210

ཚེ་འདི་དང་ནི་ལྡན་པ་བདག། རྫོན་པའི་ཞགས་པས་བཅིངས་ལས་གྲོལ།
འཕྲོག་བྱེད་མཛའ་བའི་ཞགས་པ་ཡིས། རྒྱལ་པོའི་བུ་ཡིས་ངེས་པར་བཅིངས། 211

ནོར་བཟང་ཞེས་པ་སྐལ་པ་བཟང་། བདག་བྲལ་མེ་ཡི་གདུང་བ་འདི།
གལ་ཏེ་ལམ་ནི་འདི་ཉིད་ནས། ཁྱོད་ཅན་ཉེ་བར་འོངས་གྱུར་ན། 212

སྙིང་རྗེ་ལས་ནི་ཁྱོད་ཉིད་ཀྱིས། བདག་གི་འཕྲིན་འདི་སྨྲ་བར་གྱིས།
ཁྱོད་བྲལ་གདུང་བས་བདེ་མེད་ཅིང་། བདག་ནི་ཡབ་ཀྱི་ཁྱིམ་ན་འཁོད། 213

अमोघपाशस्तस्यास्तीत्यज्ञात्वा कथितं मया।
उपलभ्य कथां धूर्तस्त्वां बबन्ध स लुब्धकः॥ २०६॥

दुष्टात्मनां न जानीमः कौटिल्यं क्रूरचेतसाम्।
सत्यप्रवादमुखराः सद्भावसरला वयम्॥ २०७॥

इत्युक्ता मुनिना तन्वी प्रणयात्तमभाषत।
भगवन् क्षम्यतामेतद्बालावचनचापलम्॥ २०८॥

इदन्तु भवतामग्रे यन्मया किञ्चिदुच्यते।
ललनासुभगः सोऽयं सदाचारव्यतिक्रमः॥ २०९॥

कथातिथित्वमायान्ति चापल्ये गुरवोऽपि यत्।
सा वियोगाग्नितापस्य ज्वालायोगासहिष्णुता॥ २१०॥

दुःखोद्धरणसन्नद्धाः सन्तप्तानां दयालवः।
कार्य्यान्तरज्ञाः प्रायेण भवन्त्यनुचितेष्वपि॥ २११॥

पाशबन्धाद्वियुक्ताहं लुब्धकेन प्रलापिनी।
निबद्धा राजपुत्रेण स्नेहपाशेन हारिणा॥ २१२॥

सुभगः सुधनाख्योऽसौ मद्वियोगानलाकुलः।
अमुना यदि मार्गेण समेष्यति तवान्तिकम्॥ २१३॥

འདུན་དང་རྗེས་སུ་བརྩེ་བ་འམ། བྱས་ཤེས་ལྡན་ཅིག་སྐྱེས་པ་ཡི།
རྗེས་མདུན་མདུན་དུ་བདར་བྱས་ཏེ། འདི་ནས་སྐྱུར་དུ་འགྲོན་པར་མཛོད། 214

མི་འམ་ཅི་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་ལས། བགྲོད་དཀའ་ཉོན་མོངས་བགྱི་ཡི་རྟེན།
བརྩོན་འགྲུས་སྟོབས་ཀྱི་གཟི་ཆུང་བ་ཡི། མི་རྣམས་ཀྱིས་ནི་ས་མིན་ཉིད། 215

དཀའ་ཐུབ་ནགས་མཐའ་འདིར་འབར་བ། བདུད་རྩི་ཞེས་པའི་སྨན་ཆེན་ནི།
མཐོང་སྟེ་ཁྱུན་མར་ལ་བཙོས་པ། ཁྱོད་རང་ཉིད་ཀྱིས་བཏུང་བར་བྱ། 216

དེ་མཐུས་སྙིང་སྟོབས་གྲོགས་ལྡན་ཁྱོད། ཉོན་མོངས་རབ་ཏུ་སྐྲོལ་འགྱུར་ཏེ།
ལམ་ནི་ཀེ་ལ་ས་ཀོད་ལྟར། དཀར་བས་བདག་གྲོང་ཕྱིན་པར་གྱུར། 217

བདག་གི་རྟགས་མཚན་སོར་གདུབ་ནི། འདི་ཡང་དེ་ལ་སྦྱིན་པར་བྱ།
ཞེས་བརྗོད་དེ་ཡིས་མི་བཟད་པའི། ལམ་ནི་རིམ་པས་བཤད་བྱས་ཏེ། 218

ངོ་མཚར་རིགས་པ་བདག་གིས་ནི། བགེགས་རྣམས་ཕྱིར་བཅོས་ཐབས་བསྟན་ནས།
རེ་བའི་འཆིང་བས་སྲོག་གཟུང་བ། སོར་གདུབ་ཕྱིན་ནས་སོང་བར་གྱུར། 219

ལམ་རིང་སྐྲོལ་བྱེད་མེད་བྱུང་དག། དེ་ཡིས་བཤད་པ་ཐོས་གྱུར་ཏེ།
སོར་གདུབ་དག་ནི་བླངས་བྱས་ནས། ཐུབ་པ་དེ་དག་ཉིད་ལ་སིམས། 220

སྐབས་དེར་ས་ཡི་བདག་པོ་སྦྱིན། ཡམ་བར་བྱས་ཤིང་མཛོད་བླངས་ནས།
ཆུང་མ་བལྟ་བར་འདོད་བ་ཡི། རྒྱལ་པོའི་བུ་ནི་འདོས་པར་གྱུར། 221

तदिदं भवता वाच्यं कारुण्याद्वचसा मम।
स्थिता त्वद्विरहायासनिःसुखाहं गृहे पितुः॥ २१४॥

उत्कण्ठामनुकम्पां वा सहजां वा कृतज्ञताम्।
दाक्षिण्यं वा पुरस्कृत्य तूर्णमागम्यतामिति॥ २१५॥

दुर्गमः किन्नरपुरे मार्गः क्लेशशताश्रयः।
अभूमिरेव मर्त्यानामल्पवीर्य्यबलौजसाम्॥ २१६॥

दीप्ता तपोवनान्तेऽस्मिन् सुधा नाम महौषधिः।
दृश्यते हविषा पक्वा पातव्या सा स्वयं त्वया॥ २१७॥

तत्प्रभावात् समुत्तीर्य्य क्लेशं सत्त्वसहायवान्।
कैलासहासशुभ्रेण पथा मत्पुरमेष्यसि॥ २१८॥

इदञ्च तस्मै दातव्यं मदभिज्ञाङ्गुलीयकम्।
इत्युक्का विषमं मार्गं[१] कथयित्वा क्रमेण सा॥ २१९॥

विघ्नप्रतिक्रियोपायान् सन्दिश्याश्चर्य्ययुक्तिभिः।
आशाबन्धधृतप्राणा ययौ दत्वाङ्गुलीयकम्॥ २२०॥

तया कथितमाकर्ण्य दूराध्वतरणाद्भुतम्।
अङ्गुलीयकमादाय तदेवाचिन्तयन्मुनिः॥ २२१॥

---

१ W1 and W2 वर्त्म।

རྒྱལ་ཕྲན་གདུགས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱིས། མཁའ་ནི་ཆུ་གཏེར་སྐྱ་བའི་འཛུམ།
རྒྱས་པ་དག་དང་མཚུངས་བྱེད་ཅིང་། དེ་ནི་རང་གི་གྲོང་ཁྱེར་ཞུགས། 222

དེ་ནས་མཐའ་མའི་ཉིས་གྱོད་ཀྱི། ཡོ་རྒྱུས་འཆད་ལ་ཉོན་མོངས་ཤིང་།
འདར་བའི་ཕོ་བྲང་འཁོར་སོང་སྟེ། དེ་ཡི་ཡབ་ལ་རབ་ཏུ་བཏུད། 223

འོག་ཏུ་བཞིན་ཕྱོགས་སྐྱེ་བོ་ཀུན། སྤུ་དང་ཟུག་ཚུས་དགའ་སྟོན་བཅོམ།
ཡབ་ཀྱི་ཕོ་བྲང་འཁོར་མཐོང་ནས། དེ་ནི་དགའ་དང་བྲལ་བར་དོགས། 224

འབྲལ་བས་གཟིར་བའི་ཡིད་འཕྲོག་མ། གཟུགས་བཟང་མ་དེ་འཚོའམ་ཅི།
ཞེས་སྨྲ་དེ་ལ་སུ་ཡིས་ཀྱང་། གང་ཚེ་མི་སྙན་མ་བརྗོད་པ། 225

དེ་ཚེ་མ་ཡིས་རབ་སྨྲས་པ། བུ་གཅིག་ཁྱོད་ཀྱི་དགའ་མ་འཚོ།
འོན་ཀྱང་སྲོག་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཆེ། གཙུག་གི་ནོར་བུ་ཕྱོབ་ནས་སོང་། 226

ཞེས་བ་ཐོས་པ་ཉིད་ན་དེ། འཕྲལ་ལ་ས་ཡི་གཞི་ལ་འགྱེལ།
རྡོ་ཤལ་འཁྲི་ཤིང་བཀྲམ་པ་ཡིས། མཆི་མའི་རྒྱུན་ལྡན་བྱེད་པ་བཞིན། 227

ཁ་བའི་ཐིགས་པ་ལྷུར་དཀར་བའི། ཧ་རི་ཙན་དན་ཆུ་དག་གིས།
དལ་གྱིས་འདུ་ཤེས་རྙེད་པ་དེས། མཆི་མས་འགར་འགར་ནམ་པར་སྨྲས། 228

མཁའ་མིན་རི་བོང་ཅན་གྱི་དཔལ། བསྐྱབས་མིན་བདུད་རྩིའི་རྒྱུན་དང་ལྡན།
འབད་མེད་མེ་ཏོག་གཞུ་ཅན་གྱིས། རིན་ཅེན་གནས་དེ་གང་ན་ཡོད། 229

अत्रान्तरे राजहंसनुर्जित्वा मेघं महीपतिम् ।
आययौ कोशमादाय दयितादर्शनोत्सुकः ॥ २२२ ॥

स विवेश स्वनगरीं सामन्तच्छत्रमण्डलैः ।
फुल्लफेनस्मितस्याब्धेः कुर्व्वाणः सन्निभं नभः ॥ २२३ ॥

स्नुषा-वैशसवृत्तान्त-कथनक्लेशकम्पितम् ।
अथान्तःपुरमभ्येत्य जनकं प्रणनाम सः ॥ २२४ ॥

अधोमुखाखिलजनं शोकशल्यहतोत्सवम् ।
पितुरन्तःपुरं दृष्ट्वा स विप्रियमशङ्कत ॥ २२५ ॥

अपि जीवति सा तन्वी विरहार्त्ता मनोहरा ।
इति ब्रुवाणं न यदा तमूचे कश्चिदप्रियम् ॥ २२६ ॥

तदा जगाद जननी पुत्र जीवति ते प्रिया ।
गता चूड़ामणिं प्राप्य किन्तु जीवितसंशये ॥ २२७ ॥

इति श्रुत्वैव सहसा स पपात महीतले ।
कीर्णहारलतां कुर्व्वन् साश्रुधारामिव क्षितिम् ॥ २२८ ॥

तुषारशीकरस्मेरहरिचन्दनवारिभिः ।
स लब्धसंज्ञः शनकैर्विललापाश्रुगद्गदः ॥ २२९ ॥

ལྷ་མ་ནི་བཀས་བཅིངས་རིང་དུ་འགྲོ་བྱེད་པ། བདག་གི་རི་དྭགས་མིག་ཅན་མཆི་མ་ཡིས། མིག་ནི་འགགས་པའི་དགའ་བ་མ་བསྐུབས་པ། དེས་ན་དྲན་པའི་དམོད་འདི་བདག་ལ་ལྷུང་། 230

ཡིད་འཕྲོག་མ་ནི་གང་དུ་སོང་།
སྙིན་ལེགས་ཚིག་གི་ལན་དག་སྦྱིན།
བག་མེད་ཕྲུན་པོ་བདག་གིས་ནི།
རི་དྭགས་མིག་ཅན་ཁྱོད་མ་བསྲུངས། 231

ཁྱོད་དང་འགྲོགས་པའི་སྐལ་བཟང་ལྡན། ལྷ་ཡི་མདུན་ས་བསྡུགས་པར་འོས། ཁྱོད་དང་བྲལ་བས་མི་ཡིས་ནི། འཇིག་རྟེན་བདག་བཞིན་ཅི་ཞིག་མཛེས། 232

ཞེས་པ་སྨྲ་ཞིང་དལ་བུ་ཡིས། མཛེས་མའི་ཡོངས་སྤྱོད་དབང་གྱུར་པ། སྐྱེད་མོས་ཚལ་དུ་དགའ་མ་མཆོག། འཚོལ་དུ་རང་ཉིད་སོང་བར་གྱུར། 233

འཁོར་གྱི་སྐྱེ་བོ་ཁྲིད་བྱས་ཏེ། མཚན་མོ་དག་ནི་མ་ཚོར་བར། ནགས་མཐར་སོང་ནས་མཉམ་པ་དང་། མི་མཉམ་ཉམས་སུ་ཉམ་པར་འཁྱམ། 234

འདོད་ཆགས་དྲག་པོའི་ཤ་ཟ་ནི། ཆེན་པོས་ཉམ་པར་མྱོངས་པ་དེས། སྨྱོན་པ་བཞིན་དུ་སེམས་ལྡན་དང་། སེམས་མེད་ལ་ཡང་ཉམ་པར་དྲིས། 235

གྲོགས་པོ་ནི་ཅོའི་ཕྲུག་གུ་གྲོགས་ཀྱི་གྲོགས་མོ་ནི།
སྲོག་མཚུངས་ཟླ་རྫོགས་བཞིན་ལྡན་དེ་ནི་སྨྲ་བར་བྱོས།
དེ་ཡི་སོ་ཡི་སྒྲིབ་བྱེད་དམར་བ་དག་གི་ཆར།
ཐིམ་པའི་འབྲས་བུ་ཏོག་ཏུ་ཁྱོད་ཀྱི་ལོངས་སྤྱོད་ཡིན། 236

अनाकाशशशाङ्कश्रीरमन्थामृतवाहिनी।
अयत्नरत्नवड़भी क्व सा कुसुमधन्वनः॥ २३०॥

गुरुशासनयन्त्रितेन दूरं
व्रजता वाष्पनिरुद्धलोचनायाः।
विहिता न धृतिर्मया मृगाक्ष्या-
स्तदयं मे पतितः स्मराभिशापः॥ २३१॥

देहि प्रतिवचः सुभ्रु क्व गतासि मनोहरे।
मया प्रमादमूढ़ेन हरिणाक्षी न रक्षिता॥ २३२॥

तत्समागमसौभाग्यश्लाघ्यस्य सुरसंसदि।
ममैव मर्त्यलोकस्य त्वद्वियुक्तस्य का द्युतिः[1]॥ २३३॥

इति ब्रुवाणः शनकैः कान्तासम्भोगसाक्षिषु।
उद्यानेषु प्रियतमां विचेतुं[2] स्वयमाययौ॥ २३४॥

वञ्चयित्वा परिजनं स रजन्यामलक्षितः।
गत्वा वनान्तं बभ्राम समेषु विषमेषु च॥ २३५॥

तीव्ररागपिशाचेन महता स विमोहितः।
उन्मत्त इव पप्रच्छ चेतनाचेतनानपि॥ २३६॥

---

१ $\frac{W}{1}$ गतिः। २ $\frac{W}{1}$ अन्वेष्टुं।

ཀྱི་ལགས་ངང་པ་ལུས་དཀར་དང་འགྲོགས་པདྨ་ཅན་རོལ་ནོ་གྱིན་ལྟར་མཛེས་པ།
སྨུ་དིག་ཚོགས་ནི་ནོམ་པར་གཡོ་བ་གང་གི་འོ་མ་འཛིན་པ་གྱུར་པའི་ཕྱིར།
བསྒྲུའི་འཁྲི་ཤིང་ངང་པ་ལ་ནི་ཙ་ལྡིབས་འཁྲི་ཤིང་ལྕུང་བཞིན་ནོམ་མཛེས་པ།
དྲི་བཟང་ཁང་པ་པདྨའི་བཞིན་ལྡན་མཛེས་པའི་པོ་ཏླབས་ཅན་དེ་མཐོང་ངམ་ཅི། 237

དེ་ལྟར་སྡུག་བསྔལ་དྲག་པོས་བཅིངས་པ་ལས།
རབ་སྐྱེ་མཉམ་པ་ལ་ཡང་འགྲེད་དེ་ལ།
བརྩེ་བས་ལམ་ནི་རབ་གསལ་སྟེར་བ་བཞིན།
དལ་གྱིས་བསིལ་ཟེར་ཅན་ནི་ནམ་མཁར་འཛེགས། 238

མཚན་མོའི་བདག་པོ་ཡིད་སྨྲུབས་གཉེན་གྱི་ནི།
གཟུགས་མཛེས་མཁའ་ལ་སྤྲུར་བ་དེ་མཐོང་ནས།
འཛུམ་ལྡན་ཟླ་ཞལ་མ་ཡིས་ནམ་མཁའ་ཡི།
གཞལ་ཡས་ཁང་པའི་སྟེང་ནས་བཞིན་བསྟན་བསམས། 239

མི་སྐྱ་དྲི་མས་མཚན་ཞིང་སྐྱོན་དག་གྲོལ།
ནམ་འཕྲུལ་མེད་ཅིང་དགོད་དང་རྩེད་འཛོས་དམན།
ཟླ་བ་བཞིན་དུ་རིང་ཞིག་ལོན་ནས་ངས།
མི་ཡི་མགོན་པོའི་བུས་ནི་འགྲོ་ཞིང་དྲིས། 240

ब्रूहि सखे शुकशावक सख्युः
प्राणसखीं निखिलेन्दुमुखीं ताम्।
तद्दशनच्छदरागविभागे
बिम्बफलेऽस्तु सदा तव भोगः ॥ २३७ ॥

हंहो हंस सितांस शंस नलिनी-लीलावतंसद्युते
दृष्टा सौरभसद्मपद्मवदना किं कान्तिकल्लोलिनी।
यस्याः पीनपयोधराग्रविलुठन्मुक्ताकलापस्य सा
हंसस्येव विभाति रोमलतिका शैवालवल्ली च्युता ॥ २३८॥

तस्येति तीव्रव्यसनानुबन्धात्
प्रलापिनः प्रस्खलतः समेऽपि।
दिशन् प्रकाशं दययैव मार्गे
शनैर्जगाहे गगनं सितांशुः ॥ २३९ ॥

श्यामापतेर्मन्मथबान्धवस्य
कान्तं स दृष्ट्वाम्बरचुम्बि बिम्बम्।
सन्दर्शितं सस्मितमिन्दुमुख्या
मेने मुखं व्योमविमानशृङ्गात् ॥ २४० ॥

གྲོགས་པོ་ཁྱོད་ཀྱིས་མཁའ་ལ་མཛེས་སྡུག་གྲོགས།
གང་གི་བཞིན་གྱི་ཉེར་འཛུམ་འབྲེལ་ཐོབ་པའི།
འགྲོ་ལ་ཁྱོད་ཀྱི་གྲགས་པ་རབ་གྲུས་པ།
མཚན་མ་རི་དྭགས་མིག་མཚུངས་མཐོང་ངམ་ཅི། 241

མཛེས་མའི་གདམས་ནི་དོན་གཉེར་དངོས་གྱུར་པ།
བདག་ལ་ཅུང་ཟད་ཇི་ལྟར་འདི་མི་སྨྲ།
གཞན་དོན་བསྒྲུབ་པ་ལ་ནི་བསིལ་གྱུར་པ།
སྒྲུ་ཙོལ་ཆ་ལྡན་སུ་ཡི་དོ་དག་བྱེད།

གང་གི་སྐྲ་སོགས་འཕྲེང་བས་ནམ་བཀྲ་སྟེ། 242
ཁྱོད་ཀྱི་མཛུག་མའི་ཚོགས་ཀྱི་གྲགས་གྱུར་པ།
ཡིད་འོང་སློག་གི་རབ་གསལ་སྤྲིན་ལྡན་གཞི།
འགར་ཡང་མི་བྲ་ཁྱོད་ཀྱིས་མཐོང་ངམ་ཅི། 243

གཙུག་ན་རིན་ཆེན་མཆོག་ལྡན་ལག་འགྲོ་མ།
གལ་ཏེ་ལག་འགྲོ་ཁྱོད་ཀྱིས་འགར་མཐོང་ངམ།
སྐྱེས་ཞིག་གང་གི་དུག་གིས་ཟེར་སློས་པས།
བཟོད་དཀའི་འབྲལ་བས་འདིར་ནི་བདག་ཞིག་གོ། 244

	Rs.	
Prithiráj Rásau, (Text) Part I, Fasc. 1, Part II, Fasc. 1-5 @ /6/ each Rs.	2	4
Ditto (English) Part II, Fasc. 1	0	12
Prákrita Lakshaṇam, (Text) Fasc. 1	1	8
Parásara Smriti, (Text) Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II, Fasc. 1-6; Vol. III, Fasc. 1-4 @ /6/ each	6	12
Paráśara, Institutes of (English)	0	12
S'rauta Sútra of Ápastamba, (Text) Fasc. 1-12 @ /6/ each ...	4	8
* Ditto Látyáyana, (Text) Fasc. 2-9 @ /6/ each	3	0
Ditto S'ánkháyana, (Text) Vol. I, Fasc. 1-7; Vol. II, Fasc. 1-4 Vol. III, Fasc. 1-3 @ /6/ each	5	4
*Sáma Veda Saṃhitá, (Text) Vols. I, Fasc. 5-10; II, 1-6; III, 1-7; IV, 1-6; V, 1-8, @ /6/ each Fasc.	12	6
Saṇkhya Sutra Vritti, (Text) Fasc. 1-4 @ /6/ each	1	8
Ditto (English) Fasc. 1-3	2	4
*Sankara Vijaya, (Text) Fasc. 2 and 3 @ /6/ each	0	12
*Sánkhya Pravachana Bháshya, Fasc. 3 (English preface only) ...	0	6
S'ri Bháshyam, (Text) Fasc. 1-3 @ /6/ each	1	2
Suśruta Saṃhitá, (Eng.) Fasc. 1 & 2 @ /12/ each	1	8
*Taittiríya Áranya, (Text) Fasc. 2-11 @ /6/ each	3	12
* Ditto Saṃhita, (Text) Fasc. 9-37 @ /6/ each	10	14
Táṇdya Brahmaṇa, (Text) Fasc. 1-19 @ /6/ each	7	2
Tattva Chintámaṇi, (Text) Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, Fasc. 1-10, Vol. III, Fasc. 1-2, Vol. IV, Fasc. I @ /6/ each	8	4
Tul'si Sat'saí, (Text) Fasc. 1-4 @ /6/ each	1	8
Uvásagadasáo, (Sanskrit and English) Fasc. 1-6 @ /12/	4	8
Varáha Purána, (Text) Fasc. 1-14 @ /6/ each	5	4
*Váyu Puráṇa, (Text) Vol. I, Fasc. 2-6; Vol. II, Fasc. 1-7, @ /6/ each Fasc.	4	8
Vishṇu Smriti, (Text) Fasc. 1-2 @ /6/ each	0	12
Vivádaratnákara, (Text) Fasc. 1-7 @ /6/ each	2	10
Vrihannáradiya Purána, (Text) Fasc. 1-6 @ /6/	2	4
Vrihat Soayambhu Puran, Fasc. I-III	1	2

Tibetan Series.

	Rs.	
Pag-Sam Thi S'iṅ, Fasc. 1-4 @ 1/ each	4	0
Sher-Phyin, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. II, Fasc. 1-3; Vol. III, Fasc. 1, @ 1/ each	9	0
Rtogs *brjod dpag hkhri* S'iṅ (Tib. & Sans.) Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. II. Fasc. 1-3 @ 1/ each	8	0

Arabic and Persian Series.

	Rs.	
'Alamgírnámah, with Index, (Text) Fasc. 1-13 @ /6/ each... ...	4	14
Áin-i-Akbari, (Text) Fasc. 1-22 @ 1/ each	22	0
Ditto (English) Vol. I, Fasc. 1-7, Vol. II, Fasc. 1-5, Vol. III Fasc. 1-5, @ 1/12/ each	29	12
Akbarnámah, with Index, (Text) Fasc. 1-37 @ 1/ each	37	0
Arabic Bibliography, by Dr. A. Sprenger	0	6
Bádshánámah with Index, (Text) Fasc. 1-19 @ /6/ each	7	2
Catalogue of the Persian Books and Manuscripts in the Library of the Asiatic Society of Bengal. Fasc. 1 & 2 @ 1 each	2	0
Dictionary of Arabic Technical Terms, and Appendix, Fasc. 1-21 @ 1/ each	21	0
Farhang-i-Rashídí, (Text) Fasc. 1-14 @ 1/ each	14	0
Fihrish-i-Túsí, or, Túsy's list of Shy'ah Books, (Text) Fasc. 1-4 @ /12/ each	3	0
Futúh-ul-Shám Waqidí, (Text) Fasc. 1-9 @ /6/ each	3	6
Ditto Azádí, (Text) Fasc. 1-4 @ /6/ each	1	8
Haft Ásmán, History of the Persian Mansawi, (Text) Fasc. I ...	0	12
History of the Caliphs, (English) Fasc. 1-6 @ /12/ each	4	8
Iqbálnámah-i-Jahángírí, (Text) Fasc. 1 3 @ /6/ each	1	2
Isabáh, with Supplement, (Text) 51 Fasc. @ /12/ each	38	4
Maásir-ul-Umara, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, Fasc. 1-9; Vol III, 1-10 Index to Vol. I Fasc. X & XI @ /6/ each	11	4
Maghazi of Wáqidí, (Text) Fasc. 1-5 @ /6/ each	1	14
Muntakhab-ul-Tawáríkh, (Text) Fasc. 1-15 @ /6/ each	5	10

* The other Fasciculi of these works are out of stock, and complete copies cannot be supplied.

	Rs.	As.
Muntakhab-ul-Tawáríkh, (English) Vol. II, Fasc. 1–5 @ /12/ each Rs.	3	12
Muntakhab-ul-Lubáb, (Text) Fasc. 1–19 @ /6/ each	7	2
Mu'áşir-i-'Alamgírí, (Text), Fasc. 1–6 @ /6/ each	2	4
Nokhbat-ul-Fikr, (Text) Fasc. 1	0	6
Nizámí's Khiradnámah-i-Iskandari, (Text) Fasc. 1 and 2 @ /12/ each	1	8
Riyáẓu-s-Salatin, (Text) Fasc. 1–4 @ /6/ each	1	8
*Suyúṭy's Itqán, on the Exegetic Sciences of the Koran, with Supplement, (Text) Fasc. 7–10 @ 1/ each	4	0
Ṭabaqát-i-Náṣirí, (Text) Fasc. 1–5 @ /6/ each	1	14
Ditto (English) Fasc. 1–14 @ /12/ each	10	8
Táríkh-i-Fírúz Sháhi of Zia-al-din Barni (Text) Fasc. 1–7 @ /6/ each ...	2	10
Táríkh-i-Baihaqí, (Text) Fasc. 1–9 @ /6/ each	3	6
Táríkh-i-Fírozsháhi, of Shams-i-Siráj Aif, (Text) Fasc. 1–6 @ /6/ each...	2	4
Ten Ancient Arabic Poems, Fasc. 1 & 2 @ 1/8/ each	3	0
Wís o Rámín, (Text) Fasc. 1–5 @ /6/ each	1	14
Zafarnámah, Vol. I, Fasc. 1–9, Vol. II, Fasc. 1–8 @ /6/ each ...	6	6
Tuzuk-i-Jahángirí, (Eng.) Fasc. 1	0	12

ASIATIC SOCIETY'S PUBLICATIONS.

	Rs.	As.
1. ASIATIC RESEARCHES. Vol. VII, Vols. XIII and XVII, and Vols. XIX and XX @ 10/ each ... ... Rs.	50	0
Ditto Index to Vols. I—XVIII	5	0
2. PROCEEDINGS of the Asiatic Society from 1865 to 1869 (incl.) @ /6/ per No.; and from 1870 to date @ /8/ per No.		
3. JOURNAL of the Asiatic Society for 1843 (12), 1844 (12), 1845 (12), 1846 (5), 1847 (12), 1848 (12), 1850 (7), 1851 (7), 1857 (6), 1858 (5), 1861 (4), 1862 (5), 1864 (5), 1866 (7), 1867 (6), 1868 (6), 1869 (8), 1870 (8), 1871 (7), 1872 (8), 1873 (8), 1874 (8), 1875 (7), 1876 (7), 1877 (8), 1878 (8), 1879 (7), 1880 (8), 1881 (7), 1882, (6), 1883 (5), 1884 (6), 1885 (6), 1886 (8), 1887 (7), 1888 (7), 1889 (10), 1890 (11), 1891 (7), 1892 (8), 1893 (11), 1894 (8), @ 1/8 per No. to Members and @ 2/ per No. to Non-Members.		

N. B.—The figures enclosed in brackets give the number of Nos. in each Volume.

	Rs.	As.
4. Centenary Review of the Researches of the Society from 1784—1883...	3	0
General Cunningham's Archæological Survey Report for 1863—64 (Extra No., J. A. S. B., 1864)	2	0
Theobald's Catalogue of Reptiles in the Museum of the Asiatic Society (Extra No., J. A. S. B., 1868)	2	0
Catalogue of Mammals and Birds of Burmah, by E. Blyth (Extra No., J. A. S. B., 1875)	4	0
Introduction to the Maithili Language of North Bihár, by G. A. Grierson, Part II, Chrestomathy and Vocabulary (Extra No., J. A. S. B., 1882)	4	0
5. Anis-ul-Musharrahin	3	0
6. Catalogue of Fossil Vertebrata	3	0
7. Catalogue of the Library of the Asiatic Society, Bengal	3	8
8. Işțiláhát-us-Súfiyah, edited by Dr. A. Sprenger, 8vo.	1	0
9. Ináyah, a Commentary on the Hidayah, Vols. II and IV, @ 16/ each ...	32	0
10. Jawami-ul-'ilm ir-riyází, 168 pages with 17 plates, 4to. Part I ...	2	0
11. Khizánat-ul-'ilm	4	0
12. Mahábhárata, Vols. III and IV, @ 20/ each	40	0
13. Modern Vernacular Literature of Hindustani by G. A. Grierson. (Extra No., J. A. S. B., 1888)	4	0
14. Moore and Hewitson's Descriptions of New Indian Lepidoptera, Parts I—III, with 8 coloured Plates, 4to. @ 6/ each	18	0
15. Sharaya-ool-Islam	4	0
16. Tibetan Dictionary by Csoma de Körös	10	0
17. Ditto Grammar " "	8	0
18. Vuttodaya, edited by Lt.-Col. G. E. Fryer	2	0
Notices of Sanskrit Manuscripts, Fasc. 1–25 @ 1/ each	25	0
Nepalese Buddhist Sanskrit Literature, by Dr. R. L. Mitra ...	5	0

N.B.—All Cheques, Money Orders, &c., must be made payable to the "Treasurer, Asiatic Society," only.

BIBLIOTHECA INDICA:

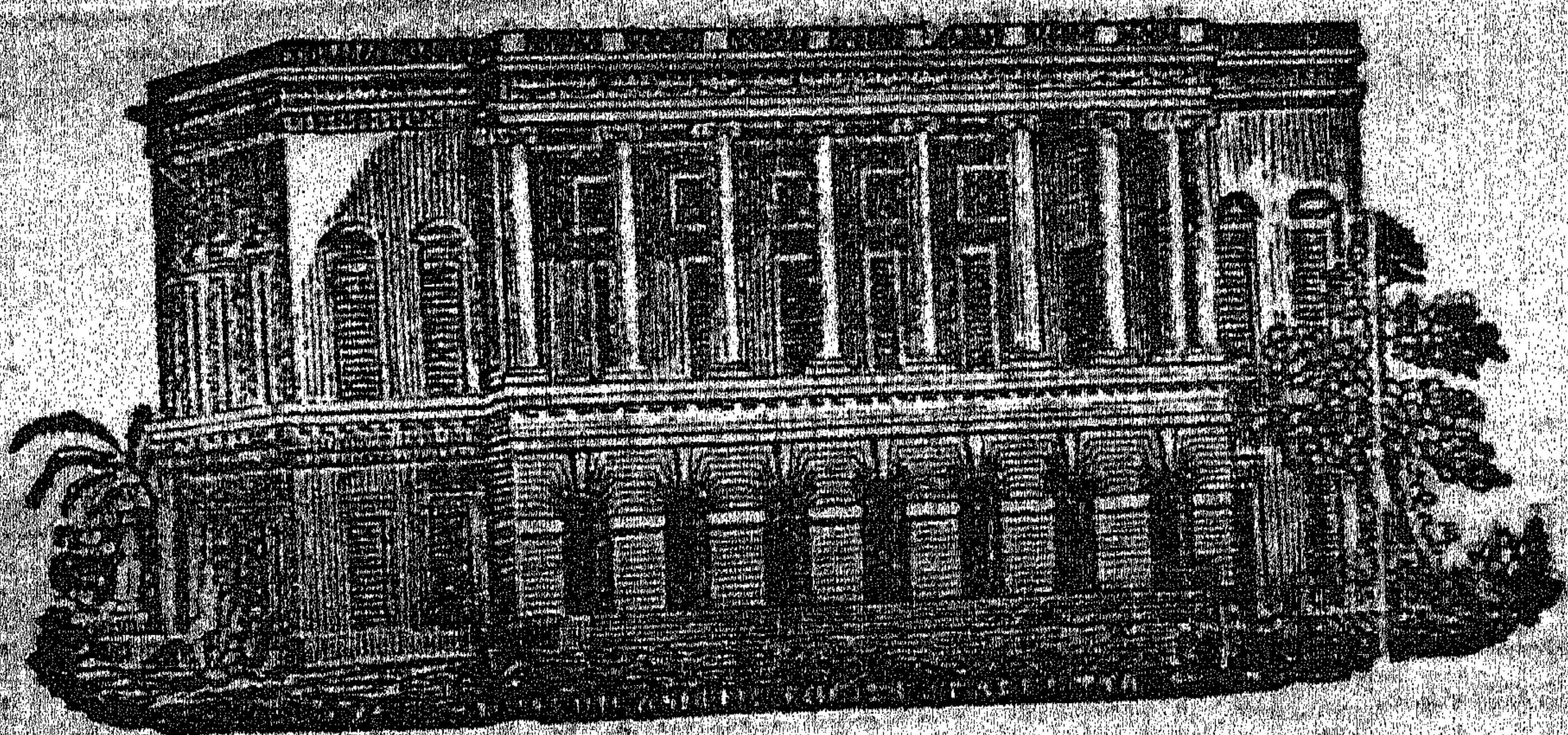
A

COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

NEW SERIES, No. 886.



THE

AVADÁNA KALPALATÁ.

WITH ITS TIBETAN VERSION
NOW FIRST EDITED

BY

RÁYA ÇARAT CANDRA DÁS, BAHÁDUR, C. I. E.,
ASSOCIATE MEMBER, AS. SOC., BENG.,

AND

PANDIT HARI MOHAN VIDYÁBHUṢAṆA,
ORIENTAL LIBRARIAN, AS. SOC., BENG.

VOL. II, FASC. V.

CALCUTTA:

PRINTED AT THE BAPTIST MISSION PRESS,
AND PUBLISHED BY THE
ASIATIC SOCIETY, 57, PARK STREET.

1897.

LIST OF BOOKS FOR SALE

AT THE LIBRARY OF THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL,

No. 57, PARK STREET, CALCUTTA,

AND OBTAINABLE FROM

THE SOCIETY'S AGENTS, MESSRS. LUZAC & CO.

46, GREAT RUSSELL STREET, LONDON, W. C., AND MR. OTTO HARRASSOWITZ, BOOKSELLER, LEIPZIG, GERMANY.

*Complete copies of those works marked with an asterisk * cannot be supplied—some of the Fasciculi being out of stock.*

BIBLIOTHECA INDICA.

Sanskrit Series.

Title		Rs.	As.
Advaita Brahma Siddhi, (Text) Fasc. 1–4 @ /6/ each ...	Rs.	1	8
*Agni Purana, (Text) Fasc. 2–14 @ /6/ each		4	14
Aitarēya Āraṇyaka of the Ṛg Veda, (Text) Fasc. 1–5 @ /6/ each ...		1	14
Aitarēya Brāhmaṇa, Vol. I, Fasc. 1–5 and Vol. II, Fasc. 1–5 Vol. III, Fasc. 1 @ /6/		4	2
Aṇu Bhāṣyam, (Text) Fasc. 1–2 @ /6/ each		1	2
Aphorisms of Sāṇḍilya, (English) Fasc. 1		0	6
Aṣṭasāhasrikā Prajñāpāramitā, (Text) Fasc. 1–6 @ /6/ each ...		2	4
Açvavaidyaka, (Text) Fasc. 1–5 @ /6/ each		1	14
Avadāna Kalpalatā, (Sans. and Tibetan) Vol. I, Fasc. 1–5; Vol. II. Fasc. 1–4 @ 1/ each		9	0
*Bhāmatī, (Text) Fasc. 2–8 @ /6/ each		2	10
Brahma Sūtra, (English) Fasc. 1		0	12
Bṛhaddēvatā (Text) Fasc. 1–4 @ /6/ each		1	8
Bṛhaddharma Purāṇa, (Text) Fasc. 1–5 @ /6/ each		1	14
Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad (English) Fasc. 2–3 @ /6/ each		0	12
Caitanya-Chandrōdaya Nāṭaka, (Text) Fasc. 2–3 @ /6/ each ...		0	12
*Çaṇkara Vijaya, (Text) Fasc. 2 and 3 @ /6/ each		0	12
*Caturvarga Chintāmaṇi (Text) Vols. II, 1–25; III. Part I, Fasc. 1–18. Part II, Fasc. 1–10 @ /6/ each		19	14
*Chāndōgya Upaniṣad, (English) Fasc. 2		0	6
Çrauta Sūtra of Āpastamba, (Text) Fasc. 1–13 @ /6/ each...	Rs.	4	14
* Ditto Lāṭyāyana, (Text) Fasc. 2–9 @ /6/ each		3	0
Ditto Çāṅkhāyana, (Text) Vol. I, Fasc. 1–7; Vol. II, Fasc. 1–4, Vol. III, Fasc. 1–3 @ /6/ each		5	4
Çrī Bhāshyam, (Text) Fasc. 1–3 @ /6/ each		1	2
*Hindu Astronomy, (English) Fasc. 2–3 @ /6/ each		0	12
Kala Mādhava, (Text) Fasc. 1–4 @ /6/ each		1	8
Kātantra, (Text) Fasc. 1–6 @ /12/ each		4	8
Kathā Sarit Sāgara, (English) Fasc. 1–14 @ /12/ each		10	8
Kūrma Purāṇa, (Text) Fasc. 1–9 @ /6/ each		3	6
*Lalita-Vistara, (Text) Fasc. 3–6 @ /6/ each		1	8
Ditto (English) Fasc. 1–3 @ /12/ each		2	4
Madana Pārijāta, (Text) Fasc. 1–11 @ /6/ each...		4	2
Manutikā Saṅgraha, (Text) Fasc. 1–3 @ /6/ each		1	2
*Mārkaṇḍēya Purāṇa, (Text) Fasc. 4–7 @ /6/ each		1	8
Mārkaṇḍēya Purāṇa, (English) Fasc. 1–4 @ /12 each		3	0
Mīmāṁsā Darçana, (Text) Fasc. 3–19 @ /6/ each		6	6
*Nārada Smṛti, (Text) Fasc. 1–3 @ /6/		1	2
Nyayavārtika, (Text) Fasc. 1–3 @ /6/		1	2
*Nirukta, (Text), Vol. III, Fasc. 1–6; Vol. IV, Fasc. 1–8 @ /6/ each		5	4

अपि त्वया कान्तिसखी सखे खे
तुल्येक्षणा लक्ष्ममृगस्य दृष्टा ।
तवोदिता यद्वदनोपमान-
सम्बन्धलब्धा जगति प्रसिद्धिः ॥ २४१ ॥

कथं न किञ्चित् कथयत्ययं मे
गतस्य कान्ताकथनार्थिभावम् ।
परार्थसम्पादनशीलत्वेन
कलावता कस्य कृतोऽनुरोधः ॥ २४२ ॥

अपि त्वया स्निग्धतड़ित्प्रकाशा
घनस्तनी क्वापि मयूर दृष्टा ।
त्वद्बर्हभारस्य सुहृत् स यस्या
विचित्रमाल्यः कवरीकलापः ॥ २४३ ॥

भुजङ्ग काचिद्भवता भुजङ्गी
दृष्टा क्वचित् सा वररत्नचूड़ा ।
विषच्छटाः पश्य यया विसृष्टा
मां दुःसहेऽस्मिन् विरहे दहन्ति ॥ २४४ ॥

---

49 A "मूकं कलङ्काङ्कमवाप्तदोषमविभ्रमं हासविलासहीनम् ।
चिरेण निश्चित्य शशाङ्कमेव पप्रच्छ गच्छन्नरनाथसूनुः ॥"
This Sanskrit S'loka should have been placed in Juxta-position
This Sanskrit S'loka No. 210 has no correspond-

རི་དྭགས་ཁྱོད་ཀྱི་ཡིད་སྤྲུབས་ས་དག་གི།
དོ་རའི་ཙེད་འཛེ་མ་དེ་མཐོང་ངམ་ཅི།
གང་གིས་ཟུར་མིག་ཟླ་དཔལ་ཆ་དག་གིས།
རི་དྭགས་ཉམས་ནི་ནགས་ན་མཛེས་སམ་སྙམ། 245

ཉམས་འཕྲུལ་སྐྱེ་ས་ཡལ་འདབ་མཛེས་པའི་མཚོ།
རོལ་པས་ཉམས་པར་གཡོ་བའི་བུད་མེད་དག
ཕྱུར་བུ་ཅན་དེ་འཁྲི་ཤིང་བཞིན་དུ་ནི།
ནགས་མཐར་ནགས་བདག་ཁྱོད་ཀྱིས་མཐོང་ངམ་ཅི། 246

དེ་ནི་སྤྲིན་དང་མཚུངས་པ་ནགས་ཚལ་གྱི།
གླང་པོ་འདི་ཡིས་ཟླ་བའི་ཆ་བཞིན་དུ།
གསེར་གྱི་རྒྱུ་ཤིང་ཡོངས་འཁྱུད་ལ་ཆགས་ནས།
གླངས་ནས་ཁྱེར་རམ་བསྐྲིབས་པ་མ་ཡིན་ནམ། 247

དེ་སྐད་ནགས་ཚལ་སྐྱིབས་ཉམས་སུ། ཟླ་བཙོལ་རབ་བརྗོད་དེ་ཡིས་ནི།
སྒྲ་ངན་གྱིས་བཞིན་མཚན་མོ་ནི། ཟླ་བའི་བཞིན་རས་མདོག་བྲལ་སོང་། 248

དེ་ཡིས་ཀླུ་ཡི་གནས་དང་ཉེ། ངོགས་འགྲམ་དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་དུ།
དལ་གྱིས་ཞུགས་ཏེ་དྲང་སྲོང་ཆེ། ཤིང་ཤུན་ཅན་ལ་རབ་ཏུ་དྲིས། 249

सारङ्ग सारङ्गविलासिनी किं
दृष्टा त्वया मन्मथपार्थिवस्य ।
यस्याः कटाक्षोत्पलसंविभागै-
र्विभान्ति मन्ये गहने हरिण्यः ॥ २४५ ॥

अपि त्वया विभ्रमजन्मभूमि-
र्वनस्पते पल्लवपेशलोष्ठी ।
लीलाविलोला ललना वनान्ते
लतेव दृष्टा स्तवकावनम्रा ॥ २४६ ॥

अनेन नूनं वनकुञ्जरेण
सा राजरम्भा परिरम्भलौल्यात् ।
आकृष्य नीता घनसन्निभेन
संच्छादिता वा शशिनः कलेव ॥ २४७ ॥

इति काननकुञ्जेषु तस्योन्मादप्रलापिनः ।
शोकादिव विवर्णेन्दुवदना रजनी ययौ ॥ २४८ ॥

स नागभवनासन्नतीरोपान्तं तपोवनम् ।
शनैः प्रविश्य पप्रच्छ महर्षिं वल्कलायनम् ॥ २४९ ॥

འདིར་ནི་འབྲལ་བས་སེམས་དམན་སྲུ་ངན་ཤུགས་རངས་ཀྱིས་སྤྲར་བའི།
འདོད་པའི་མི་ཡི་དུ་བས་སྒོ་ཆགས་ལྷས་མ་གཅིག་པ་ཅན།
རི་བོང་ཅན་གྱི་མཛེས་སྡུག་དྲིགས་གྱུས་ཞི་བྱེད་རི་དྭགས་མིག།
མི་འམ་ཅི་མོ་སྲུ་ཞིག་ཐུབ་པ་མཆོག་གིས་གཟིགས་སམ་ཅི། 250

ཞེས་བ་མཛེས་མ་དང་བྲལ་ཞིང་། སྨྲོན་པའི་སྐབས་ནི་ཐོབ་གྱུར་པ།
དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ཐུབ་པ་ཡིས། ཡོངས་སུ་ཤེས་ནས་དེ་ལ་སྨྲས། 251

ཁྱོད་ནི་ངལ་གསོ་དབུགས་ཕྱུང་ལ། ཡོངས་སུ་གདུང་བ་འདི་གཏང་མཛོད།
ཁྱོད་ཀྱི་དགེ་མ་ཡིད་ཀྱི་ནི། ཟླ་བའི་འོད་དེ་བདག་གིས་མཐོང་། 252

ཁྱུ་ཉམས་རི་དྭགས་མོ་བཞིན་དུ། འཚོ་བ་ལ་ཡང་ལྟོས་པ་མེད།
གླང་མོ་ཞགས་པས་བྲངས་པ་བཞིན། དེ་ནི་ཁྱོད་ཀྱི་བསམ་པས་འཚོ། 233

ལག་པ་དག་ལ་བཞིན་གྱི་པདྨ་ཉལ་ཞིང་ཡལ་འདབ་མལ་སྟན་ལ།
གདུང་བས་ཉེན་ཅིང་གཡོ་བའི་ཚིག་ལྡན་རི་མོ་ཀུན་དུ་ཉམས་པའི་ལུས།
རི་བ་བཅས་ལ་བརྟེན་པ་བཞིན་དུ་ཟློ་གྲོས་ཁྱོད་བྲལ་འཁྲུགས་གྱུར་པ།
དེ་ཡི་ཡིད་ནི་འགར་ཡང་ཅི་ཡང་ངལ་གསོས་ཉིད་དུ་འགྱུར་མ་ཡིན། 254

ཕྲིན་པ་མི་འམ་ཅི་ཡི་བདག། ཡབ་ཀྱི་ཁྱིམ་ན་བདག་གནས་སོ།
ཁྱོད་ནི་མྱུར་དུ་ཤོག་ཅིག་ཅེས། དེ་ཡིས་ཁྱོད་ལ་ཡང་དག་བསྟན། 255

इह विरहविचिन्ताशोकनिश्वासमूर्च्छे-
न्मदनदहनधूमश्यामसक्तैकवेणी।
अपि शमितशशाङ्कोद्दामसौन्दर्य्यदर्पा
मुनिवर हरिणाक्षी किन्नरी कापि दृष्टा॥ २५०॥

इति कान्तावियुक्तस्य प्राप्तस्योन्मादिनीं दशाम्।
मुनिः श्रुत्वा वचस्तस्य परिज्ञाय तमब्रवीत्॥ २५१॥

समाश्वसिहि विश्राम्य सन्तापस्त्यज्यतामयम्।
दृष्टा सा तव कल्याणी मया मानसचन्द्रिका॥ २५२॥

यूथभ्रष्टेव करिणी निरपेक्षापि जीविते।
पाशाकृष्टेव हरिणी धार्य्यते सा त्वदाशया॥ २५३॥

पाणौ शेते वदनकमलं प्रस्तरे पल्लवानां
तापक्लान्ता तरलवचनस्पंशिनीगात्रलेखा।
आशाबन्धे धृतिरिव मतिस्त्वद्वियोगाकुलाया
स्तस्या नैव क्वचिदपि मनः किन्तु विश्रान्तिमेति॥ २५४॥

द्रुमस्य किन्नरपतेः स्थिताहं भवने पितुः।
आगन्तव्यं त्वया तूर्णमिति त्वां सन्दिदेश सा॥ २५५॥

བརྩོན་འགྲུས་སྙིང་སྟོབས་སྟོབས་དང་ཐབས། བརྟན་དང་སྨྲོ་ལྡན་རྣམས་ཀྱིས་ཀྱང་།
བསྒྲོད་མིན་མི་འམ་ཅི་ཡི་ནི། གྲོང་ཁྱེར་ལམ་ཡང་རིམ་པས་བཀོད། 256

གང་གི་འོད་འཛམ་རིག་པ་ཡིས། ཕྱོགས་རྣམས་སེར་པོ་ཉིད་འགྱུར་བ།
རིན་ཅན་སོར་གདུབ་འདི་ཡང་ནི། དེ་ཡིས་ཁྱོད་ཀྱི་ཆེད་དུ་བྱིན། 257

ཞེས་བརྗོད་ཀུན་དགའི་བདུད་རྩི་ཡིས། དྲན་བཞིན་བརྟན་པ་དག་གི་རྟེན།
སོར་གདུབ་དག་ནི་དེ་ལ་བྱིན། ལམ་ཡང་ཐུབ་པས་རབ་དུ་བཀོད། 258

དེ་ཡིས་བསྟན་པའི་ལམ་དག་ནི། ཐབས་དང་བཅས་པས་མི་བདག་བྲུ།
བརྟན་པས་ནོར་འཛིན་གནས་པ་ཡི། ཕྱོགས་སུ་འགྲོ་བར་རབ་དུ་བཙམས། 269

སྨན་ཆེན་བདུད་རྩི་ལེགས་གྲུབ་པ། མར་གྱིས་སྨིན་པ་འཐུངས་ནས་ནི།
རྫུ་འཕྲུལ་སྟོབས་ཀྱི་བདག་ཉིད་ཐོབ། མཚོན་ཆ་དང་བཅས་དཔལ་གྱིས་སོང་། 260

རྫུ་འཕྲུལ་གྱིས་ནི་ལམ་དུ་དེའི། ཉེར་མཁོ་ཐམས་ཅད་ཉེར་གནས་གྱུར།
སྙིང་སྟོབས་གྲོགས་དང་ལྡན་རྣམས་ཀྱི། གྲུབ་པ་ཕུན་ཚོགས་རང་དབང་ཉིད། 261

དེ་ནས་རིག་འཛིན་བུ་མོ་ནི། རྩེ་དགའ་རྒོད་པ་ལྷུར་མཛེས་པ།
གངས་ཅན་བགོལ་ནས་དེ་ཡིས་ནི། ཀུ་ཀྲུ་ལྦ་ཡི་རི་ལ་སླེབ། 262

འབྲས་བུའི་སྐྱེས་གྱིས་ཁས་བླངས་བྱས། དེར་ནི་སྤྲེ་འུའི་ཁྱུ་ཡི་བདག
རླུང་ཤུགས་ཞེས་པ་ལ་ནོན་ནས། རི་བོ་དེ་ནི་དེ་ཡིས་འགོངས། 263

वीर्य्यसत्वबलोपायधैर्य्योत्साहवतामपि ।
अगम्ये किन्नरपुरे क्रमाद्वर्त्म शशंस च ॥ २५६ ॥

इदञ्च त्वत्कृते दत्तं तया रत्नाङ्गुलीयकम् ।
यस्य स्निग्धप्रभाभ्यङ्गैर्दिशो यान्ति पिशङ्गताम् ॥ २५७ ॥

इत्यानन्दसुधासिक्तमुक्त्वा धैर्य्यावलम्बनम् ।
अङ्गुलीयं ददौ तस्मै मार्गञ्चाकथयन्मुनिः ॥ २५८ ॥

पथा तदुपदिष्टेन सोपायेन नृपात्मजः ।
धीरः प्रचक्रमे गन्तुं धनदाध्युषितां दिशम् ॥ २५९ ॥

स सिद्धां घृतपाकेन सुधां पीत्वा महौषधिम् ।
लब्धर्द्धिबलमाहात्म्यः सायुधः प्रययौ शनैः ॥ २६० ॥

ऋद्ध्या सन्निहितं तस्य सर्व्वोपकरणं पथि ।
अभूत् सत्वसहायानां स्वाधीनाः सर्व्वसम्पदः ॥ २६१ ॥

अथ विद्याधरवधूविलासहसितद्युतिम् ।
हिमवन्तमतिक्रम्य कुक्कुलाद्रिमवाप सः ॥ २६२ ॥

फलोपहारैः स्वीकृत्य तत्र वानरयूथपम् ।
वायुवेगाख्यमारुह्य स तं शैलमलङ्घयत् ॥ २६३ ॥

དེ་ནས་ལྷག་གི་ལམ་ཞེས་པའི། ས་འཛིན་དག་ནི་རབ་ཏུ་གལ།
འཇིགས་སུ་རུང་བའི་སྤྲུལ་ཆེན་ནི། བགེགས་ཀྱི་ཚོགས་བཞིན་མདའ་ཡིས་བསྣུན། 264

འདོད་པའི་གཟུགས་ཅན་སྲིན་མོ་ནི། རྒྱུད་མང་སྒྲ་ཡིས་དབང་བྱས་ནས།
འདོད་པའི་གཟུགས་ཀྱི་རི་བོ་འདས། མི་འམ་ཅི་མོའི་བདག་པོ་སོང་། 265

དེ་ནས་རྒྱུན་གཅིག་རི་བོ་ལ། ཡང་ཡང་མཆོན་གྱི་རྩེ་མོ་ཡིས།
བསྣུན་ཅིང་བཀོས་པ་དག་གིས་ནི། སྤོབས་ལྡན་ཤིན་ཏུ་རྟུལ་བས་འཇོམས། 266

དེ་ནས་རྡོ་རྗེ་ཅན་ཞེས་པའི་ རི་བོ་རབ་དྲག་དེ་ཡིས་འཇོམས།
སྲིན་མོ་ཤ་ནི་འཚོལ་བྱེད་པ། བྱ་རྒོད་གཟུགས་ཅན་ཡང་དག་མཐོང་། 267

ཤ་ལྡན་རི་དྭགས་ལྷགས་པ་ནི། ཡོངས་སུ་བསྐྱུར་ནས་ཀུན་ཏུ་གཡོགས།
རི་བོ་དེ་ཡི་གནས་ཀྱི་རྩེར། དེ་ཡི་ལུས་ནི་གཡོ་མེད་འཁོད། 268

མཚན་གྱི་བྱ་རྒོད་གཟུགས་ཅན་ནི། ཤ་ལ་ཆགས་བས་དེ་བླངས་ནས།
འཇིགས་རུང་གཟུགས་ཀྱིས་བཟའ་བའི་ཕྱིར། རི་རྩེའི་སྟེང་དུ་ཉམས་པར་བཀོད། 269

བརྩོན་འགྲུས་ཅན་གྱིས་རི་དྭགས་ཀྱི། པགས་པ་བཏང་ནས་དེ་བསད་དེ།
སེང་ལྡིང་སྟུག་པོས་ཁེངས་པ་ཡི། སེང་ལྡིངས་འཛིན་དག་ཏུ་ཕྱིན། 270

དེ་ཡི་ཕུག་ཞུགས་རྡོ་བསལ་བས། གྲང་དང་ཚ་དང་མུན་པ་སྤྲུལ།
སྲིན་པོ་ལ་སོགས་འཇིགས་པ་དག། འཕྲོག་པའི་སྐད་ནི་ཆེན་པོ་ཐོབ། 271

अथाजपथनामानमतिचक्राम भूधरम्।
निहत्याजगरं घोरं विघ्नसंघमिवेषुणा ॥ २६४ ॥

वीणास्वनैर्वशीकृत्य राक्षसीं कामरूपिणीम्।
कामरूपाद्रिमुल्लङ्घ्य प्रययौ किन्नरीप्रियः ॥ २६५ ॥

बलवान्मुद्गराघातनिखातैः शस्त्रशङ्कुभिः।
एकधारं ततः शैलमारुरोहातिसाहसः ॥ २६६ ॥

अथोग्रतरमारुह्य वज्रकाख्यं स पर्व्वतम्।
गृध्ररूपां समालोक्य राक्षसीं पिशितैषिणीम्॥ २६७ ॥

परिवृत्तेन संच्छन्नः समांसमृगचर्म्मणा।
स पादमूले तस्याद्रेस्तस्थौ निश्चलविग्रहः ॥ २६८ ॥

मांसलुब्धा तमुत्क्षिप्य गृध्ररूपा निशाचरी।
निदधे शिखरस्याग्रे भोक्तुं भीषणविग्रहा ॥ २६९ ॥

मृगचर्म्म समुत्सृज्य तां निहत्य स वीर्य्यवान्।
नीरन्ध्रखदिराकीर्णं प्राप खादिरभूधरम्॥ २७० ॥

प्रविश्य तद्गुहां लेभे शिलां व्यस्य महौषधिम्।
शीता तपतमःसर्पराक्षसादिभयापहाम्॥ २७१ ॥

འཁྲུལ་འཁོར་རི་གཉིས་རབ་བསྡིབས་པས། སྒྲོག་ནི་འཕྲོག་པར་དེ་ཡིས་སྤེལ།
འཁྲུལ་འཁོར་ཕྱུར་པ་མདའ་རྩེ་ཡིས། བཅད་ནས་གཡོ་བ་མེད་པར་བྱས། 272

འཁྲུལ་འཁོར་ཕྱུར་པ་བཅད་ནུས་ཀྱིས། འཁྲུལ་འཁོར་སྒྲ་ནི་རིམ་བཅོམ་ཞིང་།
འཁྲུལ་འཁོར་འཁོར་ལོ་བཅད་དེ་བཞིན། ལྕགས་ཀྱི་འཁྲུལ་འཁོར་སྦྲུར་བའོ། 273

དྲག་དུ་སྟུན་བྱེད་སྐྱེས་བུ་གཉིས། བཟོད་དཀའ་ཞུག་གི་འཁྲུལ་འཁོར་གཉིས།
དེ་བཞིན་རྒྱ་སྲིན་སྲིན་པོའི་སོའི། འཁྲུལ་འཁོར་དྲག་པོས་འཇོམས་པ་གཉིས། 274

འཇིགས་རུང་སྲུན་པ་ཟབ་པའི་ཕྱུག། ཁྲོན་པ་གཉིས་ཀྱང་ནོམ་པར་འགོངས།
རྒྱ་བོ་ཆེན་པོ་ཡང་དག་བཀག། དེ་ངོགས་སྲིན་པོ་ནམས་བསད་ནས། 275

མཆེ་བའི་དྲག་ལྡན་གནས་པའི་ཚོ། བ་ཧུཾ་ག་ཞེས་ཐར་འགྲོད་དང་།
གང་འབྲས་མི་འམ་ཅི་དག་གི། འབངས་ནམས་དྲུ་བའི་སྒྲ་དག་གི། 276

དེ་འགྲོའི་སེམས་ལ་བགེགས་བྱེད་པ། ཀླུང་ནི་དུ་བ་ཅན་དག་དང་།
དེ་བཞིན་གོད་བ་ཅན་ཞེས་པ། གོད་པས་སེམས་ལ་གནོད་བྱེད་དང་། 277

མི་འམ་ཅི་མོ་ནམས་དག་གིས། གང་གི་འབྲས་དུ་གདུང་སྟེར་བ།
ཐར་བགྲོད་གཞན་ཡང་བརླས་བྱས་ཏེ། དེ་འོག་སྒྲ་ལྡན་ཀླུང་ཅན་ཕྱིན། 278

དེ་ནས་དེ་ལ་ཐར་འདོད་པས། འབྲས་ཀྱི་སྒྲ་ཡི་འཁྲི་ཤིང་བརྟུང་།
ཀླུང་གིས་བསྐྱལ་བས་ཕ་རོལ་ཕྱིན། སྒྲ་ཡི་འཁྲི་ཤིང་དེ་ཡིས་ཐོབ། 279

स यन्त्रपर्व्वतौ प्राप्य संघट्टैः प्राणहारिणम्।
यन्त्रकीलं शराग्रेण छित्वा चक्रे विनिश्चलौ॥ २७२॥

यन्त्रकीलसमुच्छेदैर्यन्त्रद्वारं विदार्य्य सः।
छेदनं यन्त्रचक्रस्य यन्त्रयुक्तौ तथायसौ॥ २७३॥

तीव्रप्रहारौ पुरुषौ यन्त्रमेषौ च दुःसहौ।
यन्त्रोग्रदन्तनिष्पेषौ तथा मकरराक्षसौ॥ २७४॥

घोरान्धकारगम्भीरं गुहाकूपं विलङ्घ्य च।
तुङ्गां सरितमुत्तीर्य्य हत्वा तत्कूलराक्षसान्॥ २७५॥

आशीविषावृतजलां पतङ्गाख्याञ्च निम्नगाम्।
रोदिनीञ्च नदीं तीरे यस्याः किन्नरचेटिकाः॥ २७६॥

कुर्व्वन्ति रोदनरवैर्विघ्नं तद्गतचेतसाम्।
तद्विधां हासिनीं नाम हासापहृतचेतसाम्॥ २७७॥

दिशन्ति पुलिने यस्या व्यसनं किन्नराङ्गनाः[१]।
लङ्घयित्वापगाश्चान्या वेत्रां प्राप्य नदीं ततः॥ २७८॥

कूलवेत्रलतालम्बी तस्यामथ तितीर्षया।
पवनप्रेरितां पारवेत्रवल्लीमवाप सः॥ २७९॥

---

१ H reads किन्नरीगणाः।

རེ་བ་བཞིན་དུ་རབ་རིང་བ། དེ་ཡི་ཕ་རོལ་འགྲམ་དུ་ཕྱིན།
མི་འམ་ཅི་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་ནི། རབ་གསལ་ཤེལ་གྱི་ཁང་པ་མཐོང་། 280

དེ་ཡི་དཔལ་ལུས་ནང་དུ་ཞུགས། གསེར་གྱི་བད་ལྷན་མཛེས་བར་ཕྱིན།
དེ་ཡི་ངོགས་ཀྱི་ཤིང་ལ་འཛེགས། རིན་ཆེན་འཁྲི་ཤིང་གིས་འཁྲིལ་བས་ནས། 281

དེར་ངེས་ཆུ་སྐྱེས་དཔལ་ཚོགས་ཀྱི། དྲི་བཟང་སེར་པོར་གྱུར་བའི་ཆུ།
མི་འམ་ཅི་མོ་ནམ་དག་གིས། གསེར་གྱི་བུམ་པར་ལེན་པ་མཐོང་། 282

དེར་ནི་བུམ་འདེགས་ངལ་བ་ཡིས། གཟིར་བ་ཅིག་ཙམ་དེས་མངོན་ཕྱོགས།
ལག་པས་ཧྲེན་ནས་གྲོགས་བྱས་ཏེ། དཔལ་བུ་ཡིས་ནི་དེ་ལ་དྲིས། 283

མ་མ་སྲུ་ཡི་ཆེད་དུ་ནི། ཆུ་འདི་འབད་ནས་ལེན་པར་བྱེད།
གང་ལ་གུས་པས་ཁྱེད་རྣམས་ནི། ཡོངས་སུ་ངལ་འདི་ཅི་མི་བྱེད། 284

དེ་ལྟར་ཚིག་སྙན་གྱིས་དེས་དྲིས། མཛེས་སྡུག་སྙན་སྒྲ་ལྡན་པ་ཡིས།
ཕྱོགས་སུ་སྐད་ཅིག་གིས་ལྟུང་མ། དེ་ཡིས་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ། 285

མི་ཡི་དྲི་སྣང་དག་བུའི་སྐྱུར། རྟག་ཏུ་དྲི་བཟང་ཆུ་རྣམས་ཀྱིས།
མི་འམ་ཅི་རྒྱལ་ཡབ་ཀྱི་ནགས། ཡིད་འཕྲོག་མ་ནི་ཁྲུས་བྱེད་དོ། 286

ཞེས་པ་དེ་ཡིས་བརྗོད་ཐོས་ནས། སྐད་ཅིག་བདུད་རྩིས་བྲན་པ་བཞིན།
དེ་ཡི་རྟགས་མཚན་སོར་གདུབ་ནི། གསེར་གྱི་བུམ་པར་དེ་ཡིས་འཕངས། 287

तया प्राप परं पारमाशयेवातिदीर्घया ।
ददर्श किन्नरपुरं स्फार[1]स्फटिकमन्दिरम् ॥ २८० ॥

प्रविश्य स शनैः प्राप्य कान्तां कनकपद्मिनीम् ।
तत्तीरतरुमारुह्य तस्थौ रत्नलतावृतः ॥ २८१ ॥

स ददर्शाम्बुजरजःपुञ्जैः सुरभिपिञ्जरम् ।
हेमकुम्भैर्जलं तत्र नयन्तीः किन्नराङ्गनाः ॥ २८२ ॥

कुम्भोत्क्षेपे श्रमार्त्तायास्तत्रैकस्याः समेत्य सः ।
हस्तालम्बेन साहाय्यं कृत्वा पप्रच्छ तां शनैः ॥ २८३ ॥

मातः कस्य कृते तोयमिदं यत्नेन नीयते ।
यद्भक्त्या गण्यते नायं भवतीभिः परिश्रमः ॥ २८४ ॥

इति तेन प्रियगिरा सा पृष्टा तमभाषत ।
माधुर्य्यधुर्य्यसौन्दर्य्ये पक्षपातवती क्षणात् ॥ २८५ ॥

मर्त्त्यामोदापनोदाय सदा सुरभिवारिभिः ।
पितुः किन्नरराजस्य गिरा स्नाति मनोहरा ॥ २८६ ॥

तयेति कथितं श्रुत्वा सुधासिक्त इव क्षणात् ।
स हेमकुम्भे चिक्षेप तदभिज्ञाङ्गुलीयकम् ॥ २८७ ॥

---

१ $\frac{W}{1}$ स्फुरत्स्फाटिकमन्दिरम् ।

དེ་ནས་སོར་གདུབ་མངོན་པར་འཕྲོག་བྱེད་དེ་ནི་བྲུམ་པ་ལས།
ཁྲས་བྱེད་ཡིད་འཕྲོག་མ་ཡི་ནུ་མའི་བྲུམ་པ་བྱུང་ལ་ལྷུང་།
གང་གི་གཟུགས་བརྟན་ཟེར་ལྡན་རིན་ཆེན་འོད་ཟེར་རི་མོ་ཡིས།
མྱུར་དུ་སིན་མོ་འདེབས་པའི་རྫི་དགའ་དག་དང་མཚུངས་པ་ཐོབ། 288

ན་རྗེས་རིན་ཆེན་སོར་གདུ་བ་ལུས་མེད་གདམ་དག་ནང་སོང་བ།
རང་གི་རྗེས་སུ་ཆགས་པ་གཟུགས་ཅན་བཞིན་དུ་བརྟགས་བྱས་ནས།
བདག་པོ་འོངས་པར་ཤེས་ཏེ་འདི་ནི་ཁྱོད་ཀྱིས་གང་ལས་ཐོབ།
ཅེས་བ་དེ་ཡིས་འབངས་མོ་ལ་ནི་རངས་པ་བཞིན་དུ་སྨྲས། 289

དེ་ནས་འབངས་མོས་དེ་ལ་སྨྲས། ལྷ་མོ་རྗེ་ང་བུའི་ངོགས་དག་ན།
ཡིད་སྨྲུབས་མངོན་དུ་གྱུར་པ་བཞིན། དར་བབ་མཛེས་བ་འགའ་ཞིག་མཆིས། 290

གང་མཐུ་སྟོང་པོ་ཅན་གྱི་རྒྱ། གུར་གུམ་མཛེས་པ་ཉིད་བསྟེན་པ།
སོར་གདུབ་འདི་ནི་དེ་ཉིད་ཀྱིས། གསེར་གྱི་བྲུམ་པ་འདི་རུ་འཐངས། 291

ཞེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་སྟན་ཐོས། གཟུགས་བཟང་ལྡན་པ་ཡིད་འཕྲོག་མས།
ཁྱོ་ནི་འོངས་པར་ངེས་བྱས་ནས། དེ་ཉིད་དེ་ནི་འགུགས་སུ་བཏང་། 292

དེ་ཡིས་རབ་སྤྲས་སྐྱིད་ཚལ་གྱི། ཁང་བར་བཀོད་པའི་མཛེས་པ་ནི།
ཀུ་སུད་ཅན་གྱི་ཟླ་བ་བཞིན། ཡིད་འཕྲོག་མ་ནི་སོང་བས་མཐོང་། 293

स्नान्त्यास्ततस्तदभिहारि मनोहरायाः
कुम्भात्पपात कुचकुम्भयुगेऽङ्गुलीयम् ।
यस्यांशुमत्प्रतिमरत्नमयूखलेखाः
क्षिप्रं नखक्षतविलासतुलामवापुः ॥ २८८ ॥

मूर्त्तं ततः स्वमनुरागमिवाकलय्य-
रत्नाङ्गुलीयकमनङ्गकथान्तरङ्गम् ।
सा कान्तमागतमवेत्य कुतस्त्वयेदं
सम्प्राप्तमित्यवददुच्छ्वसितेव दासीम् ॥ २८९ ॥

ततस्तामवदद्दासी देवि पुष्करिणीतटे ।
स्थितः कोऽपि युवा कान्तः प्रत्यक्ष इव मन्मथः ॥ २९० ॥

निक्षिप्तं हेमकुम्भेऽस्मिन्निदं तेनाङ्गुलीयकम् ।
भजते यत्प्रभागर्भं पयः कुङ्कुमकान्तताम् ॥ २९१ ॥

इति तद्वचनं तन्वी प्रियं श्रुत्वा मनोहरा ।
निश्चित्य दयितं प्राप्तमानिनाय तयैव तम् ॥ २९२ ॥

तया गुप्ततरे न्यस्तं कान्तमुद्यानमन्दिरे ।
कुमुद्वतीव शशिनं गत्वापश्यन्मनोहरा ॥ २९३ ॥

ཕན་ཚུན་ལྟ་བར་བྱེད་པའི་རྣམ་འཕྲུལ་དང་།
འབྲལ་བའི་ཡོངས་གདུང་རྣམ་པར་ཆད་པ་དང་།
དེ་དག་རབ་དགའ་ཉམས་སུ་མྱོང་གྱུར་པ།
ལུས་མེད་ཡན་ལག་ཀུན་ལྡན་མཛེས་པ་ཐོབ། 294

བྲལ་བའི་དུས་སུ་གང་གང་ཅུང་ཟད་བསམས་པས་ནང་དུ་གོམས་བྱས་དང་།
གང་གང་རབ་དགའ་རབ་གྱིས་ཡིད་སྨྲུང་འགྲོགས་ཀྱི་འདེབ་དང་སྟོན་པ་དང་།
གང་གང་མཛད་པར་མཚོངས་དགའ་བར་སྐྱིད་ལྡན་བུང་བོར་འོས་གྱུར་བ།
དེ་དེ་ཐམས་ཅད་མཛའ་གཅུགས་སྐལ་བཟང་ཁྱོ་ཤུག་དེ་གཉིས་དག་གིས་བྱས། 295

དེ་རྗེས་སྤྱོད་ཚུལ་བསྒྲིབས་པ་ནི། ངོ་ཚ་ལྡན་པའི་ཡིད་འཕྲོག་མས།
བཤད་ནས་ཕ་མ་དག་ལ་ནི། བདག་ཉིས་ཡི་ཡིད་འབྱུང་བསྟན། 296

དེ་ནས་མི་འམ་ཅི་ཡི་རྒྱལ། དེ་ལ་ཁྲིས་པས་མཆུ་བསྐྱོད་ཅིང་།
བུ་མོའི་བདག་ནི་མཐོང་བའི་ལམ། ཡོངས་སུ་བཏང་ནས་རབ་སྨྲས་པ། 297

ཀྱེ་མ་མི་འོས་སྐྱེ་བོ་ལ། ཆ་ཡིས་བག་མེད་ལྷུང་གྱུར་པ།
སྤྱོད་ཚུལ་ངན་པ་བཀུས་ཀྱང་ནི། ཆགས་པ་ཉིད་ནི་ཁྱོད་མི་གཏོང་། 298

ཁྱོད་ཀྱི་མཛེས་སྡུག་ལང་ཚོལ། ལྷ་རྣམས་ཀྱིས་ནི་རེག་བྱ་འདི།
ཀྱེ་མ་མི་དང་མཛའ་བ་ཡིས། བུ་ངན་བྱ་འོས་ཉིད་དུ་གྱུར། 299

परस्परालोकनविभ्रमेण
वियोगसन्तापनिवेदनेन।
तयोः प्रहर्षानुभवेन लेभे
शोभामशेषाङ्गवतीमनङ्गः ॥ २९४ ॥

यद्यत् किञ्चिद्विरहसमये चिन्तयाभ्यस्तमन्त-
र्यद्यत् प्रौढप्रमदसुहृदा मन्मथेनोपदिष्टम्।
यद्यत् प्रेम्णः सदृशमुचितं यद्यदौत्सुक्यराशे
स्तत्तत्सर्व्वं प्रणयसुभगं दम्पती चक्रतुस्तौ ॥ २९५ ॥

ततः प्रच्छन्नवृत्तान्तं लज्जमाना मनोहरा।
निवेद्यादर्शयत् पित्रोः पतिं भूमिमनोभवम् ॥ २९६ ॥

ततः किन्नरराजस्तां कोपप्रस्फुरिताधरः।
उवाच दर्शनपथं परिहृत्यात्मजापतेः ॥ २९७ ॥

अहो प्रमादपतिता दैवादनुचिते जने।
न विमुञ्चसि दुर्वृत्ते श्लाघ्यमानापि रक्तताम् ॥ २९८ ॥

यौवनोत्पत्तिलावण्यं स्पृहणीयं दिवौकसाम्।
बत प्रयातमेतत्ते मर्त्यस्नेहेन शोच्यताम् ॥ २९९ ॥

མཐོན་པོའི་རིགས་ལས་སྐྱེས་གྱུར་ཅིང་། ཕྱུག་པོའི་ཡང་ཚོ་རབ་གྱིས་པ།
ཕྲུར་འགྲོ་འཁྲུགས་པས་ནོམ་ཉམས་པ། ཁྱོད་ནི་ཤིན་ཏུ་འོག་ཏུ་འགྲོ། 300

མཁས་པ་ཆགས་བྲལ་སྐྱིད་བྱེད་ཅིང་། རིགས་ནི་སྐྱེངས་པར་བྱེད་པ་སོ།
མི་བསྐྱུན་རིགས་བཞིན་དྲི་མ་ཅན། ཁྱོད་ནི་སུ་ཡང་མི་འདོད་དོ། 301

གཟུགས་ཅམ་གྱིས་ནི་ཁྱོད་ཚིམ་ནས། གལ་ཏེ་མི་ཡི་དབང་གྱུར་ན།
གསེར་ལས་སྤྲུལ་པ་སྐྱེས་བུ་ཡི། གཟུགས་དང་རྩེ་དགའ་ཅིས་མི་བྱེད། 302

མཐུ་དང་ཡོན་ཏན་གྱིས་དམན་པ། སྐྱེས་བུ་རབ་མཛེས་དབྱིབས་ཅན་གྱི།
མཛེས་སྡུག་རི་མོར་བྲིས་པ་ཡི། སྐྱེས་བུ་ཡི་བཞིན་རྩིག་པ་མཛེས། 303

འབྲེལ་དཀན་ངོ་ཚས་སྡིག་ཅན་མ། ཁྱོད་ཁྱོ་བདག་གིས་གསད་པར་བྱ།
ཁྱོད་སྡོང་ལ་འདོད་ལྷ་ནམས་ཀྱི། བཞིན་ནི་བདག་གིས་ལྷ་མི་བོད། 304

བདེན་བར་སྨྲ་བ་དང་ལྡན་ཞིང་། མཐོན་པོར་གྱུར་པའི་རིགས་དག་ནི།
བུ་མོས་འཁྲུམས་པར་བྱེད་པ་སྟེ། དུས་ནི་དེ་བར་དགའ་བས་བཞིན། 305

དེ་སྐད་པ་ཡིས་སྨྲས་གྱུར་དེས། མཆི་མའི་ཐིགས་པ་ནུ་མ་ལ།
དོ་ཤལ་སྐྱུད་མེད་སྒྲིག་བྱེད་ཅིང་། བཞིན་བདུད་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ། 306

ཡབ་ལགས་ཁྲི་བར་མི་འོས་པ། དེ་དག་བདག་ལ་གསུང་འོས་མིན།
མཐུ་ཡིས་མི་འཛམ་ཅི་དག་ལས། ལྷག་པའི་མི་མ་ཐོས་སམ་ཅི། 307

उदग्रगोत्रप्रभवा घनयौवननिर्भरा ।
निम्नगे क्षोभविभ्रष्टा यातासि सुतरामधः ॥ ३०० ॥

विद्वदुद्वेगजननी कुलवैलक्ष्यकारिणी ।
मलिना खलविद्येव सम्मतासि न कस्यचित् ॥ ३०१ ॥

रूपमात्रेण दृष्टा त्वं यदि मर्त्यवशं गता ।
तत् किं न रमसे हेमनिर्म्माणपुरुषत्विषा ॥ ३०२ ॥

प्रभावगुणहीनस्य पुंसश्चारुतराकृतेः ।
आलेख्यपुरुषस्येव सौन्दर्य्यं भित्तिरञ्जनम् ॥ ३०३ ॥

बध्यो मे त्वत्पतिः पापे हीनसम्बन्धलज्जया ।
मुखं द्रष्टुं न शक्नोमि त्वद्यात्त्रात्मदिवौकसाम् ॥ ३०४ ।

सत्यमुत्साहयुक्तस्य कुलस्योन्नतिशालिनः ।
जरेव किल कायस्य कन्या सङ्कोचकारिणी ॥ ३०५ ॥

इति सा भर्त्सिता पित्रा तमुवाच नतानना ।
अस्तहारं कुर्व्वाणा कुचयोर्वाष्पविन्दुभिः ॥ ३०६ ॥

कोपादनुचितं तात नैतन्मां वक्तुमर्हसि ।
न श्रूयन्ते प्रभावेण किं नराः किन्नराधिकाः ॥ ३०७ ॥

མཁའ་ལྡིང་གིས་ཀྱང་བགྲོད་དཀའ་བ། ས་འདི་གང་གིས་བགྲོད་གྱུར་ནས།
འོངས་པ་མཐུ་ཡི་ས་གཞི་དེ། མི་ཉིད་ཡིན་པར་ཅི་ལྟར་འགྱུར། 308

ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་ལུས་དག་ནི། ཡོན་ཏན་ཡང་དག་རྗོད་བྱེད་ཉིད།
བསིལ་ཟེར་ཅན་གྱི་འོད་ཟེར་ནི། ཀུན་དགའ་སྐྱེད་པར་བྱེད་པ་ཡིན། 309

ཡབ་གཅིག་རིགས་ཀྱིས་ཅི་ཞིག་བྱ། ཡོན་ཏན་རང་བཞིན་རྗེས་སུ་འབྲང་།
ལྷ་ཀྱིས་བདུད་རྩི་ཟག་པ་ནི། ནག་པོ་བརྩིགས་པའི་སྤྲིན་ལྷ་ཉིད། 310

ཁ་ཅིག་ནང་ན་ཡོན་ཏན་ལྡན། དེ་བཞིན་གཞན་ནི་སྐྱོན་བསྒྲིབས་པས།
ནོར་བུ་རྣམས་ཀྱི་རིན་དག་ནི། མ་བརྟགས་འགོངས་པར་ཡོང་མི་བྱ། 311

དེ་ཕྱོས་མི་འམ་ཅི་ཡི་བདག། དེ་དེ་བཞིན་ཞེས་སེམས་བྱེད་ཅིང་།
མག་པ་ཡང་དག་ཐོས་ནས་ནི། ཡོན་ཏན་ཤེས་པར་འདོད་པས་སྨྲས། 312

མི་འམ་ཅི་ཡི་བུ་འདི་དག། རེ་ཞིག་ཁྱོད་ཀྱི་མཛེས་པས་བདུལ།
མཐུ་ནི་ཡང་དག་བསྟན་པ་ནི། མཆོག་གི་འབྲེལ་པ་དག་ཏུ་འོས། 313

ཤིན་ཏུ་ཡངས་པ་ཤ་རིའི་ནགས། ཤ་ར་ཕྲུང་བྲུས་སྐད་ཅིག་གིས།
རྡོ་ལ་བྲི་གང་བདབ་མི་ཤུད་བར། རབ་ཏུ་བསྒྲུས་ལ་སླར་ཡང་བྱིན། 314

བརྟེན་དང་འབེན་ལ་སོགས་པ་ཡི། གཞུ་ཡི་རིག་བྱེད་མཁས་པ་སྟོན།
དེ་ནས་གྲགས་པའི་བ་དན་ནི། ཡིད་འཕྲོག་མ་འདི་ཁྱོད་དབང་གྱུར། 315

गरुड़स्यापि दुर्लङ्घ्यामिमामुल्लङ्घ्य यः क्षितिम् ।
प्रभावभूमिरायाति मनुष्यः स कथं भवेत् ॥ ३०८ ॥

गुणसंवादिनी मूर्त्तिर्भवत्येव शरीरिणाम् ।
करोत्यानन्दसंवादं द्युतिरेव हिमत्विषः ॥ ३०९ ॥

जात्या किं क्रियते तात स्वभावानुगुणा गुणाः ।
पूर्णेन्दुरमृतस्यन्दी कालकूटस्य सोदरः ॥ ३१० ॥

भवत्यन्तर्गुणाः केचिच्छन्नदोषास्तथा परे ।
अपरीक्ष्य न कर्त्तव्या मणीनां मूल्यलङ्घना ॥ ३११ ॥

श्रुत्वैतत् किन्नरपतिस्तत्तथेति विचिन्त्य च ।
जामातरं समाहूय गुणजिज्ञासयाब्रवीत् ॥ ३१२ ॥

त्वया कान्त्या जितास्तावदेते किन्नरदारकाः ।
सन्दर्शितप्रभावस्तु दिव्यसम्बन्धमर्हसि ॥ ३१३ ॥

अत्यायतं शरवणं कृत्वोद्धृतशरं क्षणात् ।
व्युप्तमन्यूनमुच्चित्य पुनर्देहि तिलाढ़कम् ॥ ३१४ ॥

सन्दर्शय धनुर्वेदे दृढ़लक्ष्यादिकौशलम् ।
ततः कीर्त्तिपताकेयं तवायत्ता मनोहरा ॥ ३१५ ॥

ཞེས་དེ་དེ་ཡིས་གྲུ་གྲུ་ལས། ངོས་པ་མིན་པའི་ལས་ལ་བསྐུལ།
གཞོན་ནུ་མཛེས་མ་ལ་ཆགས་པས། ཐམས་ཅད་བྱ་བར་རབ་ཏུ་བཙོམས། 316

དོན་མེད་ངལ་ཞིང་ཆོར་མོངས་འབྲས། ཤ་ར་འབྱིན་ལ་རབ་ཞུགས་པ།
དེ་ཤེས་མིག་སྟོང་ལྡན་པ་ནི། ཕྱོགས་སུ་ལྷུང་བས་ཡང་དག་བསམས། 317

ཅི་སྐད་བསྐལ་པ་བཟང་པོ་པའི། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གྱིམ་སྲས་འདི།
འབྲས་མེད་ཉོན་མོངས་ལས་ལ་ནི། མི་འམ་ཅི་ཡི་དབང་གིས་བསྐོས། 318

འདི་ཡི་ངལ་དུབ་དུས་འདི་ལ། བདག་གིས་སྟོང་གྲོགས་རབ་ཏུ་བྱ།
དེ་ལྟར་བསམས་ནས་བརྒྱ་བྱིན་གྱིས། དེ་ཡི་ལས་ནི་རྫོགས་བྱས་ཏེ། 319

མཆོད་སྦྱིན་བརྒྱ་པས་བསྟན་པ་ཡི། གནོད་སྦྱིན་ལག་གི་གཟུགས་ཅན་གྱིས།
ཤ་རའི་ནགས་ནི་རབ་ཕྱུང་བ། མཉམ་པར་ཏིལ་ནི་བྲེ་གང་བརྡབ། 320

བརྒྱ་བྱིན་གྱིས་སྤྲུལ་གྲོག་སྦུར་གྱིས། ཡང་དག་བསྡུས་ནས་གཅིག་ཏུ་བྱས།
མི་འམ་ཅི་ཡི་དབང་པོ་ལ། ཡ་མཚན་སྐད་དུ་གཞོན་ནུས་ཕུལ། 321

སྟོབས་གྲུས་དེ་ཡི་གསེར་གྱི་ནི། ར་བ་བདུན་དང་ཏ་ལ་བདུན།
ཐག་གི་འཁོར་ལོ་ཡང་དག་ལྡན། སྒྲོ་ལྡན་ཤིན་ཏུ་རྣོ་བས་ཕུག། 322

གང་གིས་དེ་ཡི་ཅོད་པན་ལ། ལྷ་ཡི་མེ་ཏོག་ཆར་འབབ་པ།
བསྟན་བཅོས་མཆོད་དང་ཅོལ་དང་ནི། སྒྲ་ཅོལ་བཟོ་དང་སྟོབས་ནུས་བསྟན། 323

इत्यशक्तोऽपि कौटिल्यात् प्रेरितस्तेन कर्म्मणि ।
सर्व्वं कान्तानुरागेण कुमारः कर्त्तुमुद्ययौ ॥ ३१६ ॥

मिथ्याश्रमक्लेशफले प्रवृत्तं शरपाटने ।
तं विज्ञाय सहस्राक्षः पक्षपातादचिन्तयत् ॥ ३१७ ॥

किं भाद्रकल्पिको बोधिसत्त्वोऽयं पार्थिवात्मजः ।
नियुक्तः किन्नरेन्द्रेण निष्फले क्लेशकर्म्मणि ॥ ३१८ ॥

अस्यास्मिन् समयायासे कार्य्यं साहायकं मया ।
इति सञ्चिन्त्य शक्रोऽस्य कर्म्मनिष्पत्तिमादधे ॥ ३१९ ॥

शतक्रतुसमादिष्टैर्यक्षैः शूकररूपिभिः ।
उत्पाटिते शरवने समे व्युप्तन्तिलाढ़कम् ॥ ३२० ॥

एकीकृतं समुच्चित्य शक्रसृष्टैः पिपीलकैः ।
कुमारः किन्नरेन्द्राय विस्मिताय न्यवेदयत् ॥ ३२१ ॥

स सप्तकनकस्तम्भान् सप्ततालान् बलोर्ज्जितः ।
शूकरीचक्रसंयुक्तान् विद्धा निशितपत्रिणा ॥ ३२२ ॥

शास्त्रास्त्रविक्रमकलाशिल्पशक्तिमदर्शयत् ।
ययास्य पेतुर्मुकुटे दिव्याः कुसुमवृष्टयः ॥ ३२३ ॥

མི་འམ་ཅི་ཡི་རྒྱལ་པོ་ནི། དེ་མཐུས་ཡ་མཚན་གྱུར་མོད་ཀྱང་།
དེ་ཉིད་བསླུ་བའི་སླད་དུ་སླར། རིགས་པ་དེ་དེ་སེམས་པར་བྱེད། 324

མངོན་པར་ཞེན་པ་ཤིན་ཏུ་བརྟན་ལྡན་གཞན་གྱི་གནོད་པས་ཆུ་བཞིན་འཁྲུག།
ཡོན་ཏན་བརྒྱ་ཕྲག་གིས་ཀྱང་མི་མགུ་ཤིན་ཏུ་འགལ་བའི་བློ་ཅན་རྣམས།
གྱི་ཆེ་མཚར་ལ་སྨྲ་བཅད་འཛིན་ཅིང་དམ་པ་བསྟོད་ལ་དགོད་པར་བྱེད།
གྲགས་པ་མཆོག་ལ་བཞིན་དག་ལོག་ཅིང་འགལ་བ་བརྗོད་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 325

དེ་ལ་རེས་སྨྲས་ཁྱོད་གྱིས་ནི། ལྷ་ཡི་མཐུ་འདི་གསལ་བར་བྱས།
དེ་ནི་ཤེས་རབ་ཁྱད་འཕགས་དག། ཁྱོད་ཀྱི་ཡང་དག་བསྟན་པར་འོས། 326

གཟུགས་དང་ཁ་དོག་དཔེར་མེད་ཅིང་། རྒྱན་དང་ན་ཚོད་མཚུངས་གྱུར་པ།
མི་འམ་ཅི་མོ་འཕོད་པ་ཡི། དབུས་ནས་རང་གི་དགའ་མ་ཟུངས། 327

ཞེས་པ་བརྗོད་ནས་དེ་ཡིས་སླར། མི་འམ་ཅི་མོ་ལྔ་བརྒྱ་དག།
རྟོགས་པ་ཁ་དོག་ལང་ཚོ་དང་། ཆས་མཚུངས་མདུན་དུ་དེ་ཡིས་མཐོང་། 328

དེ་དག་དབུས་ནས་ཡིད་འཕྲོག་མ། དེ་ཡིས་ཡོངས་སུ་ཤེས་ནས་བཟུང་།
འཁྲི་ཤིང་ནགས་ཀྱིས་བསྐྱིབས་པ་ཡི། ཟླ་བའི་འཁྲི་ཤིང་གང་བས་བཞིན། 329

དེ་ནས་མི་འམ་ཅི་དབང་གིས། འདི་ནི་ལྷ་ཞེས་ངེས་བྱས་ནས།
ཆོམ་པས་དེ་ལ་ཡིད་འཕྲོག་མ། ལྷ་ཡི་རིན་ཆེན་དང་བཅས་བྱིན། 330

विस्मितोऽपि प्रभावेण तस्य किन्नरभूपतिः।
पुनस्तद्वञ्चनायैव तां तां युक्तिमचिन्तयत्॥ ३२४॥

दधति विपुलाश्चर्य्ये मौनं हसन्ति सतां स्तुतौ
मलिनवदनाः कीर्त्त्युत्कर्षे व्रजन्ति विवादिताम्।
अपि गुणशतैर्नाराध्यन्ते विरुद्धधियः परं
परपरिभवक्षोभारम्भस्थिराभिनिवेशिनः॥ ३२५॥

स तमूचे प्रभावोऽयं दिव्यः प्रकटितस्त्वया।
प्रज्ञाप्रकर्षमधुना सन्दर्शयितुमर्हसि॥ ३२६॥

अभिन्नवर्णरूपाणां तुल्याभरणवाससाम्।
किन्नरीणां स्थितां मध्ये गृहाण निजवल्लभाम्॥ ३२७॥

इत्युक्तः स पुनस्तेन किन्नरीशतपञ्चकम्।
तुल्यवर्णवयोवेशं ददर्श व्यग्रमग्रतः॥ ३२८॥

तासां मध्ये परिज्ञाय स जग्राह मनोहराम्।
वल्लरीवनसंच्छन्नां भृङ्गश्चूतलतामिव॥ ३२९॥

देवोऽयमिति निश्चित्य ततस्तं किन्नरेश्वरः।
तुष्टस्तस्मै ददौ दिव्यरत्नैः सह मनोहराम्॥ ३३०॥

མཆོག་གི་ལོངས་སྤྱོད་འབྱོར་པ་ཡིས། གུས་དང་བཅས་པས་དེ་ཡིས་མཆོད།
དེ་ལ་ཞུས་ནས་ཆུང་མར་བཅས། གཞོན་ནུ་རང་གི་གྲོང་ཁྱེར་སོང་། 331

ཡིད་འཕྲོག་མ་སྔོན་འགྲོ་བའི་བུ། འོང་བ་མཐོང་ནས་ས་ཡི་བདག།
བདུད་རྩིའི་རྒྱ་མཚོས་བླང་བོའི་དབང་། མཐོང་ནས་འཕྱུར་བཞིན་ནམ་པར་མཛེས། 332

དེ་ནས་རྒྱལ་ཕྲིན་སྤྱོད་ཚུལ་ཟླ་བའི་གདུགས་དཀར་ལྡན་པ་ལ།
སྐྱེ་རྒུའི་གདུང་བ་འཕྲོག་པའི་དེ་ཉི་མངོན་པར་དབང་བསྐུར་ནས།
ཚོག་ཤེས་བསིལ་ལྡན་དབེན་པའི་བདུད་རྩིས་མངོན་པར་དགའ་བ་ཡིས།
རབ་ཏུ་ཞི་བ་ལྡན་པའི་གྲིབ་བསིལ་མི་ཡི་བདག་པོས་བསྟེན། 333

ནོར་བཟང་དབང་བསྐུར་ཐོབ་པའི་སྤྲོ་དྲོ་ཉིད།
གཟི་བྲིན་གྱི་ཆེ་དེ་ལ་རིན་ཅེན་བདུན།
གཙོ་བོ་ཉིད་གྱུར་གསར་པའི་མཐུས་འཇིགས་ནས།
གཡོག་ལ་གནས་པའི་དོན་བཞིན་ཉེ་བར་འོངས། 334

ནོར་བཟང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དང་དེ་ཉིད་དེ།
ཡིད་འཕྲོག་མར་གྱུར་དེ་ཡང་གྲགས་འཛིན་མ།
དེ་དང་བྲལ་བའི་སྡུག་བསྔལ་མེས་གདུངས་པ།
འདི་སྙིང་འདོད་པས་བཅིངས་ལས་བདག་གིས་ཐོབ། 335

श्लाघ्योपभोगविभवैः पूजितस्तेन सादरम्।
जायासखस्तमामन्त्र्य कुमारः स्वपुरं ययौ ॥ ३३१ ॥

मनोहराग्रगं पुत्रं प्राप्तमालोक्य भूपतिः।
राकेन्दुदर्शनोद्भूतः सुधाम्बुधिरिवाबभौ ॥ ३३२ ॥

पुत्रं ततश्चरितचन्द्रसितातपत्रे
राज्येऽभिषिच्य परितापहरं प्रजानाम्।
सन्तोषशीतलविवेकसुखाभिरामां
छायामसेवत नृपः प्रशमद्रुमस्य ॥ ३३३ ॥

प्राप्ताभिषेकं सुधनं प्रभाते
तं सप्तरत्नानि पृथुप्रतापम्।
नवप्रभावप्रभुभावभीत्या
सेवानिवासार्थमिवोपजग्मुः ॥ ३३४ ॥

स बोधिसत्त्वः सुधनोऽहमेव
यशोधरा सापि मनोहराभूत्।
तद्विप्रयोगव्यसनानलार्त्तिः
कामानुबन्धादियती मयाप्ता ॥ ३३५ ॥

དེ་སྐད་འདོད་པ་པདྨོའི་བཞིན་གྱི་མིག་གི་མཐའ་ལ་གནས་གྱུར་ཅིང་།
རབ་གྲུས་མེ་ཏོག་ལས་སྐྱེས་རྡུལ་ཚོགས་ཏཱ་ལ་ཏཱ་ལའི་རྩེ་མོ་ཅན།
རྨོངས་བྱེད་སྒྲ་ངན་གདུང་བའི་མདའ་ཡིས་གང་གི་འཇིག་རྟེན་འབིགས་བྱེད་པ།
རྟོན་པའི་རྩེ་དགས་ཞི་བའི་རི་དྭགས་འཆིང་བྱེད་དམ་པ་རྣམས་ཀྱིས་སྤངས། 336

དེ་ནས་གྲོལ་བ་རང་གིས་རང་གི་གདམས།
བཤད་པ་དེ་ནི་དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་ཐོས།
འདོད་པ་རོ་ལྡན་ཁོ་ན་སྤྱོད་པ་ནི།
འདབ་བརྒྱའི་ཚ་བ་སྦྲོམ་པོ་ཉིད་དུ་ངེས། 337

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ནོར་བཟང་གི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་ཙ་བཞི་པའོ།།

तस्मात् कामः कमलवदनानेत्रपर्य्यन्तवासी
वर्ज्यः सद्भिः शममृगवधूबन्धकेलीकिरातः।
स्फुर्जत्पुष्पप्रसररजरजःपुञ्जहालाहलोग्रै-
र्लोकः शोकव्यसनविशिखैर्मोहनैर्येन विद्धः॥ ३३६॥

इति भिक्षुगणः स्वयं जिनेन
स्वकथान्तां विनिवेदितां निशम्य।
सरसं पृथुमूलमेव मेने
शतशाखस्य मनोभवं भवस्य॥ ३३७॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां सुधनकिन्नर्य्यवदानं नाम चतुःषष्टितमः पल्लवः॥

དེ་ཡི་ཡིད་ཀྱི་ཉམ་འགྱུར་ཉམ་པར་ལྡན།
ད་ལྟ་ཡང་ནི་ཉེ་བར་ཞི་མི་འགྱུར།
ཁྱོད་ཞལ་ཟླ་འོད་བྲལ་ན་ཤིན་ཏུ་དེ།
ཉམས་དེ་ཉིན་བར་ཀུ་མུད་ལྡན་པ་བཞིན། 5

དེ་སྐད་མཚར་ལས་དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་དྲིས།
ཅུང་ཟད་འཛུམ་པ་མཆུ་ཡི་ཡལ་འདབ་ལ།
ཏུ་རིག་འབྲས་བུ་རབ་སྨྲས་བྱུ་རུའི་འོད།
མཛེས་སྣ་འགོད་ཅིང་བཙོམ་ལྡན་གྱིས་གསུངས་པ། 6

མངོན་འདོད་རྩེ་དགའ་ཉམ་འགྱུར་ལྡན་པ་འདི།
གཟུགས་འཛིན་མ་ནི་དེང་ཉིད་འཛིན་པ་མིན།
སྐྱེ་གཞན་ལ་ཡང་འདོད་པའི་ཉམ་འཕྲུལ་གྱིས།
དེ་ཡི་ལ་དུས་བདག་ལ་ཆགས་པར་གྱུར། 7

ཀ་ཤིའི་གྲོང་དུ་མི་དབང་ཀ་ཤྲུ་སྟོན།
ཟླ་བའི་འོད་ལྟར་དཀར་བའི་གཟུགས་པ་ཅན།
དགྲ་ཚོགས་གཉིས་འཐུང་ལྕགས་ཀྱུ་ཡིན་མོད་ཀྱང་།
སྐྱོང་ཚུལ་མི་རྣོ་རང་བཞིན་དྲང་པོར་གྱུར། 8

नाद्यापि शान्तिं समुपैति तस्याः
मनोविकारः स बहुप्रकारः ।
त्वदाननेन्दुद्युतिविप्रयुक्ता
सीदत्यलं सा हि कुमुद्वतीव ॥ ५ ॥

इति स्मयाङ्किभिक्षुगणेन पृष्टः
किञ्चित् स्मितेनाधरपल्लवस्य ।
प्रत्युप्तमुक्ताफलविद्रुमाभां
निवेश्य शोभां भगवान् बभाषे ॥ ६ ॥

यशोधराद्यैव विकारयुक्तां
बिभर्त्ति नैतामभिलाषलीलाम् ।
जन्मान्तरेऽपि स्मरविभ्रमैर्मे
सा मोदकैर्लोभनमेव चक्रे ॥ ७ ॥

काश्यः पुरा काशिपुरे नरेन्द्र-
श्चन्द्रावदातद्युतिकीर्त्तिरासीत् ।
अप्यङ्कुशः शत्रुमदद्विपाना-
मतीक्ष्णवृत्तः सरलस्वभावः ॥ ८ ॥

དཀའ་ཐུབ་འབད་པས་བུ་དོན་གཉེར་དེ་ལ།
བུ་མོ་པདྨ་ལྡན་ཉིད་གཅིག་པུ་བྱུང་།
སྐྱེ་གུ་སྐྱོང་ལ་གཡེལ་བ་དང་བཅས་པའི།
ས་བདག་ཕལ་ཆེར་རིགས་བརྒྱུད་ཉུང་བར་འགྱུར། 9

ཐོ་གྲང་འཁོར་དུ་དེ་ནི་ཡོངས་བསྐྱེད་ཅིང་།
སེམས་ཡའང་བསམས་པའོ་མི་བདག་གིས་སྤྲད་ནས།
མཁས་པ་ལ་སོགས་བློན་པོ་བོས་ནས་ནི།
གཉིད་གྲོལ་དགའ་བ་ཉམས་པས་རབ་སྨྲས་པ། 10

ལོ་འདབ་གྱིས་ཤིང་རྩ་བ་བརྟན་པར་ཟུག།
སྐྱེ་བོ་ཀུན་གྱི་ཉེར་འཚོ་ཤིན་ཏུ་མཐོ།
མཚུངས་པར་སྐྱེ་བས་དམན་པའི་རྒྱལ་སྲིད་ནི།
སྲིན་བུས་ཟོས་པའི་ཤིང་བཞིན་བདག་གིས་རིག། 11

ཡང་ཚོ་རབ་ཏུ་སྨིན་འོས་བསྟེན་པ་ཡིས།
བུ་མོ་པད་ལྡན་གཅིག་བུ་བདག་ལ་ཡོད།
དེ་ནི་འབད་པས་མགག་པ་ལ་བྲིན་ཆོ།
བུ་ཚ་ཉིད་དང་དེ་ལ་བྱམས་པའང་རིང་། 12

पुत्रार्थिनस्तस्य तपःप्रयत्नै-
रेकैव कन्या नलिनी बभूव।
प्रायः प्रजापालनसावलेपाः
स्वल्पान्वया एव भवन्ति भूपाः॥ ९॥

अन्तःपुरे तां परिवर्द्धमानां
चित्ते च चिन्तां नृपतिर्विचिन्त्य।
आहूय विद्वत्प्रमुखानमात्यान्
प्रजागरग्रस्तरतिर्जगाद॥ १०॥

विस्तीर्णशाखं स्थिरबद्धमूल-
मभ्युन्नतं सर्व्वजनोपजीव्यम्।
अवैमि तुल्यप्रसवावहीनं
घुणाक्षतं वृक्षमिवाधिपत्यम्॥ ११॥

एकैव कन्या नलिनी ममास्ति
वयः प्रदानोचितमाश्रयन्ती।
तस्यां प्रयत्नेन वरार्पिताया-
मपत्यता तत्प्रणयोऽपि दूरे॥ १२॥

ལག་པར་སྒྲོན་མེའི་སྡོང་བུ་རབ་འབར་བཞིན།
སྐྱེ་བོས་རང་གི་བུ་མོ་བཟུང་མི་ནུས།
གདམས་པའི་ནོར་བཞིན་གཞན་ལ་གཏང་བྱ་བ།
རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་བསམ་བའི་འབྲས་བུ་ཉིད། 13

གཡོག་ལ་སྦྱིན་མིན་གྲོང་པ་ལ་འོས་མིན།
མི་དབང་བུ་མོ་རིང་པོ་ཉིད་ལ་འོས།
དེ་ལྟར་ཀུན་སྤྱུད་རིང་པོ་མི་ཞེས་པས།
ཞི་དང་སོང་བ་དག་ལ་བྱེ་བྲག་ཅི། 14

དེ་སྐད་གང་ཞིག་བུ་དངོས་བདག་ཉིད་ཅན།
རང་ཡུལ་རབ་སྤངས་བདག་གི་ཡུལ་འཛིན་པ།
བདག་གི་མག་པའི་དངོས་གྱུར་འགའ་ཞིག་དེ།
ཡོན་ཏན་ལྡན་པ་འབད་པས་བཙལ་བར་བྱ། 15

བདག་གིས་ཐོས་པ་གཏྲ་དག་གི་རྒྱུན།
བསོད་ནམས་དག་པའི་ངོགས་དང་ཉེ་བ་ན།
སྐྱིམ་པར་བཅས་ན་དཀའ་ཐུབ་ནགས་མཐར་ནི།
རྒྱལ་པོའི་དྲང་སྲོང་ཀཱ་ཤྱ་པ་གནས་ལོ། 16

पाणौ प्रदीप्तामिव दीपवर्त्तिं
धर्त्तुं न शक्नोति जनः स्वकन्याम्।
न्यासार्थतुल्या हि परार्पणीया-
श्चिन्ताफला एव कुलस्य कन्याः॥ १३॥

न भृत्यदेया न च पौरयोग्या
दूरोचिता एव नरेन्द्रकन्याः।
अज्ञातनित्याचरितस्य दूरं
मृतस्य जातस्य च को विशेषः॥ १४॥

तस्मात् प्रयत्नेन मया स कश्चि-
ज्जामातृभावे गुणवान् नियोज्यः।
स्वदेशमुत्सृज्य ममैव देशे
बिभर्त्ति यः पुत्र इवाधिपत्यम्॥ १५॥

श्रुतं मया जह्नुसुताप्रवाह-
पुण्यावदाते पुलिनोपकण्ठे।
साहञ्जनीनाम्नि तपोवनान्ते
राजर्षिरास्ते किल काश्यपाख्यः॥ १६॥

དེ་ཡི་ས་བོན་ལྷི་བས་ལྷུང་གྱུར་པ།
ལྷ་ཡི་བསྐྱེད་ལས་རྡོ་སྟེང་དམའ་བར་ཆགས།
ཆུ་འདོད་ཀྱིས་གཟིར་རི་དྭགས་མོ་ཡིས་འཐུངས།
གསེར་གྱི་མདོག་ཅན་གཞོན་ནུ་བཙས་པར་གྱུར། 17

དེ་ཡི་ཕས་བཟུང་ནགས་སུ་རི་དྭགས་དེ།
ཉམ་པར་བསྐྱེད་ཅིང་བརྟུལ་ཞུགས་དག་ཀྱང་བསྒྲུབས།
ཐོར་ཚོད་རྭ་ཡི་ཡང་དག་མཚན་གྱུར་པས།
ཀྲིས་པ་རྭ་གཅིག་པ་ཞེས་མིང་དུ་གྲགས། 18

དར་བབ་བསམ་གཏན་བཞི་པོ་སྐྱོང་བྱེད་ཅིང་།
ཚངས་སྤྱོད་དང་བཅས་དྲི་མེད་རང་བཞིན་ཅན།
ཡུལ་ནི་མཐོན་པར་མི་ཤེས་གྲོགས་མེད་གནས།
དེར་ནི་དྲག་པོའི་ཉི་འོད་ལྟ་བུར་མཛེས། 19

དེ་ནི་གལ་ཏེ་པད་ལྷན་ཕྱིར་ཉིད་དུ།
གྱུར་ནས་རྒྱུད་ནི་རབ་ཏུ་ཞི་མིང་གྱུར།
གཟི་བརྗིད་གཏེར་དེ་རབ་ཏུ་འཁྱུགས་པ་ཡིས།
གནོད་མེད་རིགས་པ་ཅི་ཡང་བསམ་པར་མཛོད། 20

तस्य स्रुतं प्रस्रवणेन वीर्य्यं
दैवोदयादश्मनि सन्नताग्रे ।
तोयस्पृहार्त्ता हरिणी निपीय
सुवर्णवर्णं सुषुवे कुमारम् ॥ १७ ॥

वने मृगीस्तन्यविवर्द्धितोऽसौ
पित्रा गृहीतो विहितव्रतश्च ।
नाम्ना प्रसिद्धः शिशुरेकशृङ्गः
स लक्ष्यमाणाङ्कुलमाचशृङ्गः ॥ १८ ॥

युवा चतुर्ध्यानपरायणश्च
स ब्रह्मचारी विमलस्वभावः ।
निःसङ्गवासाद्विषयानभिज्ञ-
स्तपःकठोरार्करुचिश्चकास्ति ॥ १९ ॥

स चेन्नलिन्याः पतितामुपैति
तदेष वंशः प्रशमं न याति ।
तेजोनिधेरानयने तु तस्य
विचिन्त्यतां काप्यनपाययुक्तिः ॥ २० ॥

ཅེས་པ་མི་བདག་ཚིག་ཐོས་ཡུན་རིང་དུ།
དཔྱད་ནས་བློན་པོ་ཀུན་གྱིས་དེ་ལ་སྨྲས།
དེ་ནི་དེ་ཡི་བསྡིག་ནས་ཉེ་བའི་སར།
ནགས་སུ་རྒྱལ་པོའི་བུ་མོ་རྩེ་རུ་ཐོང་། 21

དེ་ཚིག་རྗེས་སུ་འདོད་བྱས་རྒྱལ་པོ་ཡིས།
འདོད་པའི་དོན་ཀུན་རྣམ་པར་བཤད་ནས་ནི།
པདྨོ་ཅན་བསངས་རབ་ཏུ་སྤྲོབས་པ་བཞིན།
ཐུབ་པའི་གཞོན་ནུ་དབྲོག་ཕྱིར་རྩེ་རུ་སོང་། 22

མཛེས་མས་ནགས་ཀྱི་མཐར་ནི་དཔལ་གྱིས་ཕྱིན།
གཟུགས་བཟང་རྩེད་འཛེས་མངོན་པར་དགའ་བས་རོལ།
མཛེས་པའི་མིག་ཅན་དེ་ནི་རླུང་གཞོན་གྱིས།
བསྐྱོད་པའི་འཁྲི་ཤིང་བཞིན་དུ་ཡང་དག་གྱོ། 23

དེ་ནི་རོལ་ཅིང་མེ་ཏོག་འཐུ་བ་ཡིས།
རི་དྭགས་ཟླ་རབ་གཡོ་ཞིང་ནོར་བསྐྱོད་པའི།
ནགས་མཐོང་རང་གི་དགའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་ནས།
དགེ་མཚན་ལྡན་པའི་གཞོན་ནུས་ཡང་དག་འོངས། 24

श्रुत्वेति वाक्यं नृपतेरमात्या
विचार्य्य सर्व्वं सुचिरात्तमूचुः ।
तदाश्रमोपान्तवने विहर्त्तुं
विसृज्यतां सम्प्रति राजपुत्री ॥ २१ ॥

तद्वाक्यलुब्धानुमतेन राज्ञा
समीहितार्थं विनिवेद्य सर्व्वम् ।
ययौ विसृष्टा नलिनी विहर्त्तुं
हर्त्तुं प्रगल्भेव मुनेः कुमारम् ॥ २२ ॥

कान्ता वनान्तं शनकैरवाप्य
लीलाभिरामा विजहार तन्वी ।
वालानिलेनाकलिता लतेव
सञ्चारिणी चारुविलोचना सा ॥ २३ ॥

विलासपुष्पावचयेन तस्य
भृङ्गोत्तरङ्गं विचलत्कुरङ्गम् ।
वनं विलोक्य स्वतपोवनान्तात्
समाययौ कौतुकवान् कुमारः ॥ २४ ॥

མི་ཡི་གྲོགས་མེད་པདྨ་ལྟར་ཡང་མིག།
ཡ་མཚན་མིག་ནི་འཛུམ་དང་བྲལ་བ་དེས།
ཡང་ཚོའི་ཉམ་འཕྲུལ་གྱིས་གཡོ་ལུས་བདུད་ཅིང་།
ཨུཏྤལ་གྱིས་པའི་མིག་ཅན་དེ་མཐོང་གྱུར། 25

མཛེས་མ་རི་དྭགས་མིག་ཅན་དེ་མཐོང་ནས།
དགའ་མ་མངོན་ཤེས་མེད་ཀྱི་ཐུབ་པ་དགའ།
བག་ཆགས་སོམས་པས་ནང་དུ་ཞེན་པ་ཡི།
ཡུལ་ལ་མངོན་འདོད་སྐྱེ་བོས་གཏོང་མ་ཡིན། 26

རི་དྭགས་བུ་ཡི་རབ་མཛེས་ཡིད་འོངས་མིག།
དེ་ཡི་བཞིན་གྱི་པདྨར་ཉམ་བཀོད་ནས།
རིག་འཛིན་རྣམས་ནི་ཐུབ་པའི་བུ་དག་ཏུ།
ཞེས་ནས་མཛའ་བའི་དབང་གིས་དེར་ཕྱུག་འཚལ། 27

སྡོམ་བརྩོན་གྱིས་བདུད་བཞིན་རས་དུད་གྱུར་པ།
དེ་མི་མཆུ་ནི་བྱུ་རུའི་འོད་ལྡན་གྱིས།
འོད་ཟེར་ཚོགས་ཀྱིས་ཀུན་བསྒྲིབས་དོ་ཤལ་དག།
དྲི་མེད་རང་བཞིན་གྱིས་ཀྱང་ཆགས་པ་བཟུང་། 28

स सन्नताङ्गीममनुष्यसङ्ग-
स्तरङ्गितां यौवनविभ्रमेण।
ददर्श तां विस्मयनिर्निमेषः
फुल्लोत्पलाक्षीं कमलायताक्षः ॥ २५ ॥

विलोक्य कान्तां मृगलोचनान्तां
रामानभिज्ञोऽपि मुनिर्जहर्ष।
न वासनाभ्यासविलीनमन्त-
र्जहाति जन्तुर्विषयाभिलाषम् ॥ २६ ॥

सुस्निग्धमुग्धां विनिवेश्य दृष्टिं
मृगीसुतस्तद्वदनारविन्दे।
विद्याधरं वा मुनिपुत्रकं वा
विज्ञाय तां प्रीतिरसाद्ववन्दे ॥ २७ ॥

प्रतिप्रणामावनताननाया-
स्तस्याः प्रवालद्युतिनाधरेण।
आच्छाद्यमानोऽंशुवनेन रागं
जग्राह हारोऽप्यमलस्वभावः ॥ २८ ॥

ཧྲིལ་ཚུང་སྒྲ་སྙན་དག་གིས་གྲོགས་ཀྱི་བཞིན།
འདོད་པའི་ཉེ་བར་སྤྱོད་པ་གདམས་བྱས་པ།
རྡུལ་ཟགས་ཐིག་ལེ་དག་གི་མཐར་མཛེས་ཤིང་།
རབ་འདར་ལུས་ཅན་དེ་ལ་གཞོན་ནུས་སྨྲས། 29

ཀྭ་ཡི་ཐུབ་པའི་སྲས་ཁྱེད་ལེགས་འོངས་སམ།
དཀའ་ཐུབ་ནགས་མཐར་རི་དྭགས་དགེ་འམ་ཅི།
དྲག་ཏུ་ཁྱོད་ལ་ལྟ་ཞིང་གཡོ་མེད་པ།
གང་དག་རྣམས་ནི་ཐང་ལ་དམན་པར་གྱུར། 30

བརྟུལ་ཞུགས་མཆོག་ལྡན་ཁྱོད་གཟུགས་བདུད་རྩིའི་ཆར།
ཁ་ན་མ་ཐོ་མེད་པ་འདི་མཐོང་བའི།
རལ་པ་ཤིང་ཤུན་ལྡན་པ་ཐུབ་རྣམས་ཀྱི།
ལུས་ནི་ཤིང་སྐམ་བཞིན་དུ་བདག་རྟོག་གོ། 31

འཁྲི་ཤིང་མེ་ཏོག་རྣམས་ཀྱིས་སྤྲས་བྱས་པ།
ཁྱོད་ཀྱི་རལ་པའི་ཚོགས་ནི་མཛེས་པ་འདི།
སྤྲིན་གསེར་ཚོགས་ལ་རྣམ་པར་གཏིངས་པ་ཡི།
མི་བྱུའི་འཇུག་མའི་མཛེས་ཕྱུག་རྣམ་པར་འཛིན། 32

तां स्वेदसीदत्तिलकालकान्ता-
मुत्कम्पिताङ्गीमवदत् कुमारः ।
सख्येव काञ्च्या मधुरस्वरेण
स्मरोपचारेषु कृतोपदेशाम् ॥ २९ ॥

भोः स्वागतं ते मुनिपुत्र कच्चित्
तपोवनान्ते कुशलं मृगाणाम् ।
सदा तदालोकननिश्चलानां
स्थलीषु येषां विरलः प्रचारः ॥ ३० ॥

इदं विलोक्याद्य तवानवद्यं
दिव्यव्रतस्यामृतवर्षि रूपम् ।
वपुर्जटावल्कलिनां मुनीनां
शुष्कद्रुमाणामिव तर्कयामि ॥ ३१ ॥

अयं तव स्निग्धजटाकलापः
कृतोपचारः कुसुमैर्लताभिः ।
नवाभ्रसम्भारविजृम्भमाण-
मयूरबर्हप्रतिमां बिभर्त्ति ॥ ३२ ॥

ཁྱོད་ཀྱི་བྲང་འདི་དཔལ་འབྲས་ཟུང་གིས་སྤྲས།
བགྲང་འཕྲེང་དཀར་པོ་དག་གིས་རྣམ་པར་བཅིངས།
རི་དྭགས་གཞོན་ནུའི་མིག་ལྟར་བཀྲ་བ་ཡིས།
ཡིད་ལ་དགའ་བ་སྐྱེད་བྱེད་རྣམ་པར་མཛེས། 33

སྤྲིན་སྤྲིག་མེ་ཡི་མེ་སྟག་གསལ་ཆགས་པའི།
སྐྱེ་རགས་འཛིན་ཅིང་ལུས་ཕྲ་འཁྲི་ཤིང་གཞོན།
ཞལ་འདབ་གསར་པས་མཚན་འདྲ་ཁྱོད་ཀྱི་ལུས།
འདི་ནི་སུ་ཡི་དགེ་མཚན་གྱུར་མི་བྱེད། 34

ཐང་ག་གང་དུ་གཡོ་ལྡན་འདབ་སྐྱེས་ནི།
ཁྱོད་ཞབས་བཀོད་པས་རྣམ་པར་གསལ་བྱས་པ།
འོད་ཀྱི་རྟག་ཏུ་རྣམ་པར་མཛེས་པ་ཡིས།
དཀའ་ཐུབ་ནགས་མཐའ་གང་ཡིན་དང་བས་སྤྲོས། 35

རི་དྭགས་རང་བཞིན་ཐུབ་པའི་གཞོན་ནུ་ནི།
ཁྱུད་མེད་མི་ཤེས་དེ་རིག་སུ་མོ་དེས།
ངོ་ཚར་བ་བདང་རྣམ་པར་རྟོགས་མེད་པ།
མ་བསྡུ་མས་ཏེ་དགའ་དག་ནི་ཀྱུན་བཞིན་གྱུར། 36

इदं तव श्रीफलयुग्मशोभि-
वक्षोविनिक्षिप्तसिताक्षसूत्रम् ।
आसूत्रयद्बालकुरङ्गनेत्र-
वैचित्र्यमैत्रीं मनसश्चकास्ति ॥ ३३ ॥

होमाग्निलग्नस्फुटविस्फुलिङ्गां
मौञ्जीं दधाना नवपल्लवाङ्काम् ।
कुतूहलं बाललतेव तन्वी
तनुस्तवेयं न तनोति कस्य ॥ ३४ ॥

ब्रूहि प्रसन्नं क्व तपोवनं ते
त्वत्पादविन्यासविकासिनीभिः ।
यत्र प्रभाभिः सततं विभाति
सञ्चारिणी पङ्कजिनी स्थलेषु ॥ ३५ ॥

इति ब्रुवाणं ललनानभिज्ञं
मृगस्वभावं तमवेत्य बाला ।
उत्सृज्य लज्जामविशङ्कमाना
निर्यन्त्रलीलाभरणा बभूव ॥ ३६ ॥

དེ་ནས་ཀུན་དགའི་རོས་བརླན་སེམས་ལྡན་དེར།
འཛམ་པར་སྨྲ་བྱེད་དེ་ཡིས་དལ་གྱི་སྨྲས།
བདག་གི་བསྟི་གནས་འབྲས་ཞིམ་མི་རྟོག་ཅན།
དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་འདི་དང་ཉེ་བར་གནས། 37

ཞེས་བརྗོད་ཀ་རའི་འཇུམ་དང་ག་བུར་གྱིས།
ནང་ཚངས་ལྡན་ཞིང་ཡིད་འོང་ཡ་མཚན་འོས།
ལ་དུ་མཁས་པའི་ལེགས་བཤད་མཚུངས་པ་ཡི།
དེ་ཡིས་དེ་ནི་ཉམ་པར་ཆགས་པར་བྱས། 38

དེ་ཡི་གྲོས་བྱེད་རོ་འཛིན་རྗེས་མཐུན་པ།
སེམས་དགའ་མཛའ་བའི་རང་བཞིན་རྩེ་དགའ་དང་།
བསྟུགས་པ་བདུད་རྩི་གུས་མཆོད་འཆིང་བ་ཡིས།
འཕགས་པའི་རི་དྭགས་དེ་ནི་གྱུས་བཞིན་བཅིངས། 39

ཆར་འོས་དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་བདག་ལ་སྟོན།
ཞེས་བརྗོད་མིག་ཟུམ་དེ་ལ་རྒྱལ་པོ་ཡི།
ཕྲུ་མོས་ལག་པའི་འཁྲི་ཤིང་དག་གིས་ནི།
དམ་དུ་ཡོངས་འཁྱུད་ཚུར་ཤོག་ཅེས་པ་སྨྲས། 40

ततस्तमानन्दरसार्द्रचित्तं
शनैर्बभाषे मृदुभाषिणी सा ।
तपोवनस्यास्य समीपवर्त्ती
ममाश्रमः स्वादुफलप्रसूनः ॥ ३७ ॥

उक्त्वेति खण्डस्मितमोदकैः सा
तस्याथ कर्पूरपरागगर्भैः ।
चकार माधुर्य्यचमत्क्रियार्हैः-
र्विलोभनं सत्कविसूक्तितुल्यैः ॥ ३८ ॥

तैर्मोदकैः सा रसनानुकूलै-
श्चित्तोत्सवैः प्रेममयैर्विलासैः ।
कर्णामृतैश्च प्रणयोक्तिवन्धै-
स्तं वागुरेवार्य्यमृगं जहार ॥ ३९ ॥

तपोवनं दर्शय मे महार्ह-
मित्युल्लपन्तं भुजवल्लरीभ्याम् ।
गाढं परिष्वज्य निमीलिताक्ष-
मेहीति तं राजसुता जगाद ॥ ४० ॥

ཆས་ཞིང་ཚུང་ཟད་རྐང་གིས་སོང་དེ་ལ།
སྐར་ཡང་དེར་བགྲོད་སྐད་དུ་བསྟར་བྱས་པའི།
ཞིང་དུ་ལ་ཞོན་ལག་པ་བཀྲུངས་ནས་དེས།
བཞོན་པ་ཉིད་ནི་ཚོག་གིས་རབ་ཏུ་བསྐྱོས། 41

ཞིང་དུ་འདྲེན་པའི་དུ་དག་དེས་མཐོང་ནས།
བྱེ་བྲག་མ་རྟོགས་རི་དྭགས་ཡིན་པར་ཞེས།
རི་དྭགས་བུ་བདག་རི་དྭགས་སྟེང་དུ་ནི།
རྐང་པས་མི་རེག་ཅེས་པ་དེ་ལ་སྨྲས། 42

དེ་ནས་ཡིད་ཀྱིས་ཐུབ་དབང་བུ་འཛིན་ཅིང་།
ཞིང་དུ་ཡིད་ལྟར་མགྱོགས་པས་སོང་ནས་ནི།
མི་བདག་བུ་མོ་རང་གི་གྲོང་ཁྱེར་ཕྱིན།
དེ་ཡི་སྤྱོད་པ་མི་ཡིས་བདག་ལ་བཤད། 43

སྟོབས་ཀྱིས་རབ་སྦྱར་དགུག་པའི་མངོན་སྦྱོར་ལ།
མེ་མཚུངས་དྲང་སྲོང་ཆེན་པོས་འཇིགས་སྒྱུར་པ།
རྒྱལ་པོ་བློན་དང་བཅས་པས་དེ་ཉེང་ལ།
རབ་ཏུ་འབད་པས་ཐབས་ནི་མངོན་པར་བསམས། 44

तं प्रस्थितं सा कतिचित् पदानि
गत्वा पुरस्तद्गमनाय सज्जम् ।
रथं समारुह्य विसार्य्य पाणि-
मारोहणायैव गिरा न्ययुंक्त ॥ ४१ ॥

रथे तुरङ्गान् स विलोक्य युक्तान्
मत्वा कुरङ्गान् विगलद्विशेषः ।
मृगीसुतोऽहं न मृगाग्रमेतं
स्पृशामि पद्भ्यामिति तामुवाच ॥ ४२ ॥

रथेन गत्वाथ मनोजवेन
मुनीन्द्रसूनुं मनसा वहन्ती ।
नरेन्द्रकन्या स्वपुरीमवाप्य
न्यवेदयत्तच्चरितं नृपाय ॥ ४३ ॥

राजापि तस्यागमने प्रयत्ना-
दचिन्तयन्मन्त्रिभिरभ्युपायम् ।
हठप्रयुक्त्या हरणाभियोगे
भीतः कृशानुप्रतिमात्महर्षेः ॥ ४४ ॥

དེ་ནས་སླར་ཡང་གཞོན་ནུ་འགུགས་པ་ལ།
གྲུ་ཡི་ཚོགས་བལྟམས་བཅིངས་ཤིང་ངལ་བྲུས་པས།
གང་གཱའི་ངོགས་ཀྱི་དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཀྱི་མཐར།
རྟེ་དགའི་འཁྲི་ཤིང་དེ་ནི་སྐྱིལ་པོས་གདང་། 45

སྐབས་དེར་བུ་ནི་བྲུ་བ་མཐའ་དག་བཏང་།
མི་བདག་བུ་མོའི་བསམ་གཏན་སྒྲ་བཅད་བཅིངས།
མངོན་འདོད་གསར་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་ལྡན་རྟོགས་ནས།
ཐུབ་པ་དག་ནི་ཡ་མཚན་གཡོ་མེད་གྱུར། 46

དེ་ནས་ཕས་དྲིས་དེ་ལ་ཐུབ་སྲས་ཀྱིས།
ཞུགས་རིངས་རྒྱུད་མ་དག་གི་བསྟི་གནས་དང་།
ཉེར་གནས་སྐྱེ་མའི་ཡལ་འདབ་ཡང་ཡང་དུ།
སྒྲིག་ཅིང་རོལ་པ་བསྐྱེད་ཅིང་རབ་སྐྲས་པ། 47

ཡབ་གཅིག་དཀར་ཐུབ་ནགས་སུ་རིང་བདག་གིས།
ཟླ་བའི་གཟུགས་བརྙན་རབ་ཏུ་ཕྱིས་པའི་ཞལ།
སྡང་སོང་ཆེ་སྲས་འདྲེན་བྱེད་འོད་དག་གིས།
རི་དྭགས་བུ་མོའི་དྲེགས་པ་འཕྲོག་པ་མཐོང་། 48

ततः कुमाराहरणे पुनस्तां
विलासवल्लीं विससर्ज्ज राजा ।
नौभिर्घटावन्धकृताश्रमाभि-
र्मन्दाकिनीकूलतपोवनान्तम् ॥ ४५ ॥

अत्रान्तरे त्यक्तसमस्तकृत्यं
नृपात्मजाध्याननिबद्धमौनम् ।
नवाभिलाषव्रतमाकलय्य-
पुत्रं मुनिर्विस्मयनिश्चलोऽभूत् ॥ ४६ ॥

पृष्टोऽथ पित्रा मुनिपुत्रकस्तं
प्रोवाच निश्वासपरम्पराभिः ।
समीपसक्ताश्रममञ्जरीणां
दिशन्मुहुः पल्लवलास्यलीलाम् ॥ ४७ ॥

तपोवने तात मयाद्य दृष्टः
प्रमृष्टचन्द्रप्रतिविम्बवक्त्रः ।
महर्षिसूनुर्नयनप्रभाभि-
र्दर्पापहारी हरिणाङ्गनानाम् ॥ ४८ ॥

དེ་ཡི་སྙིང་ག་ཀྱང་ལག་མགྲིན་པ་ལ།
བདགས་པའི་སྐྲུད་མ་ཉམས་པར་བཀྲ་གྲུར་པ།
དབང་པོའི་མཆོན་ཡངས་དག་དང་མཚུངས་པ་ཡོད།
ཡབ་གཅིག་བདག་ཀྱང་ཅི་སྐད་དེ་ལྟ་མིན། 49

གང་གི་ཚོག་གི་གྱི་ཆེ་མཚུངས་པ་ཡང་།
ཅི་ཡང་ཡོད་མིན་ཕྲུལ་དུ་བྱུང་བའི་སྨྲ།
ནམ་ཡང་ཙུ་དའི་གནས་སུ་བདག་གིས་ནི།
ཐོས་པ་ཁྲེ་བྲུག་གི་མིན་བྱུང་བའི་མིན། 50

དེ་ནི་ད་ལྟའང་བདག་ནང་སྐྲོགས་པ་བཞིན།
དཔལ་བབ་ལག་བཀུས་དབྱུ་བ་ཆགས་པ་ཡི།
འོད་དང་མཚུངས་པ་ཤིང་ཤུན་གསར་པ་ཡིས།
ཤིན་ཏུ་ཕྲ་བ་དེ་ཡི་ལུས་དག་མཛེས། 51

བདག་གི་ལུས་ནི་ལག་པས་ཕྱུན་རིང་བསྟམས།
གདོང་གི་པདྨར་བཞིན་རས་ཉམས་པར་བགོད།
བསྙབས་པས་མཚུ་བསྐྱོད་འདི་ཡི་དགའ་བ་ཡིས།
བདུད་རྩི་རེག་པའི་ཁྱད་པར་བསྙབ་པར་བྱས། 52

वक्षःकटीपाणिगलावसक्त-
विचित्रसूत्राणि विभान्ति तस्य ।
इन्द्रायुधापत्यनिभानि सन्ति
ममापि किन्तात न तद्विधानि ॥ ४९ ॥

अद्यापि मेऽन्तर्दधतीव तस्य
वाणी शतांशप्रतिमापि यस्याः ।
श्रुता मया चूतवने कदाचित्
न कोकिलानां न च षट्पदानाम् ॥ ५० ॥

मन्दाकिनीमज्जनलीनफेण-
समानभासा नववल्कलेन ।
तनीयसी तस्य तनुर्विभाति
नेदं प्रियं वल्कलकं ममाद्य ॥ ५१ ॥

निवेश्य वक्त्रं वदनारविन्दे
निपीड्य दोर्भ्यां सुचिरं वपुर्मे ।
चक्रे जपप्रस्फुरिताधरोऽसौ
हर्षामृतस्पर्शविशेषदीक्षाम् ॥ ५२ ॥

མཛེས་པས་ནོམ་པར་མཚན་པ་དེ་མེད་ན།
བདག་གི་བཟོད་པ་ནགས་འདིར་སྐད་ཅིག་མིན།
གང་གིས་བདུལ་ཞུགས་བསྟན་པས་བདག་ཉིད་ལ།
སྨོངས་པའི་གྲོགས་པོ་གཉིད་ནི་གནས་མི་བྱེད། 53

བདག་གི་མིག་ནི་དེ་ལ་ལྟ་བར་འདོད།
དེ་ཅིག་མེད་ན་ཐོས་པ་ཡོངས་མི་གནས།
ལུས་ལ་གནོད་བྱེད་གློ་ནི་ནང་དག་ཏུ།
མི་གསལ་དེ་ཡི་བསམ་པས་མཆོག་ཏུ་གཟིར། 54

ཞེས་པ་མཛེས་མས་ཡིད་སྤྲོགས་བུ་ཡིས་ནི།
གདུང་བའི་བསམ་པ་གོ་བྱེད་ཅིག་ཐོས་ནས།
དཀའ་ཐུབ་བར་ཆད་གྱུར་པས་འཇིགས་པ་ཡིས།
དྲང་སྲོང་ཆེན་པོ་ཤིན་ཏུ་ལྷུན་རིང་བསམས། 55

ཀྲི་མ་དྲན་པའི་ཇོན་པ་མི་བཟད་པས།
དཀའ་ཐུབ་ཅན་སྨོངས་རི་དྭགས་བུ་འདི་ནི།
བྱད་མེད་མཆོག་ཏུ་གྱུར་པའི་གྱུ་དག་གིས།
ཟུར་མིག་གཡ་ཏུ་ལྷུང་བས་འཕྲུལ་ལ་བཅིངས། 56

न मे क्षमा कान्तविलक्षणेन
नैव क्षणं तेन विना वनेऽस्मिन् ।
करोति मे यद्व्रतशासनेन
दृशोः पदं मोहसखी न निद्रा ॥ ५३ ॥

दृष्टिस्तदालोकनमीहते मे
श्रुतिर्विना तद्वचनं न चास्ते ।
तच्चिन्तया ताम्यति धीर्नितान्तं
मन्त्रं न जानाति तनुव्यथायाः ॥ ५४ ॥

श्रुत्वेति कान्ताहृतमानसस्य
सन्तापचिन्तापिशुनं महर्षिः ।
पुत्रस्य वाक्यं तपसोऽन्तरायं
निपातभीतः सुचिरं प्रदध्यौ ॥ ५५ ॥

कष्टं तपस्वी मृगशावकोऽयं
तीव्रेण मुग्धः स्मरलुब्धकेन ।
वराङ्गनावागुरया कटाक्ष-
कूटावपाती सहसा निबद्धः ॥ ५६ ॥

སྐད་ཅིག་དེ་བསམས་ཐུབ་པ་མཁས་པ་ཡིས།
བུ་ཡི་ཡིད་ཀྱི་ཉམ་འགྱུར་དབྲོག་པའི་སྐད།
འདོད་པའི་ལག་འགྲོས་དུག་བཏང་ཡུལ་ལ་ནི།
མངོན་འདོད་འཛིན་པ་དེ་ལ་ཕས་སྨྲས་པ། 57

བུ་དེ་དྲང་སྲོང་ཆེ་སྲས་ལེགས་པ་མིན།
དེ་ནི་བུད་མེད་ཡིད་སྐྱེས་ལག་འགྲོའི་ས།
དར་ལྡུང་སྟོངས་པ་ཤིན་ཏུ་མི་བཟད་པའི།
རྗེས་ཆགས་དུག་གི་གདུང་བ་ཉམ་པར་འཛིན། 58

མིག་སྨན་ནག་པོ་བརྩེགས་ཆགས་ན་རྒྱུང་གི།
ཟུར་མིག་རྣོན་པོས་ཕྱུག་པའི་སྐྱེ་བོ་དག།
སྐྱོན་བཅས་བུད་མེད་ལག་པའི་ཞགས་པས་བསྡམས།
འཁོར་བའི་བཙོན་ར་དག་ཏུ་ངུ་ངན་བྱེད། 59

ཀུན་སྟོངས་དྲི་མར་ལྡན་པའི་སྲིད་པ་དག།
སྤྲིན་གྱི་དབུས་སུ་གྱ་གྱུར་གསལ་བྱེད་པ།
སྐད་ཅིག་མཐའ་ཅན་མཛེས་མའི་གློག་དག་གིས།
བྲལ་ཆེ་སྐྱེས་བུ་མཆོག་ཏུ་སྨུན་པར་བྱེད། 60

བྱུད་མེད་རྣམས་ནི་སྨྱུ་ངན་གྱིས་པའི་གཉེན།
སྨྱོ་ཞིང་བཀྲོལ་བྱེད་དུག་གི་འཕྲི་ཤིང་སྟེ།
སྨྱོངས་པའི་ཤ་ཟ་ཆེན་མོ་འདི་དག་གིས།
ཀུན་དུ་རིག་པའི་འཇིག་རྟེན་དགེ་ལྡན་མིན། 61

བྱུད་མེད་མིག་ཟུར་གཏུང་བྱེད་ཟུག་རྔུ་ནི།
རྣོན་པོ་གང་གིས་སེམས་ལ་མ་ཟུག་པ།
ཚོག་ཤེས་ཀྱིས་མཛེས་དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་དུ།
གནས་པའི་དམ་པ་འདི་དེ་ནོལ་དུ་གནས། 62

ཞེས་པ་དབེན་པའི་ཚིག་ནི་དེ་དང་དེས།
པ་ཡི་འབད་པས་རབ་ཏུ་རྟོགས་པར་བྱས།
འདོད་པ་དང་ལྡན་མཛེས་སྡུག་བདུང་བ་ཡིས།
ནམ་པར་འཕྲུལ་པ་དེ་ནི་རྟོགས་མ་གྱུར། 63

དེ་ནས་ཉིན་གཞན་སྣ་ཚོགས་བྱ་བ་བྱས།
ཐབ་པ་འབྲས་བུ་ཡམ་ཤིང་ལེན་དུ་སོང་།
མི་དབང་བུ་མོ་འཇིགས་སྐྲག་ལྡན་པ་ནི།
གཞོན་ནུ་ཆགས་པ་བྱེད་དུ་སྐྱར་ཡང་འོངས། 64

एताभिरुत्सेककुटुम्बिनीभि-
रुन्मादमूर्च्छाविषवल्लरीभिः ।
स्त्रीभिर्महामोहपिशाचिकाभिः
संस्पृश्यमानः कुशली न लोकः ॥ ६१ ॥

स्वस्थास्त एते निवसन्ति सन्तः
सन्तोषकान्तेषु तपोवनेषु ।
सन्तापनं स्त्रीनयनान्तशल्यं
येषां स्थितं चेतसि नावसन्नम् ॥ ६२ ॥

इति प्रयत्नाज्जनकेन तैस्तै-
र्विवेकवाक्यैः प्रतिबोध्यमानः ।
नाबुध्यतासौ मदनान्वितेन
लावण्यपानेन विघूर्णमानः ॥ ६३ ॥

अथापरेद्युर्विहितस्वकृत्ये
मुनौ फलेध्माहरणे प्रयाते ।
लीलावती लोभयितुं कुमारं
नरेन्द्रकन्या पुनराजगाम ॥ ६४ ॥

འབངས་མོའི་ཚོགས་རྣམས་རྗེས་འབྲང་འཁྲི་ཤིང་ནི།
མི་རྟོག་འཛུམ་ལྡན་དག་གིས་དཔལ་བསྟེན་ཅིང་།
ལུས་ཅན་ལུས་མེད་གསར་མཚུངས་རྭ་གཅིག་ཅན།
འཁྲོར་པས་མཐོ་བའི་ལུས་ལྡན་བདེན་པས་ཕྱིན། 65

བདག་གི་བསྟི་གནས་དཔག་བསམ་ཤིང་རྩེ་ལས།
འཕྱང་བའི་འཁྲི་ཤིང་གིས་དགའ་ལྷ་ལ་འོས།
ལྷ་བར་ཁྱོད་ཀྱིས་སྨྲས་ཞེས་བརྗོད་ནས་དེས།
དེ་ནི་གང་གླུ་དག་གི་ངོགས་སུ་ཁྲིད། 66

དེས་དེར་རིན་ཅེན་རབ་འབར་འདབ་མ་བཀྲ།
གསེར་གྱི་འཁྲི་ཤིང་མེ་ཏོག་འབྲས་བུ་དགའ།
ཀྱུ་ཡི་བཟུང་བའི་བཙོས་མ་རྣམས་བརྟགས་ནས།
དགའ་བ་ལ་བཞིན་བདེ་བའི་གནས་ལ་འཛོགས། 67

འཁོར་བ་དང་མཚུངས་ཟློལ་གྱི་བསྟི་གནས་དེར།
ཆུ་བོའི་རྒྱུན་ལ་དེ་ནི་རབ་ཏུ་ཁྲིད།
དེ་ཉིད་ཤེས་པ་མིན་ཡང་ཆགས་ཚུལ་གྱིས།
འཛའ་བོ་ཅན་བཞིན་བ་ར་ཏྲ་སེར་ཕྱིན། 68

दासीगणेनानुगता लतानां
पुष्पस्मितानां श्रियमाश्रयन्ती ।
साङ्गं नवानङ्गमिवैकशृङ्ग-
मासाद्य हृष्टा विबभौ नताङ्गी ॥ ६५ ॥

दिव्योचितं कल्पलताग्रलम्बि-
फलाभिरामं रुचिराश्रमं मे ।
द्रष्टुं त्वमेहीत्यभिधाय सा तं
निनाय तीरं त्रिदशापगायाः ॥ ६६ ॥

स तत्र रत्नोज्ज्वलचित्रपत्र-
सुवर्णवल्लीफलपुष्परम्यम् ।
नौभिर्धृतं कृत्रिममाकलय्य
सुखाश्रमं हर्षमिवारुरोह ॥ ६७ ॥

संसारतुल्येन हृतः स तेन
सरित्प्रवाहे कपटाश्रमेण ।
अज्ञाततत्त्वोऽप्यनुरक्तवृत्ति-
र्वाराणसीं प्रीतिमिवाससाद ॥ ६८ ॥

དེ་ཡི་ས་གཞི་དབང་ཆེན་ཀུ་ཤུ་ཡིས།
རིན་ཅེན་རིན་ཐང་ཆེ་ལྡན་གྱུལ་སར་ཕྱིན།
ཐུབ་དབང་རྣམས་ཀྱི་གདམས་ལ་བཤད་པ་ཡིས།
མཐོ་རིས་གནས་ནི་མིག་ལམ་གྱུར་པར་སེམས། 69

དེ་ནས་རབ་དགའ་གྱུར་པ་ས་ཡི་དབང་།
སྐྱབ་ཤེས་ཚོ་གས་དེ་ལ་རི་དྭགས་མིག
གཡས་སྐོར་བསྐོར་བ་དོ་ཤལ་གཡོ་ལྡན་མ།
བུ་མོ་རི་བ་རྫོགས་པའི་དཔལ་གྱིས་ཕྱིན། 70

མི་དབང་སྨུ་མོ་ལག་པར་ལག་བཀོད་ཅིང་།
ཐག་མའི་བསྲེག་རྫས་མེ་ལ་རྣམ་པར་བཀོད།
དེར་ནི་གཞོན་ནུ་བློ་གྲོས་གཞན་པ་མེད།
སྦྱིན་སྲེག་རྣམ་པ་གཞན་དག་ཡིན་པར་སེམས། 71

དགའ་སྟོན་ཆེ་དང་སྤྲོ་བའི་ཉམས་གྱུར་པ།
རྒྱལ་པོས་གུས་པས་རབ་ཏུ་མཆོད་པ་དེས།
བརྟུལ་ཞུགས་དུལ་ལྡན་ཉིད་དུ་དེར་འདུག་ནས།
ཆུང་མ་དང་འགྲོགས་རང་གི་ནགས་མཐར་སོང་། 72

अवाप्य काश्यस्य स राजधानीं
महीमहेन्द्रस्य महार्हरत्नाम् ।
मेने मुनीन्द्रैः कथितं कथासु
स्वर्गाङ्गणं दृष्टिपथं प्रयातम् ॥ ६९ ॥

ततः प्रमोदाकुलितः क्षितीश-
स्तस्मै मृगाक्षीं विधिना विधिज्ञः ।
प्रदक्षिणावर्त्तविलोलहारां
ददौ सुतां पूर्णमनोरथश्रीः ॥ ७० ॥

नरेन्द्रकन्याकरसक्तपाणि-
र्विवाहहव्यावहितं हुताशम् ।
अमन्यतानन्यमतिः कुमार-
स्तचाग्निहोत्रस्य परं प्रकारम् ॥ ७१ ॥

महोत्सवोत्साहरसाकुलेन
सम्पूज्यमानः प्रणयेन राज्ञा ।
स्थित्वा तपःसंयत एव तच
जायासखः स्वं प्रययौ वनान्तम् ॥ ७२ ॥

ཆུང་མའི་གྲོགས་བཅས་དབེན་པར་བགྲོད་པ་དེ།
མ་མ་རི་དྭགས་མོས་མཐོང་རབ་དགའ་སྟེ།
ཐུབ་པའི་དྲིན་ལས་མི་ཡི་ཚིག་ཐོས་པས།
གང་ནས་ཁྱོད་ཀྱི་བུད་མེད་འདི་ཞེས་སྨྲས། 73

དེ་ལ་རབ་བདུད་དེ་ཡིས་གུས་སྨྲས་པ།
མ་མ་བདག་གི་མཛེས་ལྡན་གྲོགས་མོ་འདི།
རབ་འབར་མེ་ཡི་དཔང་ཅན་གྲོགས་མེད་ཀྱིས།
འདོད་པར་བྱ་བའི་གཟུགས་ཅན་འབད་པས་ཐོབ། 74

ཅེས་སྨྲས་བག་མ་ལ་སོགས་གདམས་མི་ཤེས།
སྨོངས་པ་དེ་རིག་རི་དྭགས་མོ་དེ་ཡིས།
ཁྱོ་ཡི་བརྟུལ་ཞུགས་དཀའ་ཐུབ་ཅན་རྣམས་ཀྱིས།
དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་དག་ཏུ་དལ་གྱིས་ཁྲིད། 75

ཆོས་རྗེས་འགྲོ་འདི་ཁྱོད་ཀྱི་ལྷན་ཅིག་སྤྱོད།
འདི་ཡི་བདག་པོ་ཁྱོད་ཅེས་མ་ལུས་པ།
བག་མའི་སྤྱོད་ཚུལ་དག་གི་བཤད་པ་དེ།
ཐོས་ནས་ཆུང་མ་དགའ་མ་ཉིད་དུ་རིག། 76

जायाद्वितीयं विजने भ्रमन्तं
दृष्ट्वा मृगी तं जननी प्रहृष्टा ।
मुनिप्रसादाप्तमनुष्यवाचा
कुतस्तवेयं ललनेत्युवाच ॥ ७३ ॥

स तां प्रणम्य प्रणयाद्बभाषे
मातर्ममायं द्युतिमान् वयस्यः ।
प्राप्तः प्रयत्नात् स्पृहणीयरूपः
सख्येन दीप्तानलसाक्षिकेण ॥ ७४ ॥

इति ब्रुवाणं तमवेत्य मुग्धं
मृगी विवाहादिकथानभिज्ञम् ।
पतिव्रतानामथ तापसीनां
तपोवनं सा शनकैर्निनाय ॥ ७५ ॥

धर्म्मानुगा ते सहचारिणीयं
पत्नी त्वमस्याः पतिरित्यशेषम् ।
विवाहवृत्तं कथितं स ताभिः
श्रुत्वा प्रियामेव विवेद जायाम् ॥ ७६ ॥

पित्रा प्रहर्षादपि काश्यपेन
विवाहधर्म्मे विहितोपदेशः।
प्रणम्य तं तद्वचसा जगाम
पुरीं सभार्य्यः श्वशुरस्य राज्ञः॥ ७७॥

वृद्धेन तेन स्वपदेऽभिषिक्तः
सत्त्वोज्ज्वलं शान्तिपदं श्रितेन।
शशास सामन्तकिरीटकोटि-
विश्रान्तपादः स महीमशेषाम्॥ ७८॥

ऐश्वर्य्यमोहानाभिभूतबुद्धि-
र्धर्म्मस्वभावात् स लसद्विवेकः।
जरान्वितोऽभूद्बहुपुत्रपौत्रः
प्रव्रज्यया शान्तिपथाभिकामः॥ ७९॥

योऽभूत् कुमारो मुनिरेकशृङ्गः
सोऽहं नलिन्येव यशोधरा सा।
अद्यापि जन्मान्तरवासनास्था
विलोलनायैव ममाभियुक्ता॥ ८०॥

རང་གི་སྐྱེ་བ་གཞན་གྱི་གཏམ། །རྒྱལ་བས་ཉེ་བར་བསྒྲགས་པ་འདི། །
ཐོས་ནས་དགེ་སློང་དེ་དག་ཉམས། །ཐམས་ཅད་ཡ་མཚན་ལྡན་པར་གྱུར། ། ༤༡

ཞེས་པ་དག་པའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་རྭ་གཅིག་པའི་རྟོགས་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་ཙ་ལྔ་པའོ།།

निजजन्मान्तरकथां जिनेनेत्युपवर्णिताम्।
आकर्ण्य भिक्षवः सर्व्वे बभूवुस्ते सविस्मयाः॥ ८१॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां एकशृङ्गावदानं नाम पञ्चषष्टितमः पल्लवः॥

Chapter LXVI.

གཞོན་ནུ་སྐན་དང་གསུས་མཁན་གྱི་རྟོགས་བརྗོད།

འཇིག་རྟེན་དུ་ནི་སྐྱེས་བུའི་ལས་ལམ་གྲིབ་མ་བཞིན།
ལུས་ལ་ལྷན་ཅིག་སྤྱོད་འདི་ངེས་པར་མི་མཚན་དེ།
ལུས་འདི་ཡོངས་བསྒྱུར་བགྱི་ཡི་མཐའ་མར་མི་ཕྲིན་ཅིང་།
མགྲོགས་པར་ཐོས་པ་དག་ལ་ཉམ་པར་འཆད་མི་འགྱུར། 1

ལྷས་བྱིན་གྱིས་ནི་རྡོ་འཕངས་དེ། ཞབས་མཐིབ་སྐད་ནས་ཁྲག་བྱུང་བའི།
རྒྱུ་མཚན་དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་དྲིས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་དེར་བཀའ་སྩལ། 2

མི་ཟློག་ཁོན་ནི་དྲན་པ་ལས། སྐྱེས་པའི་ལས་ཀྱི་རྣམ་སྨིན་དག།
གང་གི་བདག་གི་ཀང་པ་ཡི། མཐེ་བོ་ཡོངས་སྐད་པ་ཉིད། 3

ལྷ་ལེན་དག་དུ་གྲོང་ཁྱེར་ནི། ཀ་པི་ལུར་སྟོན་ས་གཞི་སྐྱོང་།
བདེན་དང་ཆོས་ལ་ཡང་དག་བརྟེན། བདེན་པར་དགའ་ཞེས་བྱ་བ་བྱུང་། 4

སྐྱེ་གུ་ཡང་དག་བསྲུང་འོས་པ། དེ་ཡི་བཙུན་མོ་མཚན་ཉིད་བཟང་།
མཚན་ཉིད་ཅན་ཞེས་བྱ་བ་ནི། མཆོད་སྦྱིན་དག་གི་ཡོན་བཞིན་གྱུར། 5

षट्षष्टितमः पल्लवः ।

कपिकुमारावदानम् ।

नायाति कायपरिवृत्तिशतैर्विरामं
विच्छेदमेति न जवेन पलायितस्य ।
लज्जा न नाम वपुषः सहचारिणीयं
छायेव कर्म्मसरणिः पुरुषस्य लोके ॥ १ ॥

देवदत्तशिलापातपादाङ्गुष्ठक्षतासृजः ।
कारणं भगवान् पृष्टो भिक्षुभिस्तानभाषत ॥ २ ॥

श्रूयतां येन दुर्वारवैरस्मरणजन्मना ।
मम कर्म्मविपाकेन पादाङ्गुष्ठः परिक्षतः ॥ ३ ॥

पञ्चालेषु महीपालः काम्पिल्ये नगरे पुरा ।
अभूत् सत्यरतो नाम संश्रयो धर्म्मकर्म्मयोः ॥ ४ ॥

बभूव लक्षणा नाम पत्नी तस्य सुलक्षणा ।
प्रजासंरक्षणार्हस्य यजनस्येव दक्षिणा ॥ ५ ॥

ཕྱི་ལས་དེ་ལ་བུ་མེད་ཚེ། དེ་ཡིས་གསོལ་བཏབ་ས་ཡི་བདག།
བུ་དོན་གཉེར་བས་ལུས་འཕགས་མ། ཆོས་བཟང་ཞེས་པ་ཁབ་ཏུ་བླངས། 6

ཁྱོ་ཡིས་བག་མ་བླངས་པའི་ཚེ། མཚན་ཉིད་ཅན་ལ་བུ་བཙས་ཏེ།
དོན་མེད་རྩུན་མ་ཐོབ་པ་ཡིས། རྗེས་སུ་འགྱོད་པ་དག་ཀྱང་བཟུང་། 7

དེ་ནི་མ་དྲུད་པ་ཞེས་བྱ། གཞོན་ནུ་ཕ་ནི་རབ་ཏུ་དགྱེས།
རིག་གནས་དུལ་བ་ཐུན་ཚོགས་ཤིང་། སྒྲ་ཚིལ་བསྟུན་བཅོས་མཆོད་མཐར་ཕྱིན། 8

དེ་ནས་ཆོས་བཟངམངལ་དག་དང་། ལྡན་པའི་ཚེ་ན་རྒྱལ་པོ་འདས།
ཐོམ་པ་ཀུན་ལ་ལུས་ཅན་གྱིས། བསམ་པ་བདེན་གྱི་ལུས་མི་བདེན། 9

དེ་ནས་དེ་མཐར་བློན་རྣམས་ཀྱིས། རྒྱལ་ཕྲན་གླང་པོའི་ལྕགས་ཀྱུ་ནི།
གསར་པ་བཞིན་དུ་གང་གྱུར་པ། མཚན་ཉིད་ཅན་གྱི་བུ་དབང་བསྐུར། 10

གང་ཕྱུགས་བ་ལང་རྭ་ཅོ་ལྟར། གྱུ་གྱུ་གཞན་གྱི་མི་ཤེས་པ།
བློན་པོ་ཆེན་པོ་བ་གླང་རྭ། ཞེས་པ་དེ་ཡི་མཛོད་བོར་གྱུར། 11

དུས་ཀྱི་ཆོས་བཟང་བཙའ་བ་ཡི། མཚམས་དང་ཉེ་བར་གྱུར་པ་ན།
མཚན་མཁན་མདུན་ན་འདོན་དག་གིས། མངལ་གྱི་མི་བདག་མཐར་བྱེད་སྨྲས། 12

དེ་ནས་བློན་པོའི་ཚིག་གིས་ནི། བྱིས་པ་སྐྱེས་ཚེ་གསོད་པ་ལ།
དེ་ཡི་ཕོ་བྲང་སྲུང་འོས་པ། མཆོད་ཀྱི་སྦྱོར་ལྡན་རྒྱལ་པོས་བསྐོས། 13

दैवात्तस्यामपुत्रायां पुत्रार्थी पृथिवीपतिः ।
सुधर्म्मां नाम वैदेहीमुपयेमे तयार्थितः ॥ ६ ॥

पत्यौ कृतविवाहेऽथ लक्ष्मणासूत दारकम् ।
मिथ्या सपत्नीलाभेन पश्चात्तापमुवाह च ॥ ७ ॥

सोऽभूदलोलमन्त्राख्यः कुमारः पितुरीप्सितः ।
विद्याविनयसम्पन्नः कलाशास्त्रार्थपारगः ॥ ८ ॥

सुधर्म्मायां सगर्भायामथ राजा व्यपद्यत ।
सर्व्वारम्भस्थिराशानां देहिनां नो स्थिरा तनुः ॥ ९ ॥

अमात्यैरभिषिक्तोऽथ तस्यान्ते लक्ष्मणासुतः ।
नवाङ्कुश इवाभूद् यस्तीक्ष्णः सामन्तदन्तिनाम् ॥ १० ॥

गोविषाणाभिधस्तस्य महामात्यः प्रियोऽभवत् ।
गोशृङ्गकुटिला यस्य नीतिर्न ज्ञायते परैः ॥ ११ ॥

प्रत्यासन्ने सुधर्म्मायाः कालेन प्रसवावधौ ।
गर्भं नृपान्तकं प्राह निमित्तज्ञः पुरोहितः ॥ १२ ॥

अथ मन्त्रिगिरा राजा जन्मक्षणवधे शिशोः ।
तदन्तःपुररक्षाहीनादिदेशोद्यतायुधान् ॥ १३ ॥

དེ་དག་ཤེས་ནས་ཆོས་བཟང་ཡང་། སློན་པོ་ཆེན་པོ་བ་གླང་རྣ།
རང་འདོད་བཞིན་དུ་བྱེད་པ་ལས། ཤིན་དུ་སྐྲག་ནས་སྐྱབས་སུ་སོང་། 14

དེ་ཡི་རྗེ་བོའི་ཚུང་མ་ཞེས། བསྟན་དེས་བུ་ཡི་འཛིགས་པ་ལ།
བུ་ནི་ཡང་དག་སྐྱེས་པ་དག། ཉ་པ་རྣམས་ཀྱི་ཁང་པར་བཞག། 15

དེ་ཉིད་ནས་ནི་བུ་མོ་དག། དེ་ཡིས་བླངས་ནས་རབ་བསྟན་པ།
ཤེས་ནས་ས་ཡི་བདག་པོ་ཡིས། མཚན་མཁན་ཚིག་ནི་བདེན་མིན་བཟུང་། 16

ཉ་པའི་ཁྱིམ་དུ་བྱིས་པ་དེས། རིག་པ་བཟོ་གནས་རྒྱུ་རྩལ་དག།
དེ་དེ་ཐོས་པ་གང་ངེས་ན། སློ་ལྡན་གཞོན་ནུ་སྟོན་དངགས་མཁན། 17

བྱིས་པ་རྣམས་དང་ལྷན་ཅིག་དེར། ལམ་དུ་རྩེད་མོའི་གྲོང་ཁྱེར་བྱས།
རྒྱལ་པོའི་རྩེད་འཇོ་ཡོངས་འདྲིས་ལ། དཔུང་ཆེན་དེ་ནི་ནམ་པར་རྩེ། 18

དེར་ནི་མཚན་མཁན་མདུན་ན་འདོན། འདོད་དགའ་དག་ཏུ་འོངས་པ་ཡིས།
དེ་མཐོང་མི་བདག་ལ་ཕྱོགས་ཏེ། གུས་པར་མངོན་པར་འདོད་པས་སྨྲས། 19

ལྟ་གཅིག་ཉ་པའི་ཁང་པར་ནི། གང་གིས་ཁྱོད་ཀྱི་རྒྱལ་སྲིད་དང་།
སྲོག་དག་འཕྲོག་པར་སྟོར་བརྗོད་པའི། གཞོན་ནུ་བདག་གིས་མཐོང་བར་གྱུར། 20

འདི་ཐོས་མི་བདག་ཁྲོས་པ་ཡིས། གཞན་པའི་མ་ལ་རབ་སྨད་དེ།
བློན་པོ་ཆེན་པོ་བ་གླང་རྣ། ཡང་དག་བོས་ནས་རབ་སྨྲས་པ། 21

तद्विज्ञाय सुधर्म्मापि सन्त्रस्ता शरणं ययौ ।
महामात्यं विधातारमिव स्वच्छन्दकारिणम् ॥ १४ ॥

प्रभुभार्य्येति सा तेन निर्दिष्टतनयाभिधा ।
सञ्जातं सुतमत्याक्षीत् कैवर्त्तानां निकेतने ॥ १५ ॥

तत एव समानीतां तया कन्यां प्रदर्शिताम् ।
ज्ञात्वा निमित्तिकवचः सत्यं मेने न भूपतिः ॥ १६ ॥

धीमान् कविकुमाराख्यः स कैवर्त्तगृहे शिशुः ।
लेभे यतस्ततस्तास्ता[1] विद्याशिल्पान्विताः कलाः ॥ १७ ॥

स तत्र बालकैः सार्द्धं क्रीड़ानगरकल्पथि ।
राजकेलीपरिचर्य्यैर्विजहार महाभुजः ॥ १८ ॥

यदृच्छयागतस्तत्र नैमित्तिकपुरोहितः ।
तं दृष्ट्वा नृपमभ्येत्य बभाषे भक्तिसम्मतः ॥ १९ ॥

देव कैवर्त्तसदने मयादृष्टः कुमारकः ।
य एव कथितः पूर्व्वं राज्यप्राणापहस्तव ॥ २० ॥

श्रुत्वेति नृपतिः कोपात् निर्भर्त्स्यापरमातरम् ।
गोविषाणं समाहूय महामात्यमभाषत ॥ २१ ॥

---

१ $^{W}_{1}$ कान्ताः ।

ཀྱེ་མ་བདག་གི་ཐེ་ཚོམ་ལ། ནོ་བ་འཛིན་པ་རབ་གསལ་བ།
ཁྱོད་ཀྱི་གྲོལ་སྒྲིད་རྒྱ་གཏེར་ལ། གྲུ་བཞིན་དཔལ་བཏང་སྐྱོམས་བྱས། 22

ཁྱོད་ཀྱི་བློ་ལ་སེམས་བཀོད་པ། བདག་ནི་བདེ་བར་གཉིད་གྱུར་ཏེ།
དེ་རིང་སྒྲོག་ལ་ཐེ་ཚོམ་གྱི། རིམ་གྱི་གདང་གི་གནས་དག་བསྟེན། 23

བདག་གི་མཐར་བྱེད་སྲས་པའི་མངལ། ཉ་པ་དག་ལ་ཡོངས་གཏད་ནས།
རབ་ཏུ་དགའ་བས་གཞན་པའི་མ། ངེས་པར་ཉི་མ་བགྲང་བར་བྱེད། 24

ད་དུང་དེ་ནི་གསད་པའི་ཐབས། རིགས་པ་ཁྱོད་ཀྱིས་སྐྱབ་པར་མཛོད།
སེན་མོས་ཚོད་པའི་དུས་ཀྱི་ནི། སྲུ་རེ་ཡིས་ཀྱང་ནུས་མི་འགྱུར། 25

རྗེ་བོ་ཕྱུགས་འཁོར་ནོར་དང་རྫོང་། གྲོགས་དང་དཔུང་གྲོས་སྲུང་བྱེད་པ།
དེ་ཡི་སྐད་དུ་རང་བཞིན་ལས། བློན་པོའི་རང་བཞིན་ཤིན་ཏུ་བརླིང་། 26

བློན་པོ་གདུང་བ་ཞི་བྱེད་བསམ་གཏན་ལ་ཆགས་རྟག་ཏུ་ཕན་པ་བློས།
ཉན་ནོ་ཏུ་ལ་བའི་རྩལ་ལྡན་གུས་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་དག་ནི་ངེས་པར་འཛིན།
མངོན་འདོད་འབྲས་བུ་ཐོབ་པས་གྲུབ་པ་དག་ནི་འཕྲལ་ལ་རབ་ཏུ་སྟོན།
ཡོངས་འདྲིས་དག་ཅིང་གྱི་ཚེ་ས་བདག་ནམས་ཀྱི་བསོད་ནམས་དག་གིས་ཐོབ། 27

གྱུར་ཏུ་རབ་ལྡི་རྩོམ་པ་ཡིས། བྱིས་པ་འདི་ནི་ནོམ་པར་ཚོམ།
དུས་དང་བྲལ་བའི་འབབ་པ་ནི། རྗེས་སུ་གདུང་བྱེད་འབབ་ཞིག་ཡིན། 28

अहोवतावलेपेन भवता मम संशये।
राज्याब्धिकर्णधारेण नौरिव श्रीरुपेक्षिता ॥ २२ ॥

त्वन्मतिन्यस्तचित्तस्य सुखं निद्राभवन्मम।
सैवाद्य प्राणसन्देहज्वरतन्द्रीपदं श्रिता ॥ २३ ॥

गूढगर्भं परित्यज्य कैवर्त्तेषु मदन्तकम्।
प्रहृष्टापरमाता मे गणयत्येव वासरान् ॥ २४ ॥

अद्यापि तद्वधोपाये त्वया युक्तिर्विधीयताम्।
नखच्छेद्ये कुठारोऽपि कालेनायाति कुण्ठताम् ॥ २५ ॥

रक्षति स्वामिराष्ट्रार्थं दुर्गमिचवलोद्यम्।
अमात्यप्रकृतिस्तस्मात् प्रकृतिभ्यो गरीयसी ॥ २६ ॥

व्यसनशमनध्यानासक्ताः सदा हितजापिनः
प्रणिधिनियतव्यक्ता भक्तिव्रताः किल मन्त्रिणः।
अभिमतफलप्राप्त्या सद्यः प्रदर्शितसिद्धयः
शुचिपरिचयोदाराः पुण्यैर्भवन्ति महीभुजाम् ॥ २७ ॥

तूर्णं गुरुतरारम्भैर्दारकोऽसौ विदार्य्यताम्।
कालहीनप्रयत्नो हि पश्चात्तापाय केवलम् ॥ २८ ॥

ཞེས་པ་རྒྱལ་པོས་ཡང་དག་བསྟེན། སྟོན་གྱི་བཏང་སྐྱོམས་སྐྱེངས་པའི་བློས།
བློན་པོ་སྣང་པོ་ར་དང་ནི། ཤིང་རྟའི་ཚོགས་དང་ལྷན་ཅིག་སོང་། 29

ཚེས་བཟང་གིས་ཀྱང་གནས་སྐབས་དེར། བུ་ནི་གསང་ནས་བོས་བྱས་ཏེ།
གྲོས་དེ་དེ་ལ་རྣམ་པར་བཤད། འགྲོ་བར་མཛོད་ཅེས་དེ་ལ་སྨྲས། 30

མ་ཡིས་གཙུག་གི་ནོར་བྱིན་ནས། བཏང་པ་དེ་ནི་རིངས་པས་འཁྲུགས།
རིན་ཆེན་གྱིས་བརྒྱན་འགྲོ་བ་དག། བློན་པོ་ཡིས་ནི་རིང་ནས་མཐོང་། 31

རྒྱལ་པོའི་བུ་དེ་གསང་ནས་ནི། བྲོས་པ་འདི་ཉིད་མ་ཡིན་ནམ།
ཞེས་བརྗོད་དེ་ཡིས་དེ་གསད་སྐད། དཔུང་གི་སྟོན་འགྲོ་དྲག་པོ་བསྐུལ། 32

མགྱོགས་པས་དེ་དག་ལ་འབྲོས་ཤིང་། རི་དྭགས་ལྟར་མགྱོགས་རིང་བགྲོད་དེ།
ཙམ་པ་ཀ་ཞེས་བྱ་བ་ཡི། ཀླུ་ཡི་གནས་ཀྱི་ཆུ་ལ་བྱིང་། 33

དེ་ནས་མཐོང་ཉམས་དེ་ཡི་ཚེ། བློན་པོ་ཆེན་པོ་འབད་ལྡན་པར།
རྗེས་སུ་དེ་ནི་བཙལ་བའི་སྐད། པ་དྨ་ཀ་ཞེས་ཉན་ནོ་བཏང་། 34

དེ་ནས་གཙུག་གི་ནོར་བུ་ཡི། མཐུ་ཡིས་ཆུ་ནི་རིངས་བྱས་ཤིང་།
ཀླུ་ཡིས་གཞོན་ནུ་དབུགས་ཕྱུང་ནས། འདུག་ཅིག་ཅེས་པ་རབ་ཏུ་སྨྲས། 35

རྒྱལ་སྲས་ལ་འོས་རྐང་པ་ཡིས། ཀྱི་ལྡན་ས་གཞི་མཐོང་གྱུར་ནས།
ཀླུ་ཡི་གནས་ན་གནས་པ་དག། པ་དྨ་ཀ་ཡིས་དེ་ལ་བརྗོད། 36

इति राज्ञा समादिष्टः पूर्व्वापेक्षाविलक्षधीः ।
गजवाजिरथानीकैरमात्यः सहितो ययौ ॥ २९ ॥

अत्रान्तरे सुधर्म्मोऽपि गूढ़माहूय पुत्रकम् ।
तन्मन्त्रितं निवेद्यास्मै गम्यतामित्युवाच तम् ॥ ३० ॥

दत्त्वा चूड़ामणिं मात्रा स विसृष्टस्त्वराकुलः ।
व्रजन् दूरादमात्येन दृष्टो रत्नविभूषितः ॥ ३१ ॥

राजपुत्रः स एवायं नूनं गूढ़ं पलायते ।
इत्युक्तास्य बधायोग्रान् स सेनाग्रानचोदयत् ॥ ३२ ॥

जवेन धावतां तेषां मृगवेगः स दूरगः ।
चम्पकाख्यस्य नागस्य ममज्ज भवनाम्भसि ॥ ३३ ॥

दृष्टनष्टे ततस्तस्मिंस्तमन्वेष्टुं प्रयत्नवान् ।
पद्माख्यं महामात्यः पश्चाचारं विसृष्टवान् ॥ ३४ ॥

चूड़ामणिप्रभावेण संस्तम्भितजलं ततः ।
नागः कुमारमाश्वास्य स्थीयतामित्यभाषत ॥ ३५ ॥

विलोक्य राजपुत्रार्हपादमुद्रावतीं भुवम् ।
स्थितं नागस्य भवने पद्मकस्तमसूचयत् ॥ ३६ ॥

དེ་ནས་གླུ་ཡི་དབང་པོའི་གནས། ཀུན་ནས་ཡོངས་སུ་བསྐོར་ནས་ནི།
བློན་པོ་ཆེན་པོས་ས་བདག་བཀའ། གདེངས་ཅན་དབང་ལ་རབ་ཏུ་བསྒྲགས། 37

ལག་འགྲོ་ཁྱོད་ཀྱི་ཁང་པ་ནི། བདག་གིས་དངུལ་གྱིས་ཞིངས་པར་བྱ།
ཆུ་ནི་ཇི་བོ་ཁྲིམས་མ་ཡིས། ཐང་དང་གཙང་རིང་དག་ཏུ་བྱེད། 38

རང་ཉིད་ལག་འགྲོའི་ཡོངས་སྐྱོང་དབང༌། གལ་ཏེ་འཆད་པར་མི་འདོད་ན།
རྒྱལ་པོའི་རྒྱལ་པོ་མི་ཕན་པ། རྒྱལ་པོའི་བུ་ནི་ཡོངས་སུ་ཐོང༌། 39

དེ་སྐད་དེ་ཡི་སྨྲ་སྒྲོགས་པ་ན། མཚན་མོའི་དུས་སུ་གླུ་ཡིས་ནི།
སྒྱུར་བར་རྒྱལ་པོའི་བུ་བཏང་སྟེ། སྲོག་ཆགས་རྣམས་ནི་འཇིགས་དབང་གྱུར། 40

དེ་ནས་རྒྱལ་སྲས་རབ་བསྐྲིབས་ཏེ། འཁྲུད་མཁན་དག་གི་ཁང་པར་གནས།
ཀིང་པ་བཀོད་པའི་གྱུ་དག་གིས། པ་ཏ་ཀ་ཡིས་ཉེ་བར་མཚོན། 41

དེ་ནས་བློན་ཆེན་འོངས་པའི་ཚེ། དེས་འཇིགས་འཁྲུད་མཁན་དག་གིས་ཀྱང༌།
གོས་ཀྱི་ཁུར་གྱི་ནང་བཅུག་ནས། འཇིག་རྟོགས་མཐའ་ན་ཡོངས་སུ་བཏང༌། 42

དེ་ནས་ཀྱང་ནི་གསང་སྟེ་སོང༌། དེ་ནི་ཛཻ་མཁན་ཁང་པ་ན།
གཡུལ་སྐྱད་ནུས་ཀྱང་མི་བདག་བུ། དུས་ལ་སྟོད་ཅིང་རབ་ཏུ་གནས། 43

དེར་ཡང་ཕ་སྨྲང་རྡུ་དག་ནི། ཀིང་པའི་གྱུ་ཡིས་རྫེས་འཕྲང་བ།
རྩྭུང་གི་འཁོར་ལོ་ཆེན་པོ་ཡིས། ལམ་ནི་ཡང་དག་བགགས་པའི་ཚེ། 44

अथ नागेन्द्रभवनं परिवार्य्य समन्ततः ।
अश्रावयन्महामात्यः पार्थिवाज्ञां फणीश्वरम् ॥ ३७ ॥

पांशुभिः पूरयाम्येष भवनं ते भुजङ्गम ।
जलं स्थलं स्थलं श्वभ्रं करोति कुपितः प्रभुः ॥ ३८ ॥

भुजङ्गीभोगविच्छेदं न चेदिच्छसि तत् स्वयम् ।
अहितं राजराजस्य राजपुत्रं परित्यज ॥ ३९ ॥

इति सन्तर्जितस्तेन नागस्तूर्णं क्षपाक्षणे ।
तत्याज राजतनयं भयभोग्या हि जन्तवः ॥ ४० ॥

प्रच्छन्नं राजपुत्रोऽथ रजकावसथे स्थितः ।
चरणन्यासमुद्राभिः पदकेनोपलक्षितः ॥ ४१ ॥

ततः प्राप्ते महामात्ये रजकेनापि तद्भयात् ।
वस्त्रभारान्तरगतः परित्यक्तस्तटान्तरे ॥ ४२ ॥

गूढ़ं ततोऽपि गत्वासौ कुम्भकारनिवेशने ।
तस्थौ योद्धुं समर्थोऽपि कालाकाङ्क्षी नृपात्मजः ॥ ४३ ॥

तत्रापि गोविषाणेन पादमुद्रानुसारिणा ।
महता बलचक्रेण सन्निरुद्धेषु वर्त्मसु ॥ ४४ ॥

ས་བདག་བུ་ནི་གོས་དག་གིས། གཡོགས་ཤིང་མེ་ཏོག་འཕྲེང་བས་མཚན།
ཚོང་དང་བཅས་ཛོ་མཁན་གྱིས། རོ་ཡི་ཐྲོལ་གྱིས་དབེན་པར་དོར། 45

དབེན་པར་མགྲོགས་པས་འགྲོ་བྱེད་པ། དེ་ཡི་རྗེས་ཀྱི་འཕྲེང་བ་དག།
སོང་བའི་རྗེས་སུ་སོང་གྱུར་པས། སྨོན་པོ་ཆེན་པོ་མགྲོགས་པར་འོངས། 46

ཀུན་དུ་ཡོངས་སུ་མི་གཏོང་ཞིང་། ལས་བཞིན་དུ་ནི་རྗེས་འབྲང་བ།
འཚོལ་བའི་ངལ་དུབ་ཀྱིས་གཟིར་བ། སྨོན་པོ་གདུག་པས་དེ་མཐོང་གྱུར། 47

མགྲོགས་ལས་གཡང་ས་མ་བརྩིས་ཏེ། གཡང་ས་ཆེན་པོར་ལྷུང་གྱུར་ནས།
འཁྲི་ཤིང་ཤིང་སྐམ་ཚོགས་དག་ལ། གཙུག་གི་ནོར་བུ་ཆགས་པར་གྱུར། 48

མི་བཟད་གཡང་ས་གཅོད་དག་ཏུ། ལྷུང་བ་དེ་མཐོང་སྨོན་པོ་ཡིས།
གཙུག་གི་ནོར་བུ་ཡང་དག་བླངས། སོང་ནས་རྒྱལ་པོ་དག་ལ་བཤད། 49

གནོད་སྦྱིན་ཨ་ཛ་ལ་ཞེས་བ། གཡང་སར་གནས་བས་གཞོན་ནུ་ཡང་།
བསྲུངས་ཏེ་འདབ་ཆགས་བཞིན་དུ་ནི། ས་ལ་ཕྱིན་ཅིང་ཤི་མ་གྱུར། 50

བུ་ནི་ལྷུང་ཐོས་ཚོས་བཟང་དག། རང་ཉིད་འཆི་བ་འཚོལ་བ་ནི།
ལྷ་མོ་ནོརམས་ཀྱི་ཁྱོད་ཀྱི་བུ། འཚོ་ཞེས་བརྗོད་ནས་རབ་ཏུ་བསྲུངས། 51

གཞོན་ནུ་ཡང་སྡུག་མིག་རྣོན་པོ་ཡིས། རྗེ་བའི་གཞི་ནི་ཉམས་བྲུས་ཤིང་།
གླང་པོའི་ཁྲག་གིས་སྨྲོས་པ་ཡིས། མི་བཟད་སྡུག་ལྷན་ནགས་སུ་ཞུགས། 52

वस्त्रैराच्छादितः पुष्पमालाङ्कः क्षितिपात्मजः ।
त्यक्तः कुलालैः साक्रन्दैः शवव्याजेन निर्जने ॥ ४५ ॥

जवेन व्रजतस्तस्य विजने पदपङ्क्तिभिः ।
गतिं मत्वा महामात्यस्तूर्णं पश्चात् समाययौ ॥ ४६ ॥

असंत्यक्तः स सर्व्वत्र कर्म्मणेवानुसारिणा ।
अन्वेषणश्रमार्त्तेन दृष्टः क्रुद्धेन मन्त्रिणा ॥ ४७ ॥

वेगादगणितश्वभ्रः स पपात महावटे ।
लग्नचूड़ामणिः शुष्कलताविटपसङ्कटे ॥ ४८ ॥

तं दृष्ट्वा पतितं मन्त्री विषमे श्वभ्रकोटरे ।
चूड़ामणिं समादाय गत्वा राज्ञे न्यवेदयत् ॥ ४९ ॥

कुमारोऽप्यञ्जनाख्येन यक्षेण श्वभ्रवासिना ।
रक्षितः क्षितिमासाद्य पक्षिवन्न व्यपद्यत ॥ ५० ॥

सुधर्म्मा पतितं श्रुत्वा पुत्रं स्वं निधनैषिणी ।
सुतस्ते जीवतीत्युक्ता रक्षिता दिव्ययोषिता ॥ ५१ ॥

कुमारोऽपि खरव्याघ्रखुरक्षुण्णशिलातलम् ।
गजासृक्क्षतशार्दूलदारुणं वनमाविशत् ॥ ५२ ॥

དེ་ནི་རྫོན་པ་མིག་སེར་ཅན། ཞེས་པ་ཡིས་ནི་རབ་བཤད་དེ།
ལམ་ནི་ཐོབ་པའི་སྐྱེས་བུ་དག། ལུས་ཀུན་བཅད་པ་མཐོང་བར་གྱུར། 53

དེ་མཐོང་སྙིང་རྗེ་སྐྱེས་པ་ཡི། མི་བདག་བུ་ཡིས་རབ་ཏུ་དྲིས།
ཁྱོད་ཀྱི་སྡུག་བསྔལ་གནས་སྐབས་འདི། མི་མེད་ནགས་སུ་ཅི་ཡིས་ཐོབ། 54

དེས་སྨྲས་རིང་པོ་མིན་འདི་ན། གཏུམ་པོ་གཏུམ་པོའི་སྤྱོད་ཚུལ་ཅན།
བཟོད་དཀའ་སུ་དྲ་ས་ཞེས་པ། སྐྱེས་བུ་ཉམས་ཀྱི་མཐར་བྱེད་གནས། 55

དེ་ལ་དུང་གི་ཁ་ཞེས་བ། ཁྱི་ནི་འཇིགས་སུ་རུང་བ་ཡོད།
ལམ་གནས་མཐའ་དག་གང་མཐོང་བ། གདོན་མི་ཟ་བར་ཉམ་འཇོམས་པ། 56

དེ་ཡི་སྤྱོད་ཚུལ་ལྷུང་གྱུར་པ། ཕུད་ཙམ་འཚོ་བའི་ལྷག་མ་ཅན།
བདག་གི་གཉན་བསྐྱུན་ཟུག་རྔུ་འདི། ཡན་ལག་བཅད་ལས་ཡང་དག་སྐྱེས། 57

གཏུམ་པོ་ཉིན་གུང་གདུང་བའི་ཚེ། གདུག་པ་དུང་གི་ཁ་དག་གིས།
མགྲིན་པ་རབ་བཅད་དོན་མཐུན་གྱི། ཁྲག་ནི་རྟག་ཏུ་འཐུང་བར་བྱེད། 58

དེ་ནས་དེ་ཡིས་ཚིག་ཐོས་ནས། བརྩེ་བས་ཡིད་ནི་ཞུག་གྱུར་ཅིང་།
མཚོན་དང་བྲལ་བ་རྒྱལ་པོའི་བུ། ཅི་ཞིག་བྱ་ཞེས་རབ་ཏུ་བསམས། 59

དྲག་པོ་གཞུ་ཡི་དཀྱིལ་འཁོར་ཅན། དེ་ནས་གཏུམ་པོ་འོངས་གྱུར་ཏེ།
ཕྱོགས་སུ་མིག་གིས་ཕག་གི་ནི། ཁྲག་གི་ཟེར་མ་འབེན་པ་བཞིན། 60

तत्र पिङ्गलकाख्येन लुब्धकेन निवेदितम् ।
मार्गमासाद्य पुरुषं क्षतगात्रं व्यलोकयत् ॥ ५३ ॥

विलोक्य जातकरुणस्तं पप्रच्छ नृपात्मजः ।
केनेमां वैशसावस्थां नीतोऽसि विजने वने ॥ ५४ ॥

सोऽब्रवीन्नातिदूरेऽत्र चण्डालश्चण्डचेष्टितः ।
निवसत्यन्तकः पुंसां सुदासो नाम दुःसहः ॥ ५५ ॥

तस्य शङ्खमुखो नाम सारमेयोऽस्ति भीषणः ।
पान्थास्थिशकलाकीर्णा येनैता विहिता दिशः ॥ ५६ ॥

तद्गोचरच्युतस्येयमङ्गच्छेदसमुद्भवा ।
मुहूर्त्तशेषजीवस्य व्यथा मे मर्म्मशातिनी ॥ ५७ ॥

क्रुद्धशङ्खमुखोत्क्षत्तकण्ठानां सार्थगामिनाम् ।
मध्याह्नतप्तश्चण्डालः सदा पिबति शोणितम् ॥ ५८ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा राजपुत्रो निरायुधः ।
किं करोमीति कृपया प्रदध्यौ खिन्नमानसः ॥ ५९ ॥

अथाजगाम चण्डालश्चण्डकोदण्डमण्डलः ।
दिक्षु क्षिपन्निव दृशा वाराहरुधिरच्छटाः ॥ ६० ॥

དེ་ཡི་ངོས་སུ་ཁྲི་ཡང་མཐོང་། སོག་ལི་ལྟར་ཙུབ་སོ་དང་ལྡན།
གསར་བའི་བག་གིས་བསྒྲོས་པ་ཡི། སྡེར་མོའི་རྩེ་མོས་ས་ལ་འབྲད། 61

རི་དྭགས་རྣམས་ཀྱི་ཡན་ལག་འཛོམས། གཡག་རྣམས་དག་ནི་ཁྲིས་པའི་གདོན།
ཅེ་སྤྱང་རྣམས་ཀྱི་རིགས་ཀྱི་ནད། ཕག་རྣམས་ཉམས་པར་བྱེད་པའི་རིམས། 62

གཏུམ་པོའི་ཕྱོགས་སུ་ལྷུང་བ་ཡིས། བྱེད་པོས་ནགས་ཀྱི་ལམ་དུ་ནི།
འཚོ་བ་དག་གི་ངལ་དུབ་བཞིན། དྲིགས་ལྡན་གདུག་པ་ཅན་དེ་སྤྱུལ། 63

འགྲོན་པོའི་ཚང་མ་གསར་དུ་ནི། ཡུག་སའི་གདུང་བསྐྱུབ་བྱེད་དེའི།
རྟུ་ཞེས་གྲར་གྲར་སྒྲ་དག་གིས། བསེ་རུ་རྣམས་མ་ཉམས་པར་འབྲོས། 64

ཤིན་ཏུ་གཏུམ་པོ་ཁྲོད་པ་ཡིས། བརྣ་ཡི་མདོན་དུ་འོང་བ་དེ།
མཐོང་ནས་ས་སྐྱོང་བུ་ཡིས་ནི། སྐྱུ་རུ་ར་ཡི་ཤིང་ལ་འཛེགས། 65

ཤིང་ལ་འཛེགས་པ་དེ་མཐོང་ནས། ཉ་བའི་བར་དུ་མདའ་དྲངས་ཤིང་།
གཏུམ་པོས་གདུག་པ་དུང་གི་ཁ། དེ་ནི་གསོད་ལ་མངོན་ཕྱོགས་བྱས། 66

འཕྱུར་སྐྲ་གདུག་པའི་མིག་དེ་ཡིས། མདའ་དང་ཁྲི་ཡི་མཆེ་བ་ལྟར།
རྣོ་བའི་ཚིག་གིས་ཕྲུག་པ་ཡི། རྒྱལ་པོའི་བུ་ཡིས་རབ་བསམས་པ། 67

ཀྱེ་མ་རྒྱལ་པོའི་རྒྱལ་པོ་ཡིས། གཡུལ་དུ་སྤྲོ་བ་དང་ལྡན་པ།
མཚོན་མེད་བདག་ལུས་འཇིག་པ་འདི། བྱེད་པོ་དག་གི་ཉམ་པར་སྐྱུལ། 68

तत्पार्श्वे क्रकचक्रूरदशनः श्वाप्यदृश्यत ।
प्रत्यग्रशोणितासक्तनखकोटिक्षतावनिः ॥ ६१ ॥

अङ्गभङ्गः कुरङ्गाणां चमराणां गलग्रहः ।
शृगालानां कुलव्याधिः शूकराणां क्षयज्वरः ॥ ६२ ॥

मातङ्गपक्षपातेन विधिना वनवर्त्मनि ।
क्रौर्य्यदर्पः स सिंहानामायास इव निर्म्मितः ॥ ६३ ॥

तस्याध्वन्यवधूनव्यवैधव्यविधिवेधसः ।
हुङ्कारघर्घरारावैर्दुद्रुवुः खङ्गिधेनवः ॥ ६४ ॥

तमभिद्रुतमत्युग्रचण्डालक्षोभसंज्ञया ।
दृष्ट्वा रुरोह भूपालस्तनुरामलकद्रुमम् ॥ ६५ ॥

तं वीक्ष्य पादपारूढमाकर्णाकृष्टसायकः ।
क्रुद्धः शङ्कुमुखं चक्रे चण्डालस्तदधोन्मुखम् ॥ ६६ ॥

शरश्वदंष्ट्रातीक्ष्णाभिर्वाग्भिरुद्धतवादिना ।
विद्धः क्रूरदृशा तेन राजसूनुरचिन्तयत् ॥ ६७ ॥

अहो निरायुधस्यायं वेधसा मम निर्म्मितः ।
राजराजरणोत्साहयोग्यस्य वपुषः क्षयः ॥ ६८ ॥

སྐྱེ་བ་ངན་པ་གྲུ་མེད་ཀྱིས། དགྲ་འདི་ཐུལ་བར་གྱུར་པ་ནི།
མཛའ་བས་མ་ཡིན་སྦྱིན་པས་མཉི། མཆོད་མིན་ཡོན་ཏན་གྱིས་ཀྱང་མིན། 69

ངེས་པར་དམྱལ་བའི་གནས་དག་ནི། འདི་ཡི་མདུན་ན་བསྟན་བྱས་པ།
མིའི་ཀེང་རུས་འཕྲེང་བ་ཅན། ནགས་ཀྱི་ས་གཞི་རབ་ཏུ་སྨྲ། 70

གང་དུ་རྒྱལ་རིགས་གཙུག་གི་ནོར། རྒྱལ་པོ་ཟླ་བའི་རིགས་སུ་སྐྱེས།
ཁྲི་འདམ་གཏུམ་པོའི་བུ་དག་གིས། མཆོད་མེད་བདག་ནི་གསོད་པར་བྱེད། 71

ཆོས་ཀུན་ངེས་པར་མི་གཡོ་ཞིང་། སྐྱེ་བའི་མཐར་ཐུག་གནས་གྱུར་པ།
སྐྱེས་བུའི་དོན་དང་འགལ་འགྱུར་བ། སྨོན་གྱི་ལས་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ། 72

དམན་པའི་དྲ་བ་དག་ལ་སྐྱོན་བྱུག་རྩེ་མིན་ཡོན་ཏན་སྐྱུད་ཀྱིས་མིན།
འཇིག་རྟེན་རབ་མང་སྐྱོན་གྱིས་གང་སྐྱོན་ཤིན་ཏུ་ཆུང་བ་དག།
རིང་ནས་ཤིན་ཏུ་གསལ་བར་མཐོང་ནས་མཛུབ་མོ་དག་གིས་སྟོན་བྱེད་པ།
ཀུན་ལས་མཐོ་བས་རང་རིགས་ཟླ་བ་དེ་ཡི་སྐྱེ་བར་མ་གྱུར་ཅིག། 73

དེ་ལྟར་སེམས་དཔའ་དེ་ཡིས་ནི། མི་བཟད་སྲོག་གི་ཐེ་ཚོམ་ལ།
བདག་ཉིད་ཉམས་པས་ལུས་དག་ནི། འཇིངས་པས་འཇིགས་པ་ཡོངས་མ་གྱུར། 74

སྐབས་དེར་ཐུབ་པ་རིག་པ་འཛིན། མ་ཐར་ཡིས་ལྷ་མིག་གིས།
དེ་ཡི་གནས་སྐབས་མི་བཟད་པའི། ཉོན་མོངས་ཅན་ཞེས་བརྩེ་བ་ཡིས། 75

न स्नेहेन न दानेन न मानेन गुणेन वा ।
अयं निष्कारणरिपुर्निजतामेति दुर्जनः ॥ ६९ ॥

नरकं नियतावासमस्य सज्जीकृतं पुरः ।
नरकङ्कालमालिन्यो वदन्ति वनभूमयः ॥ ७० ॥

क्व जन्म राजचन्द्रस्य वंशे क्षत्रशिरोमणेः ।
शुनश्चण्डालपुत्राद्वा निःशस्त्रस्य वधः क्व मे ॥ ७१ ॥

सर्व्वथा निष्फलायैव जन्मपर्य्यन्तशालिने ।
पुरुषार्थविरुद्धाय नमः प्राक्तनकर्म्मणे ॥ ७२ ॥

न च्छिद्राली न च गुणततिर्गण्यते जात्मजाले
सर्व्वोन्नत्या स्वकुलशशिनस्तस्य जन्मैव माभूत् ।
दोषं दोषप्रचयवसतिर्दर्शयत्येव दूरात्
यस्याङ्गुल्या तनुतरमतिव्यक्तमालोक्य लोकः ॥ ७३ ॥

इति चिन्तयतस्तस्य विषमे प्राणसंशये ।
अभून्मानक्षयादेव न शरीरक्षयाद्भयम् ॥ ७४ ॥

अत्रान्तरे दिव्यदृशा ज्ञात्वा विद्याधरो मुनिः ।
माठरः कृपया तस्य तीव्रक्लेशवतीं दशाम् ॥ ७५ ॥

མཁའ་དང་རལ་གྲི་འགྲོགས་པ་ཡི། ཡོན་ཏན་གཅིག་ཉིད་སྟོན་བྱེད་ཅིང་།
ལག་ན་ཤུབས་མེད་རལ་གྲི་ཅན། མཁའ་ཡི་ལམ་ནས་ཡང་དག་འོངས། 76

ཁྲོས་ཤིང་ཤིན་དུ་སྡུག་པའི་མིག། འཇིགས་རུངས་ལུས་ཅན་དེ་འོངས་ཏེ།
གཏུམ་པོའི་ཟླ་དང་རྟུང་གི་ནི། ཁ་ཡི་མགོ་དག་རབ་ཏུ་བཅད། 77

དེ་ནས་རང་གི་གནས་སུ་ཁྲིད། མི་བདག་སྲས་དེ་དབུགས་ཕྱུང་ནས།
རྫོ་འཕྲུལ་ཆེ་དང་ལྡན་ཅིག་དེས། སྒྱུ་མའི་རིག་པ་དེ་ལ་བྱིན། 78

དེ་ནས་ཐུབ་པ་དེ་ལ་ཞུས། ཁེངས་ལྡན་རྒྱལ་སྲས་རྒྱལ་སྲིད་ནི།
བཞེད་ཅིང་དགྲ་ལས་རྒྱལ་འདོད་པས། ཀཾ་པི་ལར་ནི་དལ་གྱིས་སོང་། 79

དེ་ཡིས་དེར་ནི་གར་མཁན་མ། ཡིད་འཕྲོག་དགའ་མའི་གཟུགས་བྱས་ནས།
ཡིད་འོང་གར་སྟབས་དེ་དང་དེས། གྲོང་པའི་འཇིག་རྟེན་ཆོམ་པར་བྱས། 80

དེ་ཡི་གར་དང་ཀློས་གར་དག། མཁས་པ་མི་བདག་གིས་ཐོས་ནས།
ཀློན་པོ་དང་བཅས་རང་ཉིད་ནི། ཀློས་གར་ཁང་པར་ལྟ་རུ་སོང་། 81

དེ་ཡི་དེ་ནི་སྨྲ་ཅན་གྱིས། རྩེ་དགའ་ཡིད་འོང་དེ་དག་མཐོང་།
མཛེས་མའི་གཟུགས་སུ་གཡོ་མེད་ནི། བདུད་རྩི་ལེན་དུ་འོང་བ་བཞིན། 82

དེ་ཡི་གར་སྟབས་མཛེས་སྡུག་ལ། ཉམས་པར་དབྱེད་ནས་འཛིན་མ་འཛིན།
འཛེ་སྐེག་སྦྱང་ཞིང་སྦྱོས་གྱུར་པས། བློན་པོའི་གཙོ་ལ་རབ་སྨྲས་པ། 83

व्योममार्गेण निष्कोषखड्गपाणिः समाययौ।
नभोनिस्त्रिंशयोर्मैत्रीमेकरूपां प्रदर्शयन्॥ ७६॥

सोऽभ्येत्य भीषणतनुः क्रोधक्रूरतरेक्षणः।
चण्डालसूनोश्चिच्छेद शिरः शङ्खमुखस्य च॥ ७७॥

अथ स्वमाश्रमं नीत्वा तमाश्वास्य नृपात्मजम्।
स तस्मै प्रददौ मायाविद्याः सह महर्द्धिभिः॥ ७८॥

ततस्तं मुनिमामन्त्र्य मानी शत्रुजिगीषया।
राज्यकामः शनैः प्रायात् काम्पिल्यं पार्थिवात्मजः॥ ७९॥

स तत्र नर्त्तकीरूपं कृत्वा रतिमनोरमम्।
ललिताभिनयैस्तैस्तैः पौरलोकमतोषयत्॥ ८०॥

श्रुत्वा नरपतिस्तस्य कौशलं नृत्यवाद्ययोः।
स्वयं द्रष्टुं सहामात्यैः प्रययौ नाट्यमण्डपम्॥ ८१॥

स तत्र कैशिकी-लीला-ललितं तं व्यलोकयत्।
अमृताहरणायातं कान्तारूपमिवाच्युतम्॥ ८२॥

तस्याभिनवसौन्दर्य्यं विचार्य्य धरणीधरः।
शृङ्गारास्वादनक्षीवः प्रधानामात्यमब्रवीत्॥ ८३॥

ཀྱི་མ་མཛེས་སྡུག་ཀུན་རྫོགས་ཤིང་། བསྡུགས་འོས་ལུས་མཆོག་ལྡན་པའི་ལུས།
ངོ་མཚར་གར་སྟབས་ལྡན་པ་ནི། བདག་ཅག་རྣམས་ཀྱི་ཡིད་འཕྲོག་བྱེད། 84

མཐོ་རིས་དོ་རའི་རྩེད་འཛེ་མཁན། མི་ན་ཀ་རེ་འདི་མིན་ནམ།
གཞན་དུ་གསར་པའི་ཚོན་རིས་དང་། དབྱིབས་མཛེས་འདི་ནི་ག་ལ་འོང་། 85

འགྱུར་བག་ཤིན་དུ་ལེགས་པའི་རང་བཞིན་གྱིས་སྤྲས་རྣམ་བཀྲ་མཛེས་པའི་རིམ་པ་ཡི།
ཚོགས་རྣམས་ཉིད་ཀྱིས་ཉམས་སུ་སྐྱོང་བྱ་ཉམས་རྣམས་ངེས་པར་རྫོགས་པ་ལ་བརྩོན་ཞི-
རྫོགས་པའི་དབྱུས་སུ་གླུ་ཡི་འགྱུར་གྱིས་ཡང་ཡང་རབ་ཏུ་དང་བ་སྒྲུབ་བྱེད་པ།
ཛ་ཌོ་ཡང་དག་བསྒྲགས་པས་ཉེ་བར་སྤྲས་པའི་ཀློས་གར་གྱི་མ་ཡིད་དག་འགུགས། 86

སྐད་ནི་བརྗོད་པ་ཡོངས་སུ་འཛིན་ཚེ་ཡིད་འོང་རྒྱུད་མང་སྒྲ་ཡིས་དགའ་ལྡན་པ།
སྙིང་སྟོབས་གསལ་བར་འབྱེད་པས་འདར་ཞིང་གཡོ་ལྡན་འདོག་བག་མཛེས་སྡུག་
རི་མོའི་གྲོགས།

གསང་པོར་བརྗོད་ལ་མངོན་ཕྱོགས་མི་འཕྲོགས་ཡིད་འོང་སྟབས་དང་ལྡན་པར་སྒེག་
པར་སྤྲས།

གཟུགས་བཟང་སྨིན་མ་ཟུང་ནི་སྒེག་ཅིང་རོལ་པའི་བསླབ་པས་སྤྲས་པ་ཀུན་ཏུ་བསྟེན། 87

ཞེས་དེ་དེ་གདོང་ཆུ་སྐྱེས་ལ། མིག་བཀོད་ས་ཡི་བདག་པོ་ཡི།
བཞིན་གྱི་ཚུལ་གྱིས་བྲན་པ་ཡི། འདོད་པའི་ཀང་འཕུང་ཡང་དག་སྐྱེས། 88

དེ་ལ་ཚེ་མ་མེད་ཉིན་མོའི་མཐར། རིན་ཅེན་ཡོངས་རྫོགས་བྱིན་ནས་ནི།
ཕོ་བྲང་འཁོར་གྱི་ནང་སོང་སྟེ། མི་ཡི་བདག་པོས་བདག་ཉིད་བསམས། 89

अहो सम्पूर्णलावण्या धन्या वरतनोस्तनुः।
इयं हरति नश्चेतश्चित्राभिनयशालिनी ॥ ८४ ॥

इयं सा मेनका नूनं स्वर्गरङ्ग-विलासिनी।
अन्यथा नवनेपथ्या कुतः कान्तेयमाकृतिः ॥ ८५ ॥

भावा भव्यतरस्वभावरचना वैचित्र्यचारुक्रमैः
आस्वाद्यस्य रसस्य सङ्गततया निष्पादनायोद्यताः।
निष्पन्नस्य मुहुः प्रसाधनविधिर्मध्ये भ्रुवो[1] गीतिभिः
संमूर्च्छन्मुरजोपरञ्जितमहो नाट्यं मनः कर्षति ॥ ८६ ॥

वाणी पाठ्यपरिग्रहे [2]परिलसद्वीणास्वनामोदिनी
सत्त्वव्यक्तिविभक्तिकम्पतरला तालोन्मुखी मेखला।
आहार्य्यं रचयत्यहार्य्यरुचिरं सौन्दर्य्यरेखासखी
तन्व्या लास्यविलासशिष्यकलनां भ्रूयुग्ममासेवते ॥ ८७ ॥

इति तद्वदनाम्भोजन्यस्तनेत्रस्य भूपतेः।
उद्ययौ वदनस्वेदसिक्तो मदनपादपः ॥ ८८ ॥

दिनान्ते रत्नसम्पूर्णं दत्त्वास्यै पारितोषिकम्।
अन्तःपुरोदरं गत्वा तामेवाचिन्तयन्नृपः ॥ ८९ ॥

---

१ भ्रुवा in all MSS. २ W_1 परिणमत्।

འཁོར་བའི་རྒྱུ་བཞིན་བདེན་མེད་གཟུགས། བཙོས་མའི་འདོད་ལྡན་མ་ཡིས་ནི།
ས་བདག་དེ་ཡི་ནང་དག་ཏུ། ཉམས་པར་གནས་ཤིང་སྐྱོངས་པར་བྱས། 90

འདོད་པས་གཟིར་བ་དེ་ཡིས་དེ། དཔལ་བུ་ཡིས་ནི་ཁྲིམ་དུ་བོས།
ཡོངས་སུ་གྱུར་པའི་འགལ་བ་ལ། འཆི་བར་འདོད་ཉམས་ཆགས་པར་བྱེད། 91

གྲགས་པ་མེ་ཏོག་ཉམ་བཀྲ་ཞིང་། སྟེ་ཚན་གསུམ་གྱི་འབྲས་བུ་ཅན།
མི་བདག་ལྡོན་པ་ཉམས་དག་གིས། དབང་པོ་མ་བསྐྱལས་སྐྱ་རེ་ཡིན། 92

གླང་པོ་རྗེས་སུ་ཆགས་པ་དྲག་པོའི་དབང་དུ་གྱུར་པ་ལ།
གལ་ཏེ་གླང་མོ་དེ་ཡིས་སྐྱོངས་པའི་བསླབ་པ་མ་བྱིན་ན།
ཡོངས་རྫོགས་སྤྱིན་པས་བྱུང་པའི་དོན་མཐུན་ཡོངས་སུ་དགྲེས་བྱས་པ།
ཁྲུ་ཡི་མགོན་པོ་ལྷུང་བའི་གཡང་ལ་ངེས་པར་ལྷུང་བ་མིན། 93

དེ་ནས་དཔལ་གྱིས་རྒྱལ་ཁབ་ཏུ། ཐྲན་པོལ་སྣྲུན་པོ་འདུན་པ་ཡི།
རྗེས་སུ་འཇུག་པས་བརྐྱག་པའི་སྐད། བཙོས་མའི་བུད་མེད་རབ་ཏུ་བཙུག། 94

དབེན་པར་བཅེན་པ་བཏང་བྱས་ཤིང་། གསང་བ་མངོན་པར་འདོད་དེ་ལ།
དུས་ནི་མཛེས་མའི་གཟུགས་དག་གིས། མགུལ་ནས་འཛིན་ལ་མངོན་ཕྱོགས་གྱུར། 95

དེ་ནས་གཉིད་ནི་རིང་པོའི་སྐད། གུས་པས་མལ་སྟན་འཛོགས་དེ་ལ།
གཞོན་ནུས་གར་མཁན་མ་ཡི་གཟུགས། སྤྲངས་ནས་འཕྲུལ་ལ་རབ་སྨྲས་པ། 96